।। श्रीगणेशाय नमः ।।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामायण

उत्तरकाण्ड

जिसको

श्रीयुत बाबू गंगाबख्शसिंह जी तालुकेदार शाहमऊ टेकारी

के लघुभ्राता श्रीमान् बाबू रणबहादुरसिंह जी

अनेकों कवि कोविद महात्माओं की समपति से

तथा

पं. मातृदत्तजी सहगौर त्रिपाठी तथा पं. ललिताप्रसादजी ओझा की

सहायता से सत्ताइस वर्ष में वेदादिशास्त्रों के श्लोकों के

प्रमाणों से प्रमाणीभूत-श्लोकों के अर्थो से

और

टिप्पणियों से अलंकृत कर रायबरेली मण्डलस्थ स्वकीय 'गंगाधर प्रेस'

में मुद्रित कराकर प्रकाशित किया।

चैत्र शुक्ल रामनवमी सम्वत् १९८८ वि.

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास
कृत

रामायण

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्ड

अथ श्रीमद्गोस्वामीतुलसीदासप्रणीतस्य श्रीरामचरितमानसस्य विविधवेद–शास्त्र–प्रमाणैर्विभ्राजमानं उत्तरकाण्डाभिधानं सप्तमसोपानं प्रारभ्यते।

हरिः ॐ तत्सत् श्रीरामचन्द्रय नमः–

यह अष्टाक्षर मन्त्र श्रीरामचन्द्रजी का है, गोस्वामीजी ने इस काण्ड में श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण कर सूचित किया है कि श्रीरामचन्द्र ही नारायण हैं तथाहि–

श्रीभागवते– नारायण परावेदा नारायणपरामखाः। नारायण परं ज्ञानं, नारायणपरन्तपः।।

अर्थात् वेदों में नारायण का ही वर्णन है, यज्ञों में नारायण का ही पूजन होता है, ज्ञानी भक्त नारायण का ही ज्ञान करते हैं और तपस्वी लोग भी नारायण के दर्शनार्थ ही तप करते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी वही नारायणरूप अवतार हैं इस विषय में निम्नलिखित श्लोक प्रमाण है।

वेदा येन समुद्धता वसुमती पृष्ठेधृताऽप्युद्धता ।
दैत्येशो नखरै र्हतः फणिपते र्लोकं बलिः प्रापितः।।
क्ष्माक्षत्रा जगती दशास्यरहिता माता कृता रोहिणी ।
हिंसा दोषवती धराऽप्यपवना पायात् स नारायणः।।

अर्थात् जिन्होंने मत्स्यावतार धारणकर वेदों का उद्धार किया, कच्छपावतार से पीठ पर धरा को धरा, बराहावतार से हिरण्याक्ष को मार पाताल से वसुधा को उभाड़ा, नृसिंहावतार धारणकर हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को नखों से फाड़कर उसका वध किया, वामनावतार धारण कर बलि को पाताल पठाया, परशुरामावतार धारणकर पृथ्वी को क्षत्रिय जाति से खाली कर दिया। रामावतार से दशमौलि का अन्त किया, बलरामावतार धारण का रोहिणी आदि को मातृत्वेन सत्कार कर कंसादि दैत्यों का नाश किया। बौद्धावतार से हिंसा को दोषवती सिद्ध कर दानवों को यज्ञाद्यनुष्ठान करने से रोका और कल्कि अवतार धारण कर पृथ्वी को यवन रहित किया, वह नारायण श्रीमान् की रक्षा करें।

इस पद्य से पूर्णतया प्रमाणित हो गया कि नारायण का अवतार श्रीरामचन्द्रजी हैं। नारायणजी का मन्त्र भी अष्टाक्षर का है और श्रीभागवत् में **'अन्ते नारायणस्मृतिः'** इस वचन का समुपदेश किया गया है। श्रीमान् मानसाचार्य ने भी अन्तिम काण्ड में नारायण रूप श्रीरामचन्द्रजी का समस्त प्राणियों को पूर्वोक्त मन्त्र से स्मरण दिलाया है। यथाहि–

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा । आदौ मध्येऽवसाने वै हरिः सर्वत्र गीयते।।

:: श्लोक–

केकीकंठाभनीलं सुखरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम् शोभाढ्यम् पीतवस्त्रं
सरसिजनयनं सर्वदासुप्रसन्नम्। पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं
बन्धुना सेव्यमानम् नौमीड्यं जानकीशं रघुबरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ।।१।।

अर्थ–सप्तम सोपान रूप इस उत्तर काण्ड के आरम्भ में निज इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करते हुये गोस्वामीजी वर्णन करते हैं कि मोर के कण्ठ की आभा के समान नील शरीर वाले, देव श्रेष्ठ, भृगुलता से सुशोभित, शोभा से परिपूर्ण, पीताम्बर धारी, कमल नयन, सदैव प्रसन्नचित्त, हाथों में बाण और धनुष धारण किये हुये, वानरबृन्द समेत भाई श्रीलखनलाल जी से सेव्यमान्, पूज्य जानकीश रघुकुलतिलक पुष्पकविमान पर बिराजमान श्रीरामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

+ कोसलेन्द्रपदकंजमञ्जुलौ कोमलाब्जजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसंगिनौ।।2।।

अर्थ– ब्रह्मा और शंकरजी से बन्दित सीताजी के कर–कमलों से स्नेहसहित लालन किये गये ध्यान करने वालों के मन रूपी भ्रमर के संगी कोसलाधीश के सुन्दर कोमलचरणकमलों की मैं बन्दना करता हूँ।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरम् अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकंजलोचनन्नौमिशङ्करमनंगमोचनम्।।3।।

अर्थ– कुन्द, पुष्प, चन्द्र और शङ्ख के समान शुभ्र, सुन्दर शरीरवाले दयालु तथा सुन्दर कमल समान नेत्रवाले मनोऽनुरूप सिद्धि देने वाले मार मर्दन पार्वती पति श्रीमहादेवजी को मेरा प्रणाम है।

प्रथम काण्ड में ''कुन्द इन्दु सम देह'' से शिव वन्दना का उपक्रम और यहाँ उसी शब्द पर उपसंहार किया।

★दोहा– रहा एक दिन अवधि कर अतिआरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृस तन रामबियोग।।

भुशुण्डि रा0–अधेर्वारशेषे वै पौरा जानपदास्तथा।
रामविश्लेषदीनाङ्ग्यश्शोचन्त्यम्बा इतस्ततः।।१।।

अर्थ– चौदह वर्ष की जो अवधि थी, उसके एक दिन शेष रहने पर पुरवासी देशवासी और रामचन्द्रजी के वियोग से दुर्बल अंगवाली मातायें यत्र–तत्र समाचार पाने के लिए आतुर हो रही हैं।

सगुन होहिं सुंदर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
ψ प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर।।

:: केका अस्त्यस्येति केकी 'ब्रीह्मादिभ्यश्च' सूत्र से इति प्रत्यय है और कण्ठ वो साथ षष्ठी तत्पुरुष समास होने पर 'अन्येषामपिदृश्यते' इस सूत्र से पूर्वपद के दीर्घ हुआ है।

पीतवल्कल ही पीताम्बर है–

गोस्वामीजी ने इस नमस्कारात्मक मंगलाचरण से पुष्पकारूढ़ समरविजयी लंका से उत्तर की ओर को प्रस्थित पार्षदों के सहित श्रीराघवेन्द्र के चित्र को अविकल चित्रण किया है।

मन महँ विप्र चरन सिर नावा। उत्तर दिसहिं विमान चलावा।।

इसी से वा उत्तरीय चरित्रों के प्रतिपादन से इस काण्ड का उत्तर काण्ड नाम पड़ा।

+यह रथोद्धता छन्द का श्लोक है। इसके चारों चरणों से चार बातें निकलती हैं। यथाहि–

स्मरण, वन्दन, भजन, चिन्तन, नौमि क्रिया का अध्याहार ऊपर से है। कोसलेन्द्र पद से साम्राज्य रूप वस्तु निर्देशात्मक मंगल है।

★कौसल्याजी का वचन– **अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धर्म धुरीना।।**
अस बिचारी सोइ करेहु उपाई। सबहिं जिअत जेहि भेटेहु आई।।

प्रजावर्ग का विश्वास– **विषम वियोग न जाइ बखाना। अवधि आस राखहिं सब प्राना।।**

भरतवाक्य गीतावली– **तुलसी बीते अवध प्रथम दिन जौ रघुबीर न अइहौ। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ।।** इससे अति आरत हैं।

ψअवधकाण्ड में नगर की दशा यों लिखी थी– लागत अवध भयानक भारी। मानहु काल राति अधियारी।।
घर मसान परिजन जनु भूता। सुतहित मीत मनहुं यमदूता।। बागन बिटपबेलि कुम्हिलाहीं। सहित सरोबर देखि न जाहीं।।
इत्यादि बीत कर अब रमणीयता आ गई।

निमित्तानि च दृश्यन्ते रम्याणि शकुनानि हि।
रामागमनहेतुत्वं व्याहरन्ति मिथोजनाः ।।२।।

अर्थ– विविध प्रकार के निमित्त (पुररम्यता आदि) और शुभ शकुन दिखाई देने लगे। तब तो सभी मनुष्य आपस में कह रहे थे कि यह उत्सव रामचन्द्रजी आ रहे हैं इस लिये हो रहा है ऐसा भान होता है।

कौसल्यादि मातु सब मन अनन्द अस होई।
आयउ प्रभु सियअनुज जुत, कहन चहत अब कोई।।

मातृवर्गमनस्येवम्प्रमोदो जायते खग।
कथयन्निव वनादत्रागतो रामो महात्मनाः।।३।।

अर्थ– हे गरुड़ ! कौसल्यादि माताओं के मन में इस प्रकार आनन्द हो रहा है कि मानो उदारहृदय रामचन्द्रजी सपरिच्छद बन से आ गये ऐसा शीघ्र ही कोई कहना ही चाहता है।

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन विचार।।१।।

पाद्मे–भरतस्य भुजोनेत्रमवाम्प्रास्फुरद् द्रुतम्।
हृदयाच्च गतश्शोको हर्षास्त्रैः पूरिताननः।।४।।

अर्थ– भरत जी का दाहिना नेत्र व बाँह फड़कने लगा (इसे शुभ शकुन जाना) हर्षाश्रु नेत्रों में छा गये। और शोक भी जाता रहा क्योंकि पुरुषों के दक्षिणाङ्ग स्फुरण का बसन्तराज ग्रन्थ में शुभफल लिखा है।

★ रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।।
कारन कवन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराये।।

प्राणाधारावधेश्चैकदिनशेषे मनस्यहो।
भरतस्य महद्दुःखं स्वाम्यनागतिहेतुकम्।।५।।

अर्थ–मेरे प्राणाधार रूप अवधि का एक ही दिन रह गया। यह विचारते ही भरतजी के मन में अपार दुःख हुआ (वे सोचने लगे) अरे! क्या कारण हुआ कि स्वामीजी नहीं आये।

:: अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदार बिन्द अनुरागी।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा।।

धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूः स्वपतिप्रिया।
यस्यास्तनूजो रामस्य चरणो सेवतेऽन्वहम्।।६।।

अर्थ–अपने पति की प्यारी वीर पुत्र जनयिन्त्री सुमित्राजी अति धन्य हैं, कि जिनके हृदयनन्दन लक्ष्मणजी अहो रात्रि स्वामी चरणों की परिचर्या करते हैं।

जौं करनी समुझैहि प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलपसत कोरी।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अतिमृदुल सुभाऊ।।
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।।

वात्सल्यदिगुणानैशान् जानतो मे हृदि व्यथा।
मनागपि न चैवास्ति शकुनञ्जनयत्पदः।।७।।
झटित्यैव ध्रुवं सीतानाथसंदर्शनम् भवेत्।

अर्थ– प्रभु के भक्तवत्सलत्व आदि गुणों का स्मरण करते हुए मेरे मन में किञ्चिन्मात्र भी वेदना नहीं है और सगुन जता रहा है कि हे कैकेयीनन्दन शीघ्र ही निश्चय श्रीजानकीनाथजी का तुझे दर्शन होगा।

★ इस चौपाई से गोस्वामीजी लंकाकांड की कथा का सम्बन्ध मिलाते हैं। जहाँ पर कह आये हैं कि– वीते अवधि जाउँ जो जिअत न पावउँ वीर। इत्यादि–

:: लखनजी को बड़भागी कहने के अनेक कारणों में से कई ए (१) उन्होंने अपनी माता की आज्ञा पाकर बनवास में भी रामचन्द्र का संग दिया (इनकी माता ने रामचन्द्र को बनवास दिया) श्रीरामचन्द्रजी ने प्रेम पूर्वक लक्ष्मण को साथ ले लिया। चित्रकूट में भरतजी ने रामचन्द्रजी के साथ रहने की जो प्रार्थना की थी वह अस्वीकृत हो गई थी।

जीवन लाह लषन भल पावा। सब तजि रामचरन लव लावा।

::बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।

व्यतीते सीमति क्षिप्रं नूनं मे मरणम्भवेत्।।८।।

अर्थ–अवधि पूरी हो जाने पर यदि मैं जीवन धारण किये रहा तो संसार में मुझ सरीखा नीच और कौन होगा (कोई नहीं)।

★ दोहा– राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत।।
बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृसगात।
राम राम रघुपति जपत, स्त्रवत नयन जलजात।।१।।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलकगात लोचनजल बरषेउ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधासम बानी।

अध्यात्मे– यत्र ग्रामे स्थितो नूनम्भरतो भ्रातृवत्सलः।
विलापं प्रकरोत्युच्चैस्तं ग्रामं संददर्श ह।।९।।
फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम्।
मलपंकविदिग्धांगं जटिलं वल्कलाम्बरम्।।१०।।
पादुके ते पुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम्।
मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः।।११।।
वृत्तदेहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्म मिवस्थितम्।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः।।१२।।

अर्थ–जिस स्थान में भातृ प्रेमी भरतजी उच्च स्वर से विलाप करते हुए रहते थे वहाँ मारुति श्रीहनुमान्जी पहुँचे और फल मूल से प्राण यात्रा का निर्वाह करते श्रीरामजी की चिन्ता में लगे, धूलि धूसरित, जटाधारी, वल्कल पहिने, खड़ाऊ को सामने रखकर भूमंडल का शासन करते हुए, प्रकटदेह मूर्तिमान् साक्षात् धर्मरूप विराजे कैकेयीनन्दन को देख सानुनय बोले।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुनगन पाँती।।
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता।।

यन्त्वाञ्चिन्तयसे रामन्तापसं दण्डकेस्थितम्।
अनुशोचसि काकुत्स्थ स त्वां कुशलमब्रवीत्।।१३।।

अर्थ–हे काकुस्थ ! जिन्हें तुम ध्याते हो, और जिन दण्डकारण्यवासी तपस्वी की भेंट के लिये उत्सुक हो रहे हो, वही श्री रामचन्द्रजी ने तुम्हारी कुशलप्रवृत्ति जानने को मुझे आपके समीप में भेजा है।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित पुर आवत।।

समरे रावणं हत्वा रामः सीता मवाप्य च।
उपायाति समृद्धार्थः ससीतः सहलक्ष्मणः।।१४।।

अर्थ–रघुवंश दिवाकरजी निज प्रयोजन को सिद्ध कर युद्धांगन में रावण का मूलोच्छेदन करके सकुटुम्ब करीब ही आ गये हैं। मैं आपको सूचना देने आया हूँ।

:: यहाँ भरतजी ने जौं– यह संशयात्मक वाक्य इसलिये कहा है कि वह प्राण तीन बार मुझे धोखा दे चुका है। यथाहि–

सुनि बन गमन कीन्ह रघुनाथा। धरि मुनि वेष लखन सिय साथा।। बिनु पानहिन पयादेहि पाये। संकर साखि रहेउ यहि धाये।।

दूसरी बार– **अहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।।**

तृतीय बार– **अब सब देखेउँ आँखिन आई। जियत जीव जड़ सबै सहाई।।**

अतएव **'जौ'** कहा ऐसा नहीं कि– चौथी बार भी वही काम किया जाये।

★श्रीरामचन्द्रजी के आज्ञानुसार ही बटुरूप धारण किया। यथाहि– प्रभु हनुमन्तहिं कहा बुझाई। धरि बटुरूप अवधपुर जाई।। और भी काष्ठ जिह्वा। स्वामी के पद– जाहु भरत पर पवनकुमार। देखि नगरगति और भरतगति बोलेहु कुशल हमार।। एकै राति अवधि में बाकि रही भई सो पार। भरत कुशल सुनतै मैं चलिहौं तनिकौ लगिहि न बार।। विप्ररूप धरि गयो पवनसुत भरतहिं देखि उदार। रोम रोम आनन्द पायकै मंगल बचन उचार।। देवकाज करि सहित लखन सिय त्रिभुवन के सिंगार। आवत कुशल भरतजू सुनिये पूछा कुशल तुम्हार।।

★सुनत वचन बिसरे सब दूखा। तृषावन्त जिमि पाव पियूखा।।

एवन्तवाक्यपीयूषासेचितो भरतो मुदम्।

निर्व्यलीकश्चाप इव तृषितश्चाप्तजीवनः।।१५।।

अर्थ–इस तरह हनुमान्‌जी के वचनामृत वर्षण से सिंचित भरतजी के दैहिक क्लेश नष्ट हो गये जैसे प्यासे मनुष्य को जल मिलने पर महाहर्ष होता है उसी भाँति हर्ष भी हुआ।

को तुम्ह तात कहाँ तें आये। मोहि परम प्रिय वचन सुनाये।।

अध्यात्मे– देवो वा मानुषो वा त्व मनुक्रोशादिहागतः।

अर्थ–श्रीभरतलालजी बोले कि हे प्रियभाषिन्! तुम देवता हो या कोई अपूर्व मनुष्य हो जो यह स्वामी के शुभागमन का शुभ संदेश बता रहे हो और अपनी कृपालुता का स्वच्छ उदाहरण दे रहे हो।

मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना।।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।।

मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।।

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य हनूमान् नाम मारुतिः।

इत्याकर्ण्यैव भरतश्चाश्लिष्यत् प्रियवादिनम्।।१६।।

नेत्रे प्रेमाश्रुसम्पूर्णे शरीरं पुलकाञ्चितम्।।१७।।

अर्थ–हे कृपानिधान मैं कौसलेन्द्र श्रीरामजी का सेवक हूँ और हनुमान् मेरा नाम है, पवन का पुत्र हूँ वचन सुनते ही भरतजी तुरन्त उठ कर प्रियवादी से मिले, और आँखों से प्रेम के बूँद छलक पड़े, शरीर भी पुलकित हो उठा।

:: कपि तब दरस सकल दुख बीते। मिले आज मोहि राम पिरीते।।

बार बार बूझी कुसलाता। तो कहँ देउँ काह सुनु भ्राता।।

व्यपेतानि च दुःखानि दर्शनात्तव मारुते।

प्रियाख्यानँव्विधात्रे ते किन्ददेहं वदाशु भोः।।१८।।

अर्थ–श्रीभरत जी बोले कि हे भ्रातः ! आज तुम्हारे दर्शन से सकल दुःख दूर हुए, प्रथम दुःख अनागमन का, दूसरा शत्रु की लड़ाई का, तीसरा सीताहरण का, चौथा लक्ष्मण के शक्तिवेध का, अब मुझे प्रिय भाषण का बदला चुकाने को कोई भी वस्तु गौरवास्पद नहीं जँचती कि क्या दे कर तुम्हें खुश करूँ।

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।।

नाहिंन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभुचरित सुनावहु मोही।।

पद्म पु०– जगाद मम तन्नास्ति यत्तुभ्यन्दीयते मया।

दासोऽस्मि जन्मपर्यन्तं रामसन्देशहारिणः।।१९।।

अर्थ–फिर बोले भाईजी, कोई भी समीचीन वस्तु मैं नहीं देखता हूँ कि जो प्रिय भाषण के बदले में महत्ता का सहयोग दे सके, अतः रामसन्देशहारी आप का जन्मपर्यन्त के लिये मैं दास हूँ। अब प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के मधुर चरित सुनाने की कृपा कीजिये।

★रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता। आयउ– इतना सुनकर प्रसन्न होने को कौन कहे बोले तक नहीं। कारण यह था कि वहीं श्रीहनुमान्‌जी के द्वारा सीताहरण व सौमित्रि (लक्ष्मण) के शक्तिविद्ध होने का समाचार भरतजी को मिला था। तत्पश्चात् उन लोगों के यथास्थान पर आ जाने का कुछ भी वृत्त नहीं विदित हुआ था और साम्प्रत समय में भी केवल श्रीरघुवंशावत्स हीन श्री का निर्देश किया गया अतएव पौरस्त्य पश्चाताप बना ही रहा 'जब रिपु रन जीत सुयश सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत।। यह सुनकर आनन्द तो अवश्य हुआ बोले ही नहीं किन्तु प्रेमालिंगन भी किया।

::यहाँ विशेषालंकार का तीसरा भेद है। परिभाषा– जहाँ किसी अन्य कार्य आरम्भ करते हुये न केवल वही कार्य हो किन्तु उसी यत्न से दूसरा कार्य भी किया जाय। जैसे कपि– यहाँ कपिदर्शन से सब दुःख मिट गये और मानो रामचन्द्रजी ही से भेंट हुई।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा।।

एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना।

आचचक्षे प्रियस्य श्रीरामस्य चरितं क्रमात्।।२०।।

अर्थ–महात्मा भरतजी के माधुर्य भावों से भरे वचनों को सुनकर क्रम से रघुनाथजी के मनोहर चरित सुनाकर वायुनन्दनजी ने निजगिरा को पवित्र किया।

कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं।।

वाल्मीकीये– कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान् मयि राघवः।

अर्थ–अरे भइया! भातृत्व का सच्चा स्नेह निभाने वाले राघवेन्द्रजी प्रवासी होने से मुझे भूले तो नहीं।

छंद–निज दास ज्यौं रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरतबचन बिनीत अति कपि पुलकितन चरनन्हि पर्‌यो।।
रघुबीर निजमुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद गुन सिंधु सो।।

अर्थ–रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ने क्या कभी मुझे अपना दास जान स्मरण किया था? भरतजी के इस प्रकार के अधिक नम्रवचन सुनके हनुमानजी रोमांचित हो उनके चरणोंपर गिर पड़े और बोले, जो रामचन्द्रजी चर–अचर के नायक हैं वे जिसके गुणों का वर्णन अपने मुख से करते हैं सो भरतजी आप नम्र, बहुत ही पवित्र और उत्तम गुणों से परिपूर्ण क्यों न होंगे अर्थात् अवश्य हैं।

दोहा– राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात।।

पद्म पु०–शृणु तात दिवारात्रौ यदा ते स्मरणम् भवेत्।

प्रेमाश्रुभिस्सम्भृते च नयनाम्बुरुहे प्रभोः।।२१।।

अर्थ– हे तात! सुनो, दिन या रात्रि में जब भी तुम्हारा स्मरण रघुकुलशार्दूल को हो जाता है, तभी उनके लोचनजलजातों में प्रेमाश्रु भर आते हैं।

सो०– भरत चरन सिरु नाइ, तुरत गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढि।।२।।

अध्यात्मे– भरतम्प्रणिपत्याथ त्वरितञ्चैत्य भावुकम्।

वानरो वेदयामास निशम्य प्रस्थितोऽवधम्।।२२।।

अर्थ–हनुमान्‌जी ने श्रीभरतलालजी के चरणों में नम्र हो शीघ्र ही जाकर इधर का भव्य श्रीकौशल्यानन्दन के श्रीचरणों में प्रणिपात भावसे समर्पण किया, और श्रीरामचन्द्रजी भी सप्रेम सुनकर श्रीअवध को चले।

हरषि भरत कोसलपुर आये। समाचार सब गुरुहिं सुनाये।।
पुनि मन्दिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।।

वाल्मीकीये– श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतस्सत्यविक्रमः।

अयोध्यामेत्य सर्वेभ्यः समाचारं न्यवेदयत्।।२३।।

अर्थ–पवनकुमार के चले जाने पर नन्दिग्राम से श्रीअवध को जाकर भरतजी ने वसिष्ठ आदि, आचार्यों के प्रति शीलसागर श्रीरघुवंश प्रदीपजी के समावर्तन का भव्य वृत्तान्त प्रकट किया।

सुनत सकल जननी उठि धाई। कहि प्रभुकुसल भरत समुझाई।।
समाचार पुरबासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि सब धाये।।

आनन्द रा०–अयोध्यावासिनः सर्वे समाचारन्निशम्य च ।

निर्जग्मुः सहसा नार्य्यो युववृद्धकुमारकाः।।२४।।

अर्थ–सम्पूर्ण अध्योध्यावासी स्त्री, युवा,वृद्ध, कुमार आदि श्रीरामचन्द्रजी के आगमन समाचार सुनकर देखने के लिए सहसा निकल पड़े।

दधि दूर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला।।

भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलीं सिंधुरगामिनी।।

पद्म पु०–पाटीरं चारु तुलसी दधिक्षौद्रं सहाक्षतैः।

दूर्वासिद्धार्थसम्पन्नं महामंगल्यकं च यत्।।२५।।

स्वर्णपात्रे महादिव्ये नानारत्नप्रपूरिते।

संगृह्य दीपमप्रज्वाल्य ययु र्गायद्‌वरांगणाः।।२६।।

अर्थ–स्वर्ण पात्र में चारु चन्दन, दही, शहद, दूध, अक्षत, सरसों, फल, फूल और जो मांगलिक चीजें थीं उन्हें भी इकट्ठा कर दीपक जलाये श्रीरामचन्द्रजी के स्वागमन का मधुरगान करती हुई सुन्दरियाँ स्वागत के लिये चलीं।

जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल वृद्ध कहँ संग न लावहिं।।

एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।।

अध्यात्मे– निर्यान्ति वृन्दशस्सर्वे रामदर्शनलालसाः।।२७।।

अर्थ– श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन की महोत्कण्ठा से झुण्ड के झुण्ड सब निकल पड़े।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।।

सत्योपा०– अयोध्यानगरं रम्यं नानारत्नैश्च शोभितम्।

रामागमनमाज्ञाय बभूबच्छबिधाम ह।।२८।।

अर्थ–अनेक रत्नों से भूषित मनोहर अवधनगर भी श्रीरामचन्द्रजी का समागम जानकर शोभा व अद्‌भुत चमत्कार का धाम बन गया।

भइ सरजू अति निर्मल नीरा। बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा।।

रघुवंशे– सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।

दूरे बसन्तं शिशिरानिलैमां तरंगहस्तैरूपगूहतीव।।२९।।

अर्थ– यह सरयू पूज्य पिताजी से वियुक्ता (बिरहणी) मेरी माता की भांति प्रबास से आ रहे शीतल पवनों के द्वारा तरंग रूप हाथों से मानों मुझे लिपटा रही हैं।

दोहा– हरषित गुरु परिजन अनुज, भूसुर बृंद समेत।

चले भरत अतिप्रेम मन, सनमुख कृपानिकेत।।

वाल्मीकीये–भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः।

प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैः सह।।३०।।

अर्थ– महात्मा भरतजी मन्त्रिमंडल को साथ लिये दलबल समेत बड़े हर्ष से श्रीरामचन्द्र के स्वागत के लिए चले।

बहुतक चढीं अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।

देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान।।

अध्यात्मे–श्रुत्वा स्त्रियोराममुपागतं मुदा प्रहर्षवेगात्कलिताननश्रियः।

अपास्य सर्वं गृहकार्यमाहितं हर्म्याणि चैवारुरुहुः स्वलङ्कृताः।।३१।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के आगमनजन्य हर्ष वेग से जिनके मुखारबिन्दों में सुषमा दमक रही है और आभूषणों से विभूषित हैं ऐसी केतिक ललनायें हस्तगत ग्रहकार्य को ज्यों का त्यों छोड़ भगवद्‌दर्शन करने के लिए अट्टालिकों के ऊपर चढ़ गईं।

★राकाससिं रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान।।३।।

चम्पूरा०–राकाशशिनमिव रघुपतिमालोक्य नगरसिन्धुर्वनितावीचिभिः
परिरम्प्रमाणो निर्भरामोदमविन्दत।

अर्थ–पूर्णिमा के चन्द्र के समान श्रीरामचन्द्रजी हैं और अवध सिंधु समान है, सो पूर्णचन्द्र को देख समुद्र प्रसन्न हुआ और शब्द करते हुये स्त्रियों के तरंगरूप से बढ़ने लगा।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा।।

पद्म पु०– स्थानन्नः पूर्वजानामिदमधिकमसौ प्रेयसी पूरयोध्या।
दूरे आलोक्यते या हतविविधहविः प्रीणिताऽशेषदेवा।।३२।।

अर्थ– हे सुग्रीव, विभीषण, अंगदादि बानरो! यह स्थान मेरे पूर्वजों का है और जो दूर पर वह नगरी गगनचुम्बीं राजमहलों व प्रासादों से अलंकृत दिख रही है वह मेरी पुरी है, जिसने विविधि हवनीय पदार्थों से अमरवर्गों को अनेकों बार भली भाँति प्रसन्न किया है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना।।
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।।

वैकुण्ठाख्यमिदं क्षेत्र कोटिपुण्यैरवाप्यते।
अयोध्यया समं किञ्चिन् न स्वर्गे भूतले तथा।।३३।।
सरयूमहिमानश्च कश्चिज्जानाति तत्वतः।।३४।।

अर्थ– हे मित्रों! यह वैकुण्ठ नामक क्षेत्र है इसके समान मुझे कोई भी लोक प्रिय नहीं है। इस क्षेत्र का दर्शन बड़े भाग से सुलभ है और इसके व सरयू के माहात्म्य को कोई बिरले ही जानते हैं।

जनमभूमि मम पुरी सहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप पावहिं नर बासा।।

रघुवंशे– जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्या मनुराजधानीम्।
तरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि।।३५।।
तत्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजान्नास्ति शरीरबन्धः।

अर्थ–राजधानी अयोध्या के उत्तर आशा में जिसके तट पर यज्ञस्तम्भ गाड़ा गया था और इक्ष्वाकुवंशी भूपालों ने सैकड़ों हयमेधों से जिसके सलिल पवित्र कर दिये हैं ऐसी यह सरयू नदी बिराज रही है, जिसके स्नान मात्र से तत्वज्ञान के बिना ही शरीरधारियों को पुनः शरीरी नहीं होना पड़ता।

अतिप्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभुबानी। धन्य अवध जो राम बखानी।।

दोहा– आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु भगवान्।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान।।

अध्यात्मे–ततो रामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद् भुवि।
अवरुह्य तदारामो विमानग्रयान्महीतलम्।।३६।।

★इस दोहे में पूर्णोपमालंकार है। जिसमें उपमा, उपमेय, वाचक, धर्म, चार बातें होती हैं वही पूर्णोपमालंकार है।
(१) पूर्णचन्द्र– रामचन्द्र (२) समुद्र–नगरी (३) ऊँची तरंगें– अटारिन पर चढ़ी स्त्रियाँ (४) कोलाहल– स्त्रियों का गान (५) समुद्र का बढ़ाव–भरत समेत नगरवासियों का रामजी की ओर बढ़ना (६) पूर्णचन्द्र आकाश में– रामचन्द्र पुष्पक में (७) चन्द्र नक्षत्र सहित–श्रीरामचन्द्र सुग्रीव विभीषणांगद सहित (८) चन्द्र चौदस के बाद पूर्ण होकर लोगों के ताप को बुझाता है– श्रीरामचन्द्रजी चतुर्दश वर्ष के बाद नगर निवासियों के दुःख को दूर करते हैं।

अर्थ—तदन्तर कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी ने अवधवासियों को आते देख विमान को नीचे उतरने के लिए आदेश दिया, तब श्रीरघुवंशभूषणजी विमान श्रेष्ठ से भूमि पर उतरे।

दोहा— उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष बिरह अति ताहु।।४।।
अब्रवीत् पुष्पकन्देवो गच्छ वैश्रवणं वह।
अनुगच्छानुजानामि कुबेरन्धनपालकम्।।३७।।

अर्थ—पुनः प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक के प्रति बोले कि हे पुष्पकविमान तुम कुबेर के पास जाओ और मैं आज्ञा देता हूँ कि धनेश्वर की सदैव आज्ञा पालन करो।

आये भरत संग सब लोगा। कृसतन श्रीरघुबीर बियोगा।।
पद्म पु०— मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च सानुजः कैकयीसुतः।
सवलैरवनीपालै राययौ पूर्वजं तदा।।३८।।

अर्थ—श्रीभरतलालजी अपने अनुज शत्रुघ्न के साथ आमात्य, शहर के मुखियों तथा पृथ्वीपालों और दलबल आदि को लिये हुये अग्रज श्रीरामचन्द्र के पास आये।

बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।
धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुजसहित अतिपुलकतनोरुह।।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया।।
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम धुरंधर रघुकुल नाथा।।
वामदेव वसिष्ठं च मातृवृद्धाँश्च बान्धवान्।
प्रणनाम महातेजा सीतया लक्ष्मणेन च।।३९।।
पर्यष्टच्छद् गुरुः क्षेमं काकुत्स्थम्परिरभ्य च।
तवानुक्रोशतो देव शाश्वतं कुसलम्मम।।४०।।

अर्थ— महावर्चस्वी श्री भानुकुल भूषण ने पूज्यवर्गों को आते देख धायकर गुरुचरण सरोरुह में मनसा, वचसा, शिरसा प्रणाम किया। और श्रीसीताजी सुमित्रानन्दन के सहित कौशल्याहृदयनन्दन से प्रेमार्द्रिभूत गद्गद बचनों से गुरुदेव ने कुशल क्षेम पूछे। उत्तर में श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे देव! आपकी अलौकिक कृपा से हम लोगों का सर्वदा कुशल है।

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज।।
परे भूमि नहिं उठत उठाये। बर करि कृपासिंधु उर जाये।।
अध्यात्मे—सम्प्राप्य रघुशार्दूलं ववन्दे सानुगैर्वृतः।
समुत्थाप्य चिराद् दृष्टं भरतं रघुनन्दनः।।४१।।
भ्रातरं स्वाङ्कमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे।।४२।।

अर्थ—सहित शत्रुघ्न व अनुयायियों के श्रीभरतलालजी रघुकुल शार्दूल के चरणों पर गिर पड़े और दीर्घकाल तक पड़े ही रहे उठाये नहीं उठते थे। परंच दयासागर रामचन्द्रजी ने बरियाई से उठाय और सान्त्वना देते हुये छाती से लगा लिया।

स्यामलगात रोम भये ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे।।
छंद—राजीवलोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अतिप्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो नहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुखमा लही।।

रघुवेश– उदीक्ष्य च तपः कृशं वपुरमुष्य वात्सल्यतः करेण स मुहुः स्पृशन्नविरराम रामाश्चिरम्।
स भ्रातरं भरतमर्थ्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ।।४३।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी इन भरतजी के शरीर को तप करने के कारण कृश देखकर बड़े ही वात्सल्य भाव से मिले और आँखों में आँसू भर आये, श्यामल शरीर में रोमांच आ गया किंच बार–बार स्नेहाधिक्य के कारण मिलते ही रहे, विराम लेने की चिरसमय तक आकांक्षा नहीं हुई। (उस समय के आश्लेष को मानसकार वर्णन करते हैं कि मानों प्रेम और श्रृङ्गार इकठौर मिलकर बड़ी शोभा को प्राप्त हुये हों)।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें भिन्न जान जो पावई।।
अब कुसल कोसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूडत बिरहबारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो।।

सत्यो पा०– कुशलँव्वदेति सम्पृष्टो भरतो वक्तुमक्षमः।
अद्यजन्म कृतार्थं मे सँव्वृत्तश्च मनोरथः।।४४।।
यत्वाम्पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्।

अर्थ–दयासिंधु ने भरतजी से कुशल पूछा। सो उनके मुख से शीघ्र वचन नहीं निकलता था। महादेवजी कहने लगे कि हे पार्वती! सुनो, वह सुख शब्द और मन से भिन्न है उसे कोई जान नहीं सकता। सुखानुभव के पश्चात् बोले कि हे कोशलाधीश! आज मेरा जन्मधारण करना सफल हुआ और मनोरथ भी सफल हुये जो कि श्रीअवध को लौटे हुये आपके दर्शन करके मेरे सुख सौभाग्य के दिन फिर से बहुरे।

दोहा–पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन, भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ।।५।।

अध्यात्मे–शत्रुघ्नं स्वाङ्कमारोप्य रामस्तम्परिषस्वजे।।४५।।

चम्पू रा०–पश्यन्ननन्द भरतः परिरभ्यदोर्भ्यां सौमित्रिमार्य समदुःखकृशीकृतांगम्।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी अपने अंक में शत्रुघ्न को बिठाकर बड़े दुलार से मिले, और भरतलालजी लखनलालजी को देखते ही बहुत खुश हुए खुश ही नहीं हुये किन्तु आर्य ज्येष्ठ भ्राताजी के समान दुःख सहने से बहुत ही दुबले दीख पड़ने के हेतु बड़े गाढ़ भाव से मिले।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरहसंभव दुख मेटे।।

लक्ष्मणञ्च तथा शत्रुसूदनश्चाभ्यवादयत्।।४६।।

अर्थ– और उस समय शत्रुघ्नजी ने लक्ष्मणजी से प्रणाम कर वियोगजन्य दुःख को दूर किया।

सीताचरन भरत सिरु नावा। अनुजसमेत परमसुख पावा।।
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी।।

आनन्द रा०–सानुजो भरतः सीताचरणौ प्रणनाम ह।
प्रजा विलोक्य तं हृष्टा जहुर्दुःखं वियोगजम्।।४७।।

अर्थ–सहित शत्रुघ्न के भरतजी ने श्रीजानकीजी के चरणों में प्रणाम किया, पुरवासी लोग देखकर फूले नहीं समाते थे। इतना ही नहीं किंच बार–बार स्वसौभाग्य की स्तुति भी कर रहे थे और उनके विरह जनित दुःख मिट गये थे।

★प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहिं कृपाला।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किये सकल नर नारि बिसोकी।।
छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना

★खरारी कहने का भाव यह है कि बहुत शरीर धारण करने का कौतुक खर के मारने के समय भी किया था।

पद्म पु०—रूपाण्यनेकानि विधाय श्रीहरिर्यथार्ह मम्भोरुहलोचनेऽमिलत्।
प्रेमातुरः पौरचयैस्समं शिवे नाज्ञासिषुर्भेदमिमं जनाः क्षणम्।।४८।।
रघुवंशे—अन्वग्रहीत् प्रणमतः शुभदृष्टिपातैर्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा।

अर्थ—खरारीजी ने अनेक रूप धारण कर यथोचित पुरवासियों से क्षणमात्र में मिलके प्रेम भरे चितवन तथा कुशल क्षेम के मधुर बचन द्वारा पूछताछ से सभी को बड़ा आदर दिया इस प्रकरण का वर्णन करते हुये श्रीशंकरजी कहते हैं कि हे कमललोचने! श्रीरामचन्द्रजी के इस सुभग मिलन के मर्म को कोई नहीं जान पाया।

एहि बिधि सबहिं सुखी करि रामा। आगे चले सीलगुन धामा।।

आनन्द रा०— सर्वानेवं समाश्वास्य राघवोऽग्रे ससार ह।।४९।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार सभी को आनन्द देते हुये अग्रगामी हुये।

कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लेवाईं।।

सत्योपा०—कौसल्या मातरस्ता रामदर्शनकांक्षया।
प्रेमातुरा यथाऽधावन् वत्सं वीक्ष्यस्म धेनवः।।५०।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी को देखने की इच्छा से कौशल्यादि मातायें प्रेम विवश हो इस तरह धाईं जैसे कि दिनावसान में नवप्रसूता गऊ अपने बछड़े को देखकर धावती है।

★छंद—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।
दिनअंत पुरु रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।।
अतिप्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरषसुख अगिनित लहे।।

अर्थ—ऐसा मालूम होता है मानों छोटे बछड़े को घर में छोड़कर गऊ पराधीनतावश बन में चरने को गई हो दिन के अन्त में नगर की ओर थनों से दूध बहाती हुई हुंकार करके दौड़ी हो। श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रेम के साथ सब माताओं से मिले और मीठे—मीठे बचनों से उन्हें समझाया। श्रीरामचन्द्रजी के मिलने से पुत्र के वियोग का जो दुःख था वह दूर हो गया, वे अपरिमित हर्ष और सुख को प्राप्त हुईं।

दोहा— भेंटेउ तनय सुमित्रा, रामचरन रति जानि।
रामहिं मिलत कैकई, हृदय बहुत सकुचानि।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि मिले, मनकर छोभ न जाइ।।६।।

कैकयीं च सुमित्रां च ववन्दाते पुनश्च तौ।

अर्थ—पुनः राम लक्ष्मणजी ने कैकयी और सुमित्राजी के चरणों में प्रणाम किये।

सासुन्ह सबन्ह मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरष अति तेही।।

रघुवंशे— क्लेशावहा भर्त्तुरलक्षणाहं सीतेतिनाम स्वमुदीरयन्ती।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे।।५१।।

अर्थ—श्रीसीताजी ने अपना नाम बतलाती हुई सासुओं के पादारबिन्दों में बड़े भक्तिभाव से प्रणाम किया।

देहिं असीस बूझि कुसलाता। होहु अचल तुम्हार अहिबाता।।

★यहाँ उक्त विषय वस्तूप्रेक्षालंकार है। अनुप्रास की संसृष्टि है, यह उपमा में विपर्य्यय है, क्योंकि रामचन्द्रजी बन से आते हैं और मातायें घर से। जो स्थान रामचन्द्रजी के लिए कहना चाहिए वह माताओं को और जो माताओं के लिए कहना था वह रामचन्द्र के लिए कहा गया है। इस उलट—पुलट में 'द्वितीय असंगति अलंकार है' पर 'जहाँ राम तहँ अवध निवासू' के अनुसार अयोध्या अब तक वनरूपी है।

इस छन्द में बन को जाना, घास खाना और रम्हाने आदि से शब्दार्थ ग्रहण न करके प्रेम की पराकाष्ठा समझनी चाहिए जो गायों में विशेषरूप से देखने में आती है।

उत्तिष्ठ वत्से ननुसानुजोऽसौ वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव।

कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूच तुस्ते प्रियमप्यमिथ्या।।५२।।

अर्थ– हे वत्से! उठो यह निश्चय है कि तुम्हारे स्वामी अनुज समेत जो यह भीषण दुःख के (बनगमन खरदूषण वध लंकाधीशाक्रमण) के पार हुये हैं वह सब तुम्हारे ही सदाचार का फल है सासुओंने इस तरह आशीर्वाद देकर श्रीसीताजीको परम संतोष दिया।

सब रघुपति मुखकमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयनजल रोकहिं।।

कनकथार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं।।

सत्योपा०–दीपं स्वर्णमयेपात्रे गोघृतेन समन्वितम्।

सीतया सहितं रामं नीराजयन्ति सम्मुखे।।५३।।

अर्थ– सब लोग स्वर्णमय पात्र में गोघृत से दीपावली सजाकर सीताजी के सहित शुभासनासीन श्रीरघुकुल कमल दिवाकर की आरती कर रहे थे।

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं।।

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपासिन्धु रनधीरहिं।।

★हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा।।

अतिसुकुमार जुगल मम बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे।।

पश्यन्त्योपि पुनश्चाम्बाः पश्यन्ति रघुनन्दनौ।

परामृशान्ति मृदुलौ जघ्नतू रावणङ्कथम्।।५४।।

अर्थ–मातायें इन सुकुमार बालाकों को देखती हुई भी पुनः–पुनः देखती हैं और मनही मन इस बातपर गौर कर रही हैं कि अति मृदुल इन युगल कुमारों ने किस तरह रावण (आदि तीव्र राक्षसों) को मारा है।

दोहा– लछिमन अरु सीतासहित, प्रभुहिं बिलोकति मात।

परमानंद मगन मन, पुनि पुनि पुलकितगात।।७।।

अर्थ– मातायें लक्ष्मण और सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी को देखती थीं किंच मन परमानन्द का अनुभव करता था और शरीर में रोमांच आ गया था।

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला।।

हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा।।

भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा।।

अध्यात्मे–सुग्रीवो युवराजश्च हनूमाँश्च बिभीषणः।

मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषितः।।५५।।

भरतस्य गुणोदार्यसौजन्यानि स्तुवन्ति च।।५६।।

अर्थ–सुग्रीव युवराज,वायुपुत्र, और विभीषण आदि मानवविग्रह बनकर विविध भूषणों से भूषित होते हुये श्रीभरतलालजी की सुहृदयता सुजनता, गम्भीरता आदि गुणों की श्लाघा करते थे।

देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभुपद प्रीती।।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाये। मुनिपद लागहु सकल सिखाये।।

गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे।।

पद्म पु०–अथाहूयद्राजपुत्रः सुग्रीवप्रमुखान् सखीन्।

वसिष्ठस्य गुरोरस्य पादयोः प्रणमन्तु च।।५७।।

★यहाँ असम्भवालंकार है। लक्षणं कुवलयानन्दे–

असम्भववोऽर्थं निष्पत्त रसम्भाव्यत्व वर्णनम्। कोवेद गोपशिशुकः शैलमुत्पाठयेदिति।

जहाँ सम्भावका बिना कार्य हो उसे असम्भवालंकार कहते हैं जैसे कौन जानता था कि नन्दका छोटा सा छोहरा गोवर्धन उठा लिया।

अर्थ– इसके अनन्तर राजराजेन्द्र कुमार जी ने सुग्रीव प्रभृति मित्रवर्गों को बुलाकर संकेत किया कि इन पूज्यपाद मुनिवर्य वसिष्ठ जी के श्रीचरणों में प्रणाम करो इन्हीं की असीमानुकम्पा से युद्धांगन में बड़े–बड़े उग्र राक्षसों को मार गिराया था।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे।।
सुनि प्रभुबचन मगन सब भये। निमिष निमिष उपजत सुख नये।।

एते च मत्कृते प्राणोत्सर्जने सुतरां क्षमाः।
सखायो मे मुनेऽभूवन् प्लवास्समरसागरे।।५८।।

अर्थ–हे आर्य! ये सब सखा मेरे लिये प्राणपन से निरन्तर तैयार रहे थे इन सुहृदों के सौहार्द कहाँ तक सराहे जा सकते हैं। किन्तु इतना ही संक्षिप्त रीति से कहना पर्याप्त होगा कि समरसिन्धु में इन सभी ने जहाज रूप होकर मेरी सहायता की है।

दोहा– कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नायेउ माथ।
आसिष दीन्ही हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ।।

कौसल्यांघ्रियुगन्तैश्च प्रणतं सखिभिर्मुदा।
आशिषा योजयामास राममाता यशस्विनी।।५९।।

अर्थ–फिर उन्होंने कौसल्याजी के चरणों पर सीस नवाया, कौसल्याजी ने प्रसन्नता से उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम मुझे रामचन्द्र के समान प्यारे हो।

सुमन बृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुख कंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि–नर–बृंद।।८।।

पुष्पवृष्टवा नमोव्याप्तं प्रतस्थे रघुनन्दनः।
हर्म्यस्था ललना रामं पश्यन्ति श्रीधरम्प्रभुम्।।६०।।

अर्थ–पुष्पों की बरसा से आकाश छा गया था, आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्रजी राजभवन को चले। नगर की स्त्रियाँ अटारियों पर से श्रीरामचन्द्रजी को देखने लगीं।

कंचन कलस विचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज हारे।।
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाये मंगल हेतू।।
बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई।।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे।।

वाल्मीकीये–ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे।
सेंचिता पृथिवी कृत्स्ना हिमशीतेन वारिणा।।६१।।
ततोऽभ्यवाकिरँश्चान्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः।
शोभितानि च वेश्मानि सूर्यस्योदनम्प्रति।।६२।।
स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पंचवर्णकैः।
वादका वादयामासु र्वाद्यानि विविधानि च।।६३।।

अर्थ–तदन्तर नगरवासियों ने निज–निज भवन में रंगबिरंगी बन्दनवारें लगा दीं और राजमार्ग को गुलाब आदि के शीतल व सुगन्धित जल से तर कर दिया। भगवान् भास्कर के उदय से पूर्व ही इधर सड़कों पर लावा तथा पुष्प बिखेरकर चौकें सजा दीं, और चौकबाजार में जहाँ देखो मकान में सोने–चाँदी की बनी मालायें शोभा दे रही हैं।

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं।।
कंचनथार आरती नाना। जुवती सजे करहिं सुभ गाना।।

करहिं आरती आरतिहर कै। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कै।।

आनन्द रा०–चक्रुर्नीराजनन्तस्य नानाबलिपुरस्सरम्।

अर्थ–जहाँ देखो वहाँ स्त्रियाँ निछावर करती थीं और आरती सजाकर मनोहर गीत गाती हुई श्रीरामचन्द्रजी की आरती करती थीं।

पुरसोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना।।

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं।।

सत्योपा०–अयोध्यायाश्च माहात्म्यं वक्तुं शक्तो न चाब्जजः।

इतरेषां च का शक्ति र्विश्वासाद्रहितात्मनाम्।।६४।।

अर्थ– हे पार्वती ! श्रीअवधजी के माहात्म्य को विस्तरशः चतुर्मुख भी, नहीं कह सकते तो औरों की कौन चर्चा जिनके विश्वास ही नहीं है।

दोहा– नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।

अस्त भये बिगसत भईं, निरखि राम राकेस।।

अर्थ–स्त्रियाँ तो कुमुदिनी के समान हैं और अवध सरोवर है, श्रीरामचन्द्रजी का वियोग सूर्यतुल्य है सो रामविरह रूप सूर्य के अस्त होते ही अर्थात् रामचन्द्रजी के वियोग का दुःख मिटने पर स्त्रियाँ चन्द्ररूप रामचन्द्र को देखकर प्रफुल्लित हो गईं।

होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि, बाजहिं गगन निसान।

पुर नर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान्।।९।।

सर्वानेवं प्रतोष्याशुययौ स्वसदनं हरिः।।६५।।

अर्थ–नाना प्रकार के शुभशकुन हो रहे थे, और गगन में बाजे बज रहे थे कि रघुनाथजी ने सब को भावानुसार प्रसन्न कर (मातृ) भवन को चले।

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी।।

ताहि प्रबोध बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा।।

वसिष्ठ रा०–वनभुवि तनुमात्रत्राणमाज्ञापितम्मे सकलभुवनभारः स्थापितोवत्समूर्ध्नि।

तदिहसुकरतायामावयोस्तर्कितायां मयि पतति गरीयानम्ब ते पक्षपातः।।६६।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी केकयसुता से बहुत ही नम्र होते हुये बोले कि हे अम्ब ! आपने मुझको केवल अरण्य में अपने शरीरमात्रकी ही रक्षा का काम सौंपा। और छोटे से बच्चे भरत के सिर पर समस्त वसुधा का भार रख दिया, अतः यहाँ पर हम दोनों में से किसको सुभीता रहा इसका विचार यदि किया जाय तो स्पष्ट है कि आपका पक्षपात मेरे ही ऊपर बड़ा भारी है।

कृपासिंधु जब मंदिर गये। पुर नर नारि सुखी सब भये।।

सत्यो०–मन्दिरे प्रतियाते तु नैजं श्रीरघुनन्दने।

पौरानार्य्यस्तथा चान्ये शं प्रापुस्समबुद्धयः।।६७।।

अर्थ–रघुनाथजीके निजसदन में पहुँचने पर सब नगरवासी जन समुदाय बड़े साम्यभाव से रहने लगे।

गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बोलाई। आज सुधरी सुदिन सुभदाई।।

सब द्विज देहुहरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन।।

भद्रासनोपवेशार्थं मनुजानीतभूसुराः।

रामस्य सुमुहूर्तेऽद्य यूयमित्याह दैशिकः।।६८।।

अर्थ–पश्चात् वसिष्ठजी ने ब्राह्मणवर्गों को बुलाकर श्रीरामचन्द्रजी के सिंहासन पर बैठने का प्रस्ताव अग्रसर करते हुये निजानुमति प्रकट की कि आज ही शुभ मुहूर्त में श्रीरामचन्द्रजी राजसिंहासनासीन हों।

मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाये। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाये।।
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जगअभिराम रामअभिषेका।।
अब मुनिबर बिलंबु नहिं कीजै। महाराज कहुँ तिलक करीजै।।

श्रुत्वा मौनीं गिरं सर्व्वे बिलम्बस्वेति मावदन्।

अर्थ—सभा में विप्रवृन्दों ने इस विश्वाभिराम रामाभिषेक को सुनते ही परम प्रसन्नता से स्वीकृत किया और कहा कि इस शुभकार्य में विलम्ब न कीजिये

दोहा—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन, सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारेहु जाइ।।

ततो वसिष्ठवचनात् सुमन्त्रोनाम सारथिः।
रथानश्वान् गजाञ्छ्रेष्ठान् त्वरितं समसज्जत।।६९।।

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी की आज्ञा पाकर सुमन्त नामक सारथि ने झटपट अनेक रथ, घोड़े व बड़े दतारे हाथियों को अम्बारी आदि से सुशोभित कर तैयार कर दिया।

दोहा—जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रब्य मँगाइ।
हरष समेत बसिष्ठपद, पुनि सिरु नायेउ आइ।।१०।।

भृत्यद्वारा समानाय्य द्रव्यं मङ्गल्यमुत्तमः।
दैशिकाग्रे सुमन्त्रश्चाब्रवीन् नम्रो मुहुर्मुहुः।।७०।।

अर्थ—सुमन्तजी ने दूतों द्वारा मांगलिक वस्तुयें मँगाकर आचार्यजी के श्रीचरणों में प्रणाम करते हुये कहा कि भगवन् ! अभिषेकार्थ सामग्रियाँ तैयार हैं।

अवधपुरी अतिरुचिर बनाई। देवन्ह सुमनबृष्टि झरि लाई।।

अयोध्यानगरं रम्ये नानारत्नैश्च शोभितम्।
तदा खेचरवाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः।।७१।।

अर्थ—लोगों ने शहर को झाड़ बुहार लिपाय पुतायकर चमाचम कर दिया और देवताओं ने दुन्दुभि घोष के साथ ही साथ फूलों की झड़ी लगा दी।

राम कहा सेवकन्ह बोलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाये। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये।।
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुवारे।।
अन्हवाये प्रभु तीनउँ भाई। भगतबछल कृपाल रघुराई।।

अध्यात्मे— ततः शत्रुघ्न बचनान्निपुणः श्मश्रुकृन्तकः।
सम्भाराश्चाभिषेकार्थमानीता राघवस्य हि।।७२।।
पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महात्मनि।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे।।७३।।

अर्थ— श्रीशत्रुघ्न के आज्ञानुसार एक चतुर नाई बुलाया गया, और वह सुग्रीवप्रमुख की परिचर्या में लग गया। प्रथमतः श्रीभरतलालजी ने स्नान किया। तत्पश्चात् श्रीलखनलालजी ने, तत्पश्चात् वानरेन्द्र सुग्रीव के स्नान करने पर राक्षसेन्द्र विभीषण ने स्नान किया। एवम् क्रमानुसार स्नान करने पर दयासागर ने निजी जटाओं को सुलझाया।

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई।।
पुनि निज जटा राम बिबराये। गुरु अनुसासन माँगि नहाये।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग कोटि छबि लाजे।।

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।

महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्।।७४।।

अर्थ—तद्नन्तर अभ्यंग(उबटन) पूर्वक स्नान किया, और चन्दन व चित्र विचित्र पुष्पों की बनी हुई माला धारण कर बहुमूल्य पट्टांशुकों (रेशमी वस्त्रों) को पहन शोभासमन्वित हो वहाँ बैठ गये।

दोहा—सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ।

दिव्य बसन बर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ।।

वाल्मीकीये—प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।

आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्।।७५।।

अर्थ— और सीताजी का शुभ संस्कार महाराणी मनस्विनी कौशल्या आदि देवियों ने बड़ी मनोहरता से स्वयं किया।

दोहा—राम बाम दिसि सोभित, रामरूप गुनखानि।

देखि मातु सब हरषीं, जनम सुफल निज जानि।।

वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम्।

रामस्य जनयित्र्यस्तामुदीक्ष्यानन्दसम्प्लुताः।।७६।।

अर्थ—श्रीकौशल्यानन्दनजी के बाम भाग में विराजमान श्रीसीताजीको (जिनकी सुवर्णतुल्य दीप्ति थी) देखकर परमानन्द समन्वित माताओं ने अपने जन्म को कृतकृत्य माना।

दोहा— सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनिबृंद।

चढ़ि बिमान आये सब, सुर देखन सुखकंद।।११।।

उमया सहितो देवश्शङ्करो रघुनन्दनम्।

सर्वदेवगणै र्युक्तो दृष्ट्वा हर्षमुपागतः।।७७।।

अर्थ— हे पक्षीराज! उस समय गौरीशंकरजी अमरराज आदि देवताओं को साथ लिये हुये रामाभिषेक के महोत्सव में पहुँचकर सम्मिलित हो गये।

प्रभु बिलोक मुनिमन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा।।

रबिसम तेज तो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई।।

जनक सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई।।

बेदमंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

रामं रत्नमयेपीठे ससीतं सन्यवेशयत्।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गौतमस्तथा।।७८।।

वाल्मीकिश्च तथा चक्रुस्सर्वे रामाभिषेचनम्।

कुशाग्रे तुलसीयुक्तपुण्यगन्धजल मुंदा।।७९।।

अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठं वासवं वसवो यथा।।८०।।

अर्थ—रत्नमयसिंहासन पर वसिष्ठजी ने श्रीसीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी को बिठा दिया। तत्पश्चात् आचार्य समेत वाल्मीकि, जाबालि, गौतम, वामदेव आदि ने कुश तुलसीमिश्रित सुगन्धित जल से जैसे व्रसुवासव का करते हैं तैसे ही श्रीरामचन्द्र का सहर्ष अभिषेक किया।

सुत बिलोकी हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी।।

विप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।।

कौसल्य च सुमित्रा च कैकयी राजयोषितः।

परमानन्दसम्पन्ना याचकेभ्यो ददुर्धनम्।।८१।।

अर्थ– कौसल्या, सुमित्रा तथा कैकयी इन सब राजरानियों ने बहुत खुशी के साथ ब्राह्मणों को दक्षिणा और नीराजन किया।

सिंहासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुंदभी बजाईं।।
छंद–नभ दुंदभी बाजहिं बिपुल गंधर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछराबृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं।।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते।।

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात्।।८२।।
छत्रञ्च तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च दधतुः श्वेतचामरे।।८३।।

अर्थ–चराचरनायक को भद्रासनासीन देख अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्व अलापने लगे, फूलों की वर्षा होने लगी और उस समय शत्रुघ्न सुन्दर पीला छत्र तथा सुग्रीव, बिभीषण श्वेतचामर लिए हुए श्रीरामचन्द्र की परिचर्य्या में निरत हो गए थे।

श्रीसहित दिन कर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत मुनि मन मोहई।।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे।।

नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पलश्यामलकोमलाय।
किरीटहारांगदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय।।८४।।

अर्थ–नीलकमल सदृश श्याम और मुकुट, मनोहर हार, केयूरादि अलंकारों से अलंकृत सिंहासन पर सशक्ति विराजे । महाद्युतिधारे श्रीसीताराम को सप्रेम प्रणाम कर पार्षदगण अपना जन्म स्वार्थ कर रहे हैं।

दोहा– वह सोभा समाज सुख, कहत न बनइ खगेस।
बरनइ सारद सेष स्त्रुति, सो रस जान महेस।।

अर्थ–काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुड़जी ! उस शोभा से सब सभावालों को जो–जो सुख हुआ उसका वर्णन करते नहीं बनता। यद्यपि सरस्वती, शेषनाग और वेद उसका वर्णन करते हैं, परन्तु यथार्थ रस शिवजी ही जानते हैं।

दोहा–भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गये सुर निज निज धाम।
बंदिवेष धरि बेद तब, आये जहँ श्रीराम।।

श्रीभागवते–यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः।
प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकै र्बोधयन्त्यनुजीविनः।।८५।।

अर्थ–स्वप्नावस्था को प्राप्त चक्रवर्ती महाराजको प्रातःकाल जिस तरह अनुजीवी बन्दीजन समीप जाकर यशोवर्णनपूर्वक जगाते हैं उसी तरह वेद श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करने को आये।

दोहा–प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपा निधान।
लखेउ न काहू मरम कछु, लगे करन गुनगान।।१२।।
छंद–जय सगुन निर्गुनरूप रूपअनूप भूपसिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।

जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमाम हे।।

तथा च श्रुतिः—रामपूर्वतापनीयोपनिषदि—

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्दात्मा यो ब्रह्माण्डस्थान्तर्वहिर्व्याप्तो यो विराट् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः।।८६।।

अर्थ—हे राजचक्रचूड़ामणे ! आपका रूप अनूप अर्थात् उपमारहित है और सगुण निर्गुणरूप भेद से दो तरह का है। **''द्ववेव ईश्वरस्यरूपं मूर्तञ्चामूर्तञ्च''** जब परमेश्वर विराट्रूप हैं तब सगुण कहाते हैं ब्रह्मादित्रिकरूप है प्रतीत होते हैं। **''एकं रूपं बहुधा यः करोति''** जो निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, सर्वप्यापक, सर्वसाक्षी प्रेरक और सर्वद्रष्टा हैं वे ही भक्तिवश साकार होते हैं, अथवा जो तुम्हारे साकार निराकार रूप हैं उन सब रूपों का यह भूपरूप सिरमौर है। आपने अपने भुजदण्डों के बलसे रावण प्रभृति बड़े—बड़े राक्षसों को मारा है। मानवरूप धारण कर विश्व का पापरूप भार मिटा कर कठिन दुःख दूर किया। हे प्रणतपाल! हे भक्तवत्सल! प्रभो! आपको हम प्रणाम करते हैं।

तब विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे।।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहँ रच्छ राम नमाम हे।।

पद्म पु०—जितास्सयक्षोरगकिन्नरा नरा भ्रमन्ति संसारपथे निरन्तरम्।
त्वन्मायया दुस्तरपारया विभो तरन्ति सेऽञ्जो भवदंघ्रिसंश्रिताः।।८७।।

अर्थ—हे विभो! आपकी त्रिगुणात्मिका और दुरत्यया माया के आधीन देवता, विद्याधर, किन्नर, नर और खरगादि चलाचल सब ही हैं वे संसार के मार्ग में समय, कर्म और गुणों के अनुसार अहोरात्र भटकते भटकते थक रहे हैं। (भाव यह कि—जीव नाना योनियों में दिनरात भटकता—भटकता थक जाता है जिस पर भी काल जीव को नथे बैल की भाँति आगे खींचता और कर्म पीछे से प्रेरित करता है। गुण तथा स्वभाव के उभयतः धक्के पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में हे करुणावरुणालय! एक मात्र आपकी कृपादृष्टि ही अवलम्ब है जो श्रीचरणों का आश्रय अर्थात् भगवत् शरणागति प्राप्त कर चुके हैं वे सुखसे भवसागर पार करेंगे। **''एतद् द्वापररहितम्''** इस लिए संसार के त्रिबिध दुःखों से छुड़ाने में समर्थ प्रभो मैं आपका अभिवादन करता हूँ।

जे ज्ञान मान बिमत तव भवहरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर—दुर्लभ—पदादपि परत हम देखत हरी।।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु स्त्रम तरहि भवनाथ सोइ समराम हे।।

श्रीभागवते—येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधो नादृतयुष्मदङ्घ्रयः।।८८।।
शृण्वन् गृणन् संस्मरयँश्च चिन्तयन् नामानिरूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारबिन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते।।८९।।

अर्थ—हे कमलनयन! जो ज्ञानी अपने ज्ञान का अभिमान करते हैं उनके अन्तःकरण में आपकी भक्ति न होने के कारण उनको सुबुद्धि नहीं मिलती। अतएव वे कष्ट से परमपद को पाकर भी वहाँ से गिर जाते हैं। कारण कि आपके चरणकमलों का आदर और अवलम्ब त्यागे हैं और जो आपके नामरूप चरित्र का श्रवण, श्रावण, स्मरण,स्मारण, कथोपकथन और लौकिकालौकिक चरित्रों तथा देवार्चावादि किम्बा लीला में रहते हुए आप का दृढ़ भरोसा करते हैं वे फिर देह नहीं धारण करते और बिना ही परिभ्रम के संसार ये छूट जाते हैं।

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतनी तरी।

नखनिर्गता मुनिबंदिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी।।

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटककिन लहे।

पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।।

अध्यात्म रा०—यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरंचिमुखान् पुनाति।

अहो कृतार्थास्ति मुनीन्द्रगेहिनी यत्पादसँल्लग्नरजः कणाव द्रुतम्।।९०।।

वज्राङ्कुशादिशुभरेखिपदं व्यलोकि भ्रमद् बने यद विपिन चरैश्चरैः।

अर्थ—जिन चरणों से भागीरथी निकल कर शिव ब्रह्मादि को पवित्र करती है। जिन चरणों की पवित्र रज को छूते ही गौतम की स्त्री अहिल्या शाप से मुक्त हो तर गई। जो चरण ध्वज, वज्र, अंकुश और कमल के चिन्हों से अंकित हैं तथा जिन्हें वन—वन फिरते समय किसी नीच प्राणी ने भी पा लिया है, जैसे शबरी, किरात, कोलभील, वानर आदि। इसलिए हे मुकुन्द! ऐसे आपके चरणकमलों को प्रतिदिन हम भजते हैं।

अव्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।

षट कंध साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने।।

फल जुगुलबिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।

पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।।

श्रीभागवते— एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधः षडात्मा।

सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी दिखगो ह्यादिवृक्षः।।९१।।

अर्थ— जिसका प्रकृति आश्रय है, सुख दुःख यह दो जिसमें फल हैं, सत्वादि गुणत्रय जिसके मूल हैं, धर्मार्थ काम मोक्ष वा वर्णधर्म या आश्रम धर्मादि चतुष्क जिसके रस हैं पाँच इन्द्रियाँ जिसके ज्ञान प्रकार हैं बुभुक्षा, पिपासा, शोक—मोह, जरा—मृत्यु किंबा त्वक्, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि ये षट् जिसके स्वभाव हैं। असृक्, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, शुक ,रस ये सप्त जिसके त्वचा हैं। मन बुद्धि, अहङ्कार और पंचभूत यह आठ जिसमें शाखायें हैं। नव शरीर के छिद्र कोटर हैं दशप्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय पत्ते हैं, जिस जीव, ईश्वर यह दो पक्षियाँ हैं ऐसे समष्टिव्यष्टि देह रूप आदि वृक्ष को मैं प्रणाम करता हूँ।

जे ब्रह्म अजमद्वैत मनु भव गम्य मन पर ध्यावहीं।

ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।

करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं।

मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।

रामपूर्वतापनीयोपनिषदि—

नित्यो नित्यानांचेतनश्चेतनानां यो विदधाति कामान् यस्यांशेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा अपिजातो

महाविष्णु र्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्यकारणयोः परमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव।।९२।।

अर्थ—वह नित्यों का नित्य, चेतनों का चैतन्य है और वह अनेक कामनाओं का विधान करता है और उसी के अंश से ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि हुए हैं। वही महाविष्णु जिसके दिव्यगुण हैं वही कार्य कारण से परे साक्षात् परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी दशरथ के यहाँ अवतीर्ण हुए हैं।

दोहा— सब के देखत बेदन्ह, बिनती कीन्हि उदार।

अंतरधान भये पुनि, गये ब्रह्म आगार।।

अर्थ—सब के देखते—देखते वेदों ने बड़ी स्तुति की और फिर वे अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक को चले गये।

दोहा—बैनतेय सुनु संभु तब, आये जहँ रघुबीर।

विनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर।।१३।।

अध्यात्म रा०–उमयासहितो देवश्शंकरो रघुनन्दनम्।
वाचा गद्‌गदया नौति पुलकांगमनोहरः।।९६।।

अर्थ– हे गरुड़जी! वेदों के पश्चात् शिवजी श्रीरामचन्द्रजी के पास आए और रोमांचित हो गद्‌गदवाणी से स्तुति करने लगे।

तोमरछंद– जय राम रमारमनं समनं। भवतापभयाकुल पाहि जनं।।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो।।
दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।।
रजनीचर बृंद पंतग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे।।

श्रीमहादेव उवाच–नमोस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पलश्यामलकोमलाय।
किरीटहारांगदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय।।९४।।
रक्षोधिपेनाखिलदेवसौख्यं हृतं च मे ब्रह्मवरेण देव।
पुनश्च सर्व भवतः प्रसादात् प्राप्तं हतोराक्षसदुष्टशत्रुः।।९५।।

अर्थ–मुकुट हार बाजूबंद आदि आभूषणों से विभूषित सिंहासनासीन, नीलोत्पल दलवत् श्यामल, कोमल शरीर अधिष्ठात्री समेत सर्वाधिष्ठान प्रभो श्रीरामचन्द्रजी प्रणाम है। हे देव! ब्रह्मा से वर पाकर राक्षसराज रावण ने देवगणों के ऐश्वर्य और सौख्य को हठात् अपहरण कर लिया था। अतः अनौचित्यपूर्ण इस अशिष्टिता को न सहकर आपने उसका वध किया और देवताओं को स्वर्गलोक प्रदान किया यह बहुत ही उत्तम हुआ।

महि मंडन मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं।।
मद मोह महा ममता रजनी। तमपुंज दिवाकर तेज अनी।।
मनजात किरात निपात किये। मृग लोग कुभोग सरेन हिये।।
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे। बिषयाबन पाँवर भूलि परे।।

स्वांशेन लोकं सकलं विधाय विभर्पि च त्वन्तदधः फणीश्वरः।
खले कृतान्तं स्वजने विनीतं सामोपगीतं मनसा प्रतीतम्।।९६।।
रागेण गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि।।९७।।

अर्थ–हे जगदाधार ! अपनी माया से समस्त ब्राह्मण्डों को रचकर आप ही पोषते हो और नीचे शेषजी सुरक्षित रखते हैं। आप ही दुष्टों के शासक हैं अर्थात् पथभ्रष्टों को सुपथ पर कर देते हैं। सामवेद आप ही को गाता है, भक्तजन आप ही की स्तुति करते हैं मन की प्रतीता से आप ही उपलब्ध होते हैं।

बहु रोग बियोगन्हि लोग हये। भवदंघ्रिनिरादर के फल ये।।
भवसिंधु अगाध परे नर ते। पदपंकज प्रेम न करते।।
अतिदीनमलीन दुखी नितहीं। जिन्ह के पदपंकज प्रीति नहीं।।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह के। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह के।।

भागवते–येऽन्येऽरबिन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोनादृतयुष्मदङ्घ्रयः।।९८।।
अध्यात्मे–तत्वन्नजानन्ति परात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव मायया नः।
त्वद्‌भक्तिसेवाऽमलमानसानां विभाति तत्वं परमेकमैशम्।।९९।।

अर्थ– हे पुण्डरीकाक्ष! जो लोग अपने को नित्यमुक्त समझ आपके पदारबिन्दों में प्रेम नहीं रखते। अतएव अपक्वयोग रहकर परमपद (व्योमादि लोकों) से गिर जाते हैं अर्थात् बहुकालिक तपोद्वारा परमपद को पहुँच कर भी नीचे गिर जाते हैं और जिसने सर्वतः आशासूत्र को तोड़ शरण ली है, उसके सर्व शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं वह आप के नित्य कैङ्कर्य्य अर्थात् सालोक्य मोक्ष को पाता है।

नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह के सम बैभव बा बिपदा।।

एहि तें तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा।।
करि प्रेम निरंतर नेम लिये। पदपंकज सेवित सुद्ध हिये।।
सम मानि निरादर आदरहीं। सब संत सुखी बिचरंति महीं।।

ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्वं बहिरर्थभावाः।
ततो बुधस्त्वामिदमेवरूपं भक्त्याभजन् मुक्तिमुपैत्यदुःखः।।१००।।
गीतायाम्–समदुःखसुखश्चैव समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।१०१।।

अर्थ–चर्तुमुखादि देववृन्द भी ज्ञानरूप आत्मतत्व को स्वरूपतः नहीं जानते। कारण उनका भी बाहरी अर्थात् विषय की ओर झुकाव रहता है और शुक सनकादि बुधवर्ग सुख–दुःख निन्दास्तुति मानापमान सुवर्ण पत्थर आदि में साम्यभाव रख कर ''धनुर्धरं पद्मविशाललोचनम्'' स्वरूप में प्रगाढ़ भाव अटल प्रेमस्थिर करते हुए संसार प्रवाह से छुटकारा पाकर जीवन्मुक्त बने हैं।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा–रन–धीर–अजे।
तब नाम जपामि नमामि हरी। भवरोग महामद आन अरी।।
गुनसील कृपापरमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं।
रघुनंद निकंदन द्वंदघनं।महिपाल विलोकय दीनजनं।।

अहम्भवन्नाम गृशान् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशम्भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम।।१०२।।

अर्थ– हे प्रणतपाल ! मैं आपका नाम जपता हुआ जीवन्मुक्त हो सर्वकाल पार्वती सहित काशीधाम में रहता हूँ कार्य यह है कि मरणासन्न पुरुषों की मुक्ति के लिए आपका मन्त्रराज उनके दाहिने कान में सुना देता हूँ।

दोहा– बार–बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद–सरोज अनपायिनी, भगति सदा सतसंग।।
बरनि उमापति रामगुन, हरषि गये कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब विधि सुखप्रदवास।।१४।।

आनन्द रा०–इति स्तुत्वा रामचन्द्रं सभायां संस्थितं शिवः।
लब्धाऽनपायिनीं भक्तिं स्वपदं प्रस्थितस्तदा।।१०३।।
सर्वेभ्यः सुखवासार्थं मन्दिराणि प्रकल्पय।

अर्थ–इस तरह श्रीशंकर जी वन्दना करके चले गये तो करुणासिन्धु ने वानरों के रहने को स्थान दिलाया।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी।।
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका।।

अध्यात्म रा०–श्रृणोति भक्त्या मनुजस्समाहितो भक्त्या पठेद् वा परितुष्टमानसा।
सर्वाः समाप्नोति मनोगताशिपो विमुच्यते पातककोटिभिः क्षणात्।।१०४।।

अर्थ–जो मनुष्य श्रद्धा से इस राज्यभिषेक के भव्य प्रसङ्ग को सुनाता है अथवा सुप्रसन्न मन से पढ़ता है वह करोड़ों पातकों से छूट कर मनः प्रार्थित पदार्थ को पाता है।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना विधि पावहिं।।

रामाभिषेकं प्रयतः श्रृणोति यो धनाभिलाषी लभते महद्धनम्।।१०५।।

अर्थ– और जो धनेच्छा से सुनता है या पाठ करता है उसे अतुल धन भी मिलता है।

सुरदुर्लभ सुख करि जग माहीं।अंतकाल रघुपति पुर जाहीं।।

सुनहिं विमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नितई।।

खगपति रामकथा मैं बरनी। स्वमति बिलासत्रास दुख हरनी।।

मुक्ता मुमुक्षवः कामाः संसारे त्रिविधा जनाः।

भक्तिं मुक्तिञ्च सम्पत्तिंल्लभन्तेऽस्य विकत्थनात्।।१०६।।

अर्थ–संसार में तीन प्रकार के मनुष्य हैं मुक्त, मुमुक्षु, विषयी क्रमशः इस प्रसंग के सुनने से क्रमशः भक्ति,मुक्ति,सम्पत्ति पाते हैं।

बिरति बिबेक भगति दृढ करनी। मोह नदी महँ सुंदर तरनी।।

नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी।।

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्व्वलोकसुखावहे।

नित्यं नूतनमांगल्यं सुखिनस्सर्वे मानवाः।।१०७।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्र जी के राजसिंहासन पर बैठते ही सर्वत्र नित्य नूतन उत्सव होने लगा और प्रजावर्ग बहुत ही सुख से रहने लगीं।

नित नव प्रीति राम पद पंकज। सबके जिन्हहिं नमत सिव मुनिअज।।

मंगन बहु प्रकार पहिराये। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाये।।

सत्योपा०–ददौ दान द्विजातिभ्यो याचकेभ्यः पुनर्वहु।

अर्थ–श्री रामचन्द्रजी के चरणकमल में लोगों का प्रेम प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था भिखारियों ने भांति–भांति के वस्त्र और आभूषण पाये तथा ब्राह्मणों ने भी अनेक प्रकार की दक्षिणा पाई।

दोहा–ब्रह्मानंद मगन कपि, सब के प्रभुपद प्रीति।

जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास षट बीति।।१५।।

सुखादविज्ञातगतार्धमासा रक्षः कपीन्द्राः प्रभुप्रेमयुक्ताः।।१०८।।

अर्थ–करुणा सिन्धु श्रीरामजी के चरणसरोरुह में अचल स्नेहधारी बिभीषण सुग्रीव आदि का नैत्यिकमनोरणीय सुखमयी लीला के देखने में शीघ्र छः मास बीत गये, परन्तु सुख के दिनों का प्रयाण ज्ञात न हुआ।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं।।

तब रघुपति सब सखा बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिर नाये।।

परमप्रीति समीप बैठारे। भरत सुखद मृदु बचन उचारे।।

आनन्द रा०– एकदा हनुमद्द्वारा वानराधीश्वरान् प्रभुः।

उपावेश्य समाकार्य्य जगाद वचनं मृदु।।१०९।।

अर्थ–किसी दिन भक्तवत्सल श्रीराम ने श्रीवायुनन्दनजी के द्वारा बानराधिपतियों को बुला कर और निकट ही आसन दे करके मधुर वाणी से कहा।

तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करउँ बड़ाई।।

ता तें मोहि तुम्ह अतिप्रिय लागे। मम हित लागि भवनसुख त्यागे।।

पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च।

अथ– हे वीरपुँगवो! तुम लोगों ने मेरी बड़ी सहायता की है, प्रत्यक्ष बड़ाई करना औचित्य नहीं तथापि मैं यह बिना कहे नहीं रहूँगा कि– तुम सबों ने गार्हस्थ्य सुख त्यागकर प्राणपन से मेरी सेवा की।

अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।

नारदीय पु०– न मे क्षीरोदतनया प्रिया नापि हलायुधः।

न तथा देवकी देवी प्रद्युम्नो नास्ति सात्यकिः।।११०।।

यादृशा मे प्रिया भक्तास्तादृशो नहि कश्चन।

येन मे पीडिता भक्तास्तेनाहम्पीडितो ननु।।१११।।

अर्थ–मुझे न तो लक्ष्मी प्रिय है और न हलधर जी तथा न देवी देवकी जी, न प्रद्युम्न और न सात्यकि जितना कि मुझे भक्त प्यारे हैं औरों की बात ही क्या है जिसने मेरे भक्तों को पीड़ा दी उससे मानों हम ही पीड़ा पाते हैं।

सब के प्रिय सेवक ये नीति। मोरे अधिक दास पर प्रीति।।

श्रीभागवते–अहम्भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः।।११२।।

अर्थ– यद्यपि दास सबको प्यारे हैं पर मेरा दासों पर विलक्षण ही प्रेम है यहाँ तक कि मैं तदविधीन रहता हूँ।

दोहा– अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ नेम।

सदा सर्बगत सर्बहित, जानि करेहु अतिप्रेम।।१६।।

आनन्द रा०–अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ।

एकाग्रमानसेनैव ध्येयोहं भजता सदा।।११३।।

अर्थ– हे मित्रों, मैं आज्ञा देता हूँ अब आप लोग सहर्ष निज–निज सदन को जाइये। और सदा शुद्ध चित्त से मेरा भजन करते रहिये।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भये। को हम कहाँ बिसरि तन गये।।

एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे।।

प्रभुणैवन्निगदिता वानरास्ते महौजसः।

तस्थुरुन्मील्य नेत्राणि वक्तुं शक्ता न चाभवन्।।११४।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के वचनों को सुनकर बीर वानरगण नेत्रों का उन्मीलन कर औचक से हो गये और कुछ बोल नहीं सके।

परमप्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधबिधि ज्ञान बिसेखा।।

प्रभु सनमुख कछु कहइ न पारहिं पुनि पुनि चरनसरोज निहारहिं।।

अध्यात्म रा०– सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः।

अर्थ– उन वानरगणों का परमस्नेह देख रघुनाथजी ने अनेकों तरह के तत्त्वज्ञान से उन्हें शान्त किया।

तब प्रभु भूषन बसन मँगाये। नाना रंग अनूप सुहाये।।

सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराये। बसन भरत निज हाथ बनायें।।

सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सलः।

भूषणं वसनं भूरि भरतेन परिधापितम्।।११५।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी ने बहुमूल्य भूषणों व वस्त्रों को मँगाकर सर्वतः प्रथम श्री भरतजी के द्वारा वानरराज सुग्रीव को पहिनाया।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराये। लंकापति रघुपति मन भाये।।

बिभीषणोपि धर्मात्मा सहतै नैॠतर्षभैः।

लब्ध्वा वसनरौक्मञ्च लंकां प्रायान् महायशाः।।११६।।

अर्थ–महाभागवत धार्मिक बिभीषण ने अपने साथियों को लेकर भूषण वसन से अलंकृत हो लंका का गमन किया।

अंगद बैठि रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला।।

अर्थ–अंगद जी चुप्पी साधे बैठे थे कुछ बोले नहीं, रघुनाथजी भी उनका विशेष प्रेम देखकर इस कारण नहीं बुलाया कि इनकी प्रीति देखकर और लोग भी मचला उठेंगे।

दोहा—जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि रामरूप सब, चले नाइ पद माथ।।

यथार्हं सत्कृतास्सर्वे कार्म रत्नैश्च पुष्कलैः।
प्रसन्नमनसो जग्मुः प्रणम्य रघुनन्दनम्।।११७।।

अर्थ—जामवन्तादि बानरगणों को यथोचित खुश करके रघुनाथ जी ने बिदा किया और वे सब प्रभु के गुणगरिमा का वर्णन करते हुए प्रणत होकर अपने—अपने घर को चले।

दोहा—तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अतिबिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेमरस बोरि।।१७।।

आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूयः प्रणम्य तम्।
विनयावनयो भूत्वा कथयामास प्रेमतः।।११८।।

अर्थ—बालिनन्दन जी उठे और दीनदयालुजी के पैरों पर गिर प्रेमपूर्वक सजल नयन हो बोले।

सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिन्धो। दीन दयाकर आरत बंधो।।
मरती बार नाथ मोहि बाली। गयेउ तुम्हारेहिं कोंछे घाली।।

हनुमन्नाटके—यतस्त्रिलोक्यनाथोऽसि न च त्याज्यं गुरोर्वचः।
अधुना प्रार्थयामित्वामङ्गदम्परिपालय।।११९।।
इत्युक्त्वा स तदा बाली अहो प्राणान् रणांगणे।।१२०।।

अर्थ—हे सर्वज्ञ ! आप ब्रह्माण्डनायक होकर भी मेरे पिताजी के वचनों का सभार क्यों नहीं करते। जो कि मरणान्त समय में मत्समर्पण रूप प्रार्थना श्रीमान् से उन्होंने की थी।

असरन सरन बिरद सँभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
आनन्द रा०—उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल।

अर्थ— हे नाथ! क्यों मेरी अवहेलना करते हो, आप अशरण के शरण और निजी विरदावली सँभार करने वाले हैं।

मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पदजल जाता।।
तुम्हइँ बिचारी कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मन काहा।।

त्वेव मे मातापिता प्रभो ब्रूहि विचार्य च।
चरणान्तिकमुत्सृज्य भवने किं प्रयोजनम्।।१२१।।

अर्थ—हे प्रभो ! आप मेरे माता—पिता गुरु सब कुछ हो। स्वयम् इस बात का विचार करो कि आप की सेवा को छोड़ घर पर मेरा क्या मतलब है।

बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन जानि जन दीना।।

भारतसारे—उदारहृदया बालानबुधान् पान्ति साधवः।।१२२।।

अर्थ— उत्कृष्ट विचार के पुरुष ज्ञान बलहीन बालक की सदैव रक्षा करते हैं

नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।

पांडवगीतायाम्— त्वद् भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्यो भृत्यस्य इति मां स्मर लोकनाथ।
आनन्द रामायण राज्यकांडे—न दूरं कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामि पुनः पुनः।।१२३।।

अर्थ—हे कृपासागर ! आप मुझे दासानुदास समझकर दूर न करें, यही आपसे प्रार्थना है।

दोहा—अंगद बचन बिनीत सुनि,रघुपति करुनासीवँ।
प्रभु उठाय उर लायेउ,सजल नयनराजीव।

★निज उरमाल बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ।।१८।।

रामोपि वाक्यन्तच्छुत्वा स्मित्वा च परिषस्वजे।
दत्वा दिव्ये माल्यवस्त्रे विससर्ज रघूद्वहः।।१२४।।

अर्थ—रघुवंश प्रदीप श्रीरामचन्द्रजी ने बालिनन्दन के विनीत वचनों को श्रवणकर हृदय से लगा लिये और अपने गले की मणिमाला या वस्त्र आदि देकर विदा किये, उस समय प्रभु की आँखें डबडबा आई।

भरतअनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता।।
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा।।

अर्थ—तब भक्तों को उदाहरणीय भरतजी शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण समेत सब यूथपों को पहुँचाने के हेतु चले। अंगद के हृदय में अधिक प्रेम तो था ही, इस हेतु वे लौट—लौट कर श्रीरामचन्द्रकी ओर देखते थे।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा।।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी।।

अर्थ—अंगद बारम्बार साष्टांग प्रणाम करते थे और उनके मन में यह विचार था कि रामचन्द्रजी मुझे रहने को कहें। वे बारम्बार रामचन्द्रजी की हेरन, बोलन, चलन और हँसन तथा मिलन का स्मरण कर कर के सोचते थे।

प्रभुरुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पर पंकज राखी।।
अति आदर सब कपि पहुँचाये। भाइन्ह सहित भरत पुनि आये।।
तब सग्रीवँ चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्ही हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तब चरन देखिहउँ देवा।।

हनुमद्रामायणे— तदानुनीय सुग्रीवं हनूमान् अभ्यभाषत।
स्वामिन् समीहे पादाब्जसेवनं श्रीहरेरहम्।।१२५।।

अर्थ—श्रीभरतजी के लौटने पर वायुपुत्रजीने वानराधीशजी के चरणों को गह कर हे स्वामिन् ! दस—पाँच दिन और प्रभु के चरणाश्रित रहने को मेरी तीव्राभिलाषा है। इस लिये सहचर न होने पर अपराध क्षम्य हो ऐसा कहा।

पुन्यपुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।।
धन्यस्त्वं हनुमद् वीर गत्वा सेवस्व राघवम्।
एवमुक्त्वा सुकण्ठस्तु प्रययौ सदनं निजम्।।१२६।।

अर्थ—उत्तर में किष्किन्धाधीश्वर ने कहा कि हे वीर पवनतनय! तुम बड़े सुकृति हो जावो, कृपासमुद्र की छत्रछाया में रहो, इतना कहकर चलते भये।

दोहा—कहेउ दंडवत प्रभु सन, तुम्हहिं कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायेहु मोरि।।

नमन्नाहांगदो वीरो विज्ञापय नतिम्मम।
रघुवंशप्रदीपन्त्वम् आञ्जनेयासकृत् प्रभुम्।।१२७।।

★यहाँ पर श्रीरामचन्द्र ने जिस प्रकार से अंगद को समझाया था। उसका तात्पर्य श्रीगोस्वामीजी ने इसी दोहे में दर्शाया है सो यों कि अपनी ही माला पहनाकर यह विश्वास दिलाया कि जिस प्रकार सुग्रीवको माला पहनाकर अपनाया था उसी प्रकार तुम्हें भी अपनाता हूँ और स्वकीय राजभूषण वसन पहनाकर बोध दिया कि तुम भी युवराज रह कर बाद में सुग्रीव के राज्याधिकारी होगे (राजकुमार तुम होई हो और तुम्हारे कथनानुसार जब कि बालि ने तुम्हें मेरी गोद में रक्खा है तो मैं घर की नीच टहल आदि कराना पसन्द नहीं करता) तुम्हारे न जाने से लोग सुग्रीव को दूषण देंगे और तुम्हारी जननी भी विशेष दुखिता होगी इस लिये तुम्हारा जाना ही समुचित है।

अर्थ–सुग्रीव के गमनानन्तर, अंगदजी ने अंजनानन्दनजी के प्रति कहा कि हे मित्र! रघुनाथजी से मेरा दंडवत् प्रणाम कहकर यदा कदा इस दीन की चेतावनी भी देते रहियेगा।

दोहा– अस कहि चलेउ बालिसुत,फिरि आयेउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भये भगवंत।।

कथयित्वेदमागारमगात् प्रत्यागते हरिः।
आंगदं हार्दमाकर्ण्य ननन्द रघुनन्दनः।।१२८।।

अर्थ–श्रीबालिपुत्रजी अपना अभीष्ट कह कर चले गये, और हनुमान्‌जी ने लौटकर कोशलेश जी से अंगद के भावुक भावों की सूचना दी, उसे सुनकर राघवेन्द्रजी नितान्त प्रसन्न हुये।

दोहा– ★कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसमहु चाहि।
चित खगेस अस राम कर, समुझि परइ कहु काहि।।१९।।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति।।१२९।।

अर्थ–वज्र से भी कठोर फूलों से भी कोमल लोकातीत महानुभावों के चित्त को कौन जान सकता है ? भाव यह कि देखिये अंगद को विदा करते समय उन्होंने हृदय कठोर कर लिया था और अब हनुमान् द्वारा अंगद की विनय सुनकर तल्लीन हो गये।

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।।

अध्यात्मे–ततो गुहं समासाद्य रामः प्राञ्जलिमब्रवीत्।
सखे गच्छ पुरं रम्यं शृंगवेरमनुत्तमम्।।१३०।।
मामेव चिन्तयान्नित्यं भुक्ष्व भोगान् निजार्जितान्।
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च।।१३१।।

अर्थ–पश्चात् श्रीरघुनाथजी निषादराज के पास जाकर सप्रेम * हाथ जोड़कर बोले, कि हे मित्रवर! अब पुरके लोग आप की भेंट के लिए आतुर होते होंगे, इससे उनके सधर्म स्नेह पूर्ण करनेका शुभावसर देना आपका आवश्यक कर्तव्य है। इस तरह गृहगमनरूप संकेत दिखाकर दिव्य आमरणों ये समलंकृत करके मेरा स्मरण करते रहियेगा यह कर विदा किया।

तुम मम सखा भरतसमय भ्राता। सदा रहेउ पुर आवत जाता।।

आनन्द रा०–यातायातं सदामित्र पञ्चमे सप्तमेहनि।
करणीयम्प्रयत्नेन स्वगेहाद् भवने मम।।१३२।।

अर्थ–हे सखे ! आप पँचये सतये दिन इधर श्रीअवध की तरफ कृपा करते रहना क्योंकि सज्जनों का ''**अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति**'' सिद्धान्त है।

बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।।
चरननलिन उर धरि गृह आवा। प्रभुसुभाउ परिजनन्हि सुनावा।।

निषादस्तद् वचः श्रुत्वा पर्यश्रुरपतत् पदे।
उरस्याधाय पादाब्जमब्रजत् पुरमीशितुः।।१३३।।

★इसमें प्रतीपालंकार है।

*यहाँ श्रीरामचन्द्रजी का हाथ जोड़ना अयुक्त नहीं है क्योंकि यह निषाद साधारण कोटि के भक्तों में नहीं है। रामजी ने स्वयं कहा है कि '**तुम मम सखा भरत सम भ्राता**' और भरतजी जैसे हैं '**यह बड़ि बात भरत की नाहीं**'। **सुमिरत जिन्हैं राम मन माहीं।।**' जिनको रामजी सदा सुमिरते हैं तत्तुल्य निषाद को भ्रातृ सम्बोधन देना असंगत नहीं है। तथा साख्य भाव में सब संगत है और भरतजी किम्बा आचार्यजी सभी इनसे मिले हैं यथा '**तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।। राम सखा बनि बरवस भेंटे।। यहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ वसिष्ठ सम को जग माहीं।।** इत्यादि।

अर्थ–अवधबिहारी के वचनों को सुनकर निषादराज प्रेमासक्त हो पैरों पर गिर पड़े, आँसुओं से लोचन डबडबा आये कुछ बोले नहीं, हृदयमें श्रीरामचन्द्र जी के चरणों को स्थान देकर शृंगवेरपुर को आये।

रघुपतिचरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।।

सत्योपा०–विलोक्य श्रीहरेर्वृत्तिं श्लाघन्ते पुरवासिनः।

अर्थ–आनन्द सिन्धु के उत्तमोत्तम चरित्रों को देखकर पुरबासी लोग मुक्तकण्ठ से सराहते हैं।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका।।
वयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे।
वसन्ति तत्र सत्वानि निर्वैराणि निसर्गतः।।१३४।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के राजगद्दी पर सुशोभित होने पर तीनों लोक के निवासी प्रसन्न हुए और उनके सब दुःख दूर हो गये। कोई भी किसी से बैर नहीं करता था क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के प्रभाव से भेद भाव मिट गया था।

★दोहा– बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख, नहिं भय सोक न रोग।२०।।

अध्यात्मे– प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति।।१३५।।

अर्थ–सब लोग निज–निज धर्म पर चलते थे अतएव वर्ण धर्म तथा आश्रमधर्म का कार्यक्रम बहुत ठीक था, किसी को किसी प्रकार का कष्ट न था।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।।

आनन्द रा०–नृणान्तापत्रयन्नायसीद् रामे राज्यं प्रशासति।।१३६।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के शासन करते समय दैहिक, (देह सम्बन्धित ज्वरादि) दैविक, (वैद्युतादि) भौतिक, (सर्प, बिच्छू आदि कृत) कोई भी ताप किसी को न था।

सब नर करहिं परसपर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिरीति।।

रघुवंशे– रेखामात्रमपि क्षुण्णादात्मनो वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तु र्नेमवृत्तयः।।१३७।।

अर्थ–प्रजायें अपने मार्ग से तिलमात्र भी नहीं डिगती थीं रथ चक्र की धार जिस तरह लीक ही पर चलती है वैसा ही प्रजा भी सारथी की उत्तमता से धर्मपथ से च्युत नहीं होती थी।

चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।

चतुर्भि वर्तते धर्मः पादैर्लोकसुखावहैः।

अर्थ–धर्म के चारों पैर उस समय बराबर थे और कहीं भी पाप का नाम न था, (१) सत्य (२) शौच (३) दया (४) दान अर्थात् सत्य शौचादि सब मनुष्यों में पूर्णरूप से पाये जाते हैं। त्रेता में एक पैर का ह्रास होता है द्वापर में दो पैर का और कलि में तीन पैर का अर्थात् सत्य, शौच, दया तीनों घट जाते हैं केवल दान की सत्ता रहती है, परन्तु त्रेता में श्रीरामचन्द्रजी ने अपने सदाचार और समीचीन व्यवहार से इस तरह प्रजारञ्जन कर रक्खा था कि उनके धर्मशीलत्वादि गुणों से धर्म चतुष्क चरणों से भरपूर था अतएव गोस्वामीजी ने लिखा है **''त्रेता भइ सतयुग की करनी।''**

★वामनपुराणे– **मखाक् भूभ्यान्नपतयो यजन्ते विधिवत्तदा। ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्राञ्च कुर्वते।। वैश्याश्च पशुवृत्तिस्था श्शूद्रा श्शुश्रूषणे रताः।** उस समय राजा लोग भूमि पर सविधि यज्ञ करते थे, ब्राह्मण वर्ग तपस्या व तीर्थयात्रा करते थे, वैश्य गोपालन करते थे और शूद्र सेवापरायण थे। यहाँ राजधर्म का प्रकरण है इससे प्रथम राजाओं का ही उपपादन किया गया है क्योंकि यज्ञ द्वारा भूमि की रक्षा इन्हीं से हो सकती है। और, ब्राह्मण भूसुर कहलाते हैं, भू की स्थिति में ही यह सब निजधर्म पर आरूढ़ रह सकते हैं, भू पालन, प्रजापालन भूपालोंका कर्तव्य है।

रामभगति रत सब नर नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।

★अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।।

वृद्धेषु सत्सु बालानान्नासीन्मृत्युभयन्तथा।

निरामया विशोकाश्च रामे राज्यम्प्रशासति।।१३८।।

अर्थ—बूढ़ों के होते हुये लड़कों को मौत से भय न था, और सब लोग शरीर से हृष्ट—पुष्ट शोक, मोह रहित तथा निरोग रहते थे।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबधु न लच्छन हीना।।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।

न शठा नैव वाचाटा वञ्चका नो न हिंसकाः।

न च पाखण्डिनो भांडा न रण्डा नैव शौण्डिकाः।।१३९।।

अर्थ—उस समय अर्थात् रामजी के शासनकाल में शठ, बाचाल, बञ्चक, हिंसक, पाखण्डी, भांड, रांड, शराबी नहीं थे।

सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।।

वाल्मीकीये—सुकर्म्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।

आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृता।।१४०।।

अर्थ— और सब लोग निज—निज कर्मों में अटल थे तथा अपने ही विहित कर्मों से संतुष्ट रहते थे वैदिक सिद्धान्तानुसार वर्णव्यवस्था मानते थे।

दोहा—रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं।

काम कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं।।२१।।

आनन्द रा०—रामराज्ये प्रजानान्तु कालकर्मस्वभावजम्।

दुःखमात्रा न कुत्रापि चौर्यनिन्दा भयन्तथा।।१४१।।

अर्थ—रामजी के राजत्वकाल में प्रजाओं को काल कर्म स्वभाव जन्य दुःख का नाम मात्र भी कहीं न था और चोरी, लवारी, निन्दा, भय आदि दुर्गुण भी न थे।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।

जुगोप मेदनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम्।।१४२।।

अर्थ—लवण, ईख, सुरा, घी, दही, दूध के सातों समुद्रों से परिवेष्टित अखिल पृथ्वीभर के संरक्षक श्रीरामचन्द्रजी एकछत्र महाराजा थे।

भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।

माघकाव्ये—युगांतकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत।

अर्थ—जो भगवान् युगावसान में अखंड भूमंडल को अपने में रहने के लिये यथा सुख स्थान देते हैं (भाव यह कि जिस परमेश्वर के विराट् स्वरूप शरीर के प्रत्येक रोम पर बहुत से लोक बने हुये हैं, उनके लिये इतना सा पृथ्वी का राज्य कुछ भी नहीं है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।।

सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहि चरित तिन्हहुँ रतिमानी।।

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला।।

सत्योपा०— तं महत्वं प्रभोर्ज्ञात्वा वर्णते हीयने मतिः।।१४३।।

★इस पंक्ति का विश्वासपूर्वक मध्याह्नकाल में जप करने से लोग अकालमृत्यु से बच जाते हैं। सन्त लोग इसका माहात्म्य महामृत्युञ्जय जप के तुल्य मानते हैं।

अर्थ—परमात्मा के उस माहात्म्य को समझते हुये और उनकी विभूति वर्णन करने में मति हिचकती है तथापि हे पक्षीन्द्र ! जो लोग ईश्वर की उस प्रभुता को जानते हैं, वे भी इन चरित्रों में प्रेम रखते हैं। बड़े–बड़े श्रेष्ठ मुनि जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रक्खा है उनका कहना है कि परमेश्वर की महिमा जानने का फल यही है कि उनके चरित्रों में चित्त का लग जाना मात्र।

राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।

नाहं समर्थो व्याख्यातुं राज्यैश्वर्यं सुखं तथा।

यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुण्ठितस्त्वभूत्।।१४४।।

अर्थ— उस समय के सुख, ऐश्वर्य, चमत्कार आदि का बखान शेष शारदा भी नहीं कर पाते औरों की कौन चर्चा चलाये।

सब उदार सब परउपकारी। बिप्रचरन सेवक नर नारी।।

सुशीलाश्शान्तरूपाश्च परकार्यरतास्सदा।

अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणम्प्रति।।१४५।।

अर्थ—सब शीलवान्, गुणवान् और परोपकारी थे, शूद्र द्विजाति सेवा में निरत रहते थे।

एक नारिव्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हित कारी।।

एकपत्नीव्रतास्सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले।

नारीषु काचिन्नैवासीदपतिव्रतधारिणी।।१४६।।

अर्थ—और सब लोग परस्पर में पति पत्नी का व्रत रक्खे थे अर्थात् पुरुष पत्नीव्रत का पालन करते थे स्त्रियाँ पतिव्रता थीं इससे दाम्पत्य सुख अपूर्व सा था।

★दोहा—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्य समाज।

जितहु मनहिं अस सुनय जग, रामचन्द्र के राज।।२२।।

आनन्द रा०—दण्डवार्ता सदा यत्र कृतसंन्यासकर्म्मणाम्।

भरतानां समाजे तु भेदस्तत्रोपलक्ष्यते।।१४७।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में अपराधी ही न थे जिनको दंड देना पड़े, दंड था तो केवल यतियों के हाथ में था।(२) भेद (जिसकी आवश्यकता रामराज्य में न थी) वह तो केवल संगीतकलाविदों के पास था। (३) यह सुना है कि कोई शत्रु था ही नहीं, जिसे जीता जाय वहाँ तो प्राणी अपने मन को ही शत्रु समझकर वश में रखते थे।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।

भागवते— नद्यः समुद्रागिरयः सवनस्पतिवीरुधः।

फलन्त्यौषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै।।१४८।।

अर्थ— ऋतु ऋतु में बनस्पति (जिनमें फूलों के बिना फल लगता है) जैसे बट, गूलर तथा वीरुध (यव ब्रीह्यादि के सहित) पर्वत की समस्त औषधियाँ बराबर फूलती फलती थीं नदियाँ सप्तसमुद्र रत्न पूर्ण थे।

खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई।।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।

सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लेइ चलि मकरंदा।।

रघुवंशे—ऊनन्नसत्वेष्वधिको बबाधे।

भागवते—वषौ वायुः सुखस्पर्श.....।।१४९।।

अर्थ—चतुष्पद जीवों में प्रबल (व्याघ्रादि) दुर्बल (हरिण्यादि) को पीड़ा नहीं देते थे और सुखद हवा चला

★यहाँ परिसंख्यालंकार है। जहाँ किसी वस्तु को एक स्थल से उठाकर अन्यत्र आरोपित करें वहाँ परिसंख्यक है

करती थी, भौंरे गुञ्जारते हुये फूलों का रस लिया करते थे।

लता बिटप माँगे मधु द्रवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।

भागवते–सिपिचुः स्म ब्रजान् गावः पयसोधस्वती र्मुदा।

अर्थ–पीवरस्तनी गायें प्रसन्नतापूर्वक दूध से ब्रजभूमि को तृप्त किये रहती थीं भाव यह कि गायों में दूध बहुत अधिक था।

ससिसंपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।।

प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी।।

आनन्द रा०–सस्योपपन्ना वसुधा फलवन्तोऽभवन् नगाः।।१५०।।

अर्थ–पृथ्वी खेती से हरी भरी रहती थी, त्रेता में भी सतयुग की कार्यवाही हो रही थी पर्वतों में बहुतेरी मणियों की खदानें प्रकट हुई कारण कि उन्होंने जान लिया था जगदाधार श्रीरामचन्द्रजी ही इस समय राजा हुये हैं।

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी।।

सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं।।

सरसिज संकुल सकल तडागा। अतिप्रसन्न दस दिसा बिभागा।।

सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः।

सुपद्मानीककासाराः प्रसन्नाश्च दिशोदश।।१५१।।

अर्थ–सम्पूर्ण नदियों का उत्तम ठंडा, निर्मल, स्वादिष्ट सुखकारी जल बहने लगा। समुद्र अपनी हद ही पर रहता था। तालाबों में कमल विकसित रहते थे, दशों दिशायें बहुत आनन्ददायिनी हो रही थीं।

दोहा–बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहिं काज।

माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज।।२३।।

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही।

अर्थ–मेघ यथेच्छ वर्षा करने लगा और पृथ्वी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली हुई।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे।।

स्रुति पथ पालक धरम धुरंधर। गुनातीत अरु भोगपुरंदर।।

वाल्मीकीये–पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजिमेधेन चासकृत्।

अन्यैश्च विविधै र्यज्ञै रजयत् पार्थिवात्मजः।।१५२।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी पौण्डरीक अश्वमेध और अन्यान्य बहुत से यज्ञ किये ब्राह्मणों को अनेक प्रकार का दान दिया।

पतिअनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता।।

जानति कृपा सिंधु प्रभुताई। सेवति चरनकमल मन लाई।।

अर्थ–शीलवती विनयवती और सुन्दरी सीताजी सदा अपने स्वामी की आज्ञाकरिणी बनी रहती थीं। वे तो दयासागर प्रभुकी प्रभुता जानती थीं इस हेतु मन लगाकर उनके चरण कमल का ध्यान किया करती थीं।

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवानिधि गुनी।।

निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।

पराशरस्मृतौ–दासीवादिष्टकार्येषु भार्या भर्त्तुः सदा भवेत्।

ततोन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत्।।१५३।।

अर्थ–पति के कहे कार्यों में पत्नी सदैव दासी के समान रहे और अन्नादि विविध प्रकार के उत्तम स्वादिष्ट पाक बनाकर पति को भोजन के लिए निवेदन करें।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ।।

कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।।

आनन्द रा०—सर्वं श्वश्रूजनं सीता सेवते समभावतः।।१५४।।

अर्थ—श्रीसीताजी सब सासुओं का यथार्थ सम्मान तथा भावसे सेवा किया करती थीं।

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता।।

दोहा—जासु कृपा कटाच्छ सुर, चाहत चितवन सोइ।

राम पदारबिंद रति, करति सुभावहिं खोइ।।२४।।

इन्द्रोपेन्द्रविरिंच्याद्यैः सेव्यते सिद्धिकांक्षिभि।

सा सीता रामपादाब्जे रमते परया मुदा।।१५५।।

अर्थ—अणिमादि सिद्धि की चाह से इन्द्र, उपेन्द्र, सुरज्येष्ठादि देवता रात्रिदिन जिनकी परिचर्या करते हैं वही सीताजी परमहर्ष से रामचन्द्र चरणकमल में परमानन्द से रमी हैं।

सेवहिं सानुकूल सब भाई। रामचरन रति अति अधिकाई।।

प्रभुमुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं।।

भरतो लक्ष्मणशत्रुघ्नावथामात्यास्सुहृद्‌गणाः।

आसासते कृपासिन्धू रातु नः क्वापि भृत्यताम्।।१५६।।

अर्थ— भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न, मित्रमंडल और सचिवगण यह सोचते ही थे कि कृपानिधि कभी कुछ आज्ञा हम लोगों को दें।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीति। नानाभाँति सिखावहिं नीती।।

प्रेम्णा परेण वन्धूंश्च रामः कमललोचनः।

धर्मनीतिं राजनीतिं शास्ति स्म विविधागमान्।।१५७।।

अर्थ—राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजी बड़े आदर से भाइयों को राजधर्म, मोक्षधर्म आदि की शिक्षा देते थे।

हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुरदुर्लभ भोगा।।

अहनिसि बिधिहिं मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं।।

रामे शासति साकेतपुर्य्यां सर्वा प्रजास्तदा।

विदधुर्भोगपूगाँस्ता दुर्लभाँस्त्रिदशैरपि।।१५८।।

अर्थ—अवधवासी प्रजागण बड़े आनन्द से समय बिताते हुये सुर दुर्लभ भोग भोगते थे।

★दुइ सुत सुंदर सीता जाये। लवकुस बेद पुरानन्हि गाये।।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रति बिंब मनहुँ अतिसुंदर।।

रघुवंशे—तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती।

सुतावसूतसम्पन्नो कोशदण्डाविवक्षितिः।।१५९।।

अर्थ—अवध से मथुरा को जाते हुये शत्रुघ्नजी जिस दिन प्राचेतस बाल्मीकिजी के मनोहर आश्रम पर पहुँचे हैं उसी रात्रि में वीर माता श्रीसीताजी ने लव,कुश नाम के युग्म पुत्रों को उपजाया मानों पृथ्वी ने कोश दंड को उपजाया हो।

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भये रूप गुन सील घनेरे।।

★कवि की चतुराई इस कथन में पूर्णरूप से भरी हुई है। कारण इसमें उन्होंने सीता निवर्बासन आदि दुःखवार्ता स्पष्ट रूप से न लिखकर केवल यह सूचित किया है कि दो सुन्दर पुत्र लव,कुश नाम के सीताजी से हुए। (अवध में नहीं, वाल्मीकिजी के आश्रम में। जहाँ पर राजकुमारों का जन्म उत्सव आदि महाराजों की रीत्यानुसार न हुआ था) अपर तीनों भाइयों के पुत्रों के बारे में ऐसा लिखा है— दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। विजयी विनयी गुणमन्दिर। इस विशेषण से रामाश्वमेघका दिग्दर्शन करा दिया है।)

इतरेपि रथोर्वंश्यास्त्रयस्त्रेताग्नितेजसः।

तद्योगात् पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन् द्विसूनवः।।१६०।।

अर्थ—और तीनों भाइयों ने अपनी–अपनी पत्नियों में दो–दो पुत्र उत्पन्न किये अर्थात् भरत के तक्ष पुष्कल, लक्ष्मण के अंगद, चन्द्रकेतु शत्रुघ्न के सुबाहु और शत्रुघाती हुये।

दोहा—ज्ञान गिरा गोऽतीत अज, माया गुन गो पार।

सोइ सच्चिदानंद घन, कर नर चरित उदार।।२५।।

स ब्रह्म परमं रामः पुरुषः प्रकृतेः परः।

अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि।।१६१।।

अर्थ—जो बुद्धि वचन और इन्द्रियों की पहुँच से बाहर परमात्मा हैं, वे ही सच्चिदानन्द स्वामी अगणित नर चरित्रों को कर रहे हैं।

प्रातकाल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन।।

बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।

प्राप्तः स्नात्वा सरय्वाञ्च स्थित्वा भ्रातृद्विजर्षभैः।

शृणोति गुरुवक्राच्च कथ्रा पौराणकीं महान्।।१६२।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी भाइयों के सहित सरयूजी में स्नान कर सभा में नित्य आते थे। और श्रीगुरुदेवजी से पुराण सम्बन्धी गाथायें सुनते थे।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं।।

भ्रातृभि र्भुञ्जमानन्तं वीक्ष्यापु र्मातरः सुखम्।

अर्थ—कौसल्यादि मातायें अनुजों के सहित श्रीरामचन्द्रजी को भोजन करते हुये देखकर मुदित होती थीं।

भरत सत्रुहन दूनउ भाई। सहित पवन सुत उपवन जाई।।

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा।।

सुनतबिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं।।

अर्थ—भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई श्रीपवनकुमारजी के साथ नजर बाग में जाकर रामचन्द्रजी के गुणानुवाद गाते थे और उनके द्वारा पवित्र गुणों को सुनकर बहुत प्रसन्न होते थे।

सब के गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन विधि नाना।।

नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं।।

श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदे पदे।

सर्वत्रसुभगालापा मुदा मंगलगीतयः।।१६३।।

अर्थ—सब जगह वेदध्वनि होती थीं और ठौर–ठौर शास्त्र सम्बन्धी वाद होता था। सब लोगों का समय साहित्य शास्त्र की चर्चा में बीतता था।

दोहा—अवधपुरी बासिन्ह कर, सुख संपदा समाज।

सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज।।२६।।

एवन्तद्रामराज्यं हि महामङ्गलसँय्युतम्।

आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंगलप्रदम्।।१६४।।

यस्य शेषः सहस्त्रास्यो वर्णने मन्दवाक् भवेत्।।१६५।।

अर्थ—इस प्रकार अनुपम और सुनने से सुखोत्पादक रामराज्य था, वहाँ की जनता की सुखसम्पत्ति का सम्यक् वर्णन करने में शेष भी मन्दवाक् हो जाते हैं।

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं।।

सत्योपा०–इन्द्रादयो लोकपाल ऋषयो नारदादयः।
समागच्छन्त्ययोध्यान्ते द्रष्टुं श्रीरघुनन्दनम्।।१६६।।

अर्थ–शक्रादि लोकपाल और नारदादि मुनिगण अवधेश महाराज श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करने को आते थे, और नगर की शोभा देख अपने वैराग्य को भूल जाते थे।

जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी।।
पुर चहुँ पास कोटि अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।।

स्फाटिकानि च सौधानि चन्द्रारश्मियुतानि च।
स्वर्णरौप्यमयैः शृंगैः संकुले सर्वतो गृहे।।१६७।।

अर्थ–राजसदन की अटारियाँ मणियों से जड़ी हुई थीं, जिनपर चन्द्रमा की रोशनी पड़ने से विचित्र ही दृश्य दीख पड़ता था। नगर के चारों ओर प्राकार(शहरपनाह) बना था, जिसमें सुहावने सोने, चाँदी आदि के कंगूरे बने थे।

नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन राँचा।।

अर्थ–नये–नये मकानों के अनेक समूह बने हुये थे, जिनके चारों ओर सेना सुसज्जित रहा करती थीं मानों इन्द्रपुरी को कोई घेर ले आया हो (भाव यह कि नगर के पुरकोठे के भीतर चारों ओर से नवीन घर अर्थात् गजशाला, हयशाला, योद्धाओं के गृह और सेनापतियों के महल बने हुये थे जिनके चारों ओर अस्त्र, शस्त्रों से सुसज्जित सेना तैयार रहती थी।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रवि ससि दुतिनिंदत।।
बहु मनिरचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनिदीप बिराजहिं।।

श्रीभागवते–सौवर्णश्रृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम्।
वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमै मुर्क्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु।।१६८।।
जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम्।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतण्डुलाम्।।१६९।।

अर्थ–जो सुवर्ण के चौराहे, साहूकारों के घर और घरों के योग्य बगीचों से तथा कारीगरों की दूकानों और घरों से शोभायमान थी, जो वैदूर्यमणि, हीरे, स्फटिक, नीलम, मूंगे और पुखराजों से बनायें हुये घरो से छज्जों पर, वेदियों पर, झरोखों और बैठकों पर बैठे हुये कबूतरों के मोरों के शब्दों से गुञ्जार रही थीं, जिसमें राजमार्ग (आम सड़कें) बाजारों की गलियों और मार्ग तथा चौक झाड़े बुहारे हुये थे और जहाँ तहाँ फूल, अंकुर तथा अक्षत बिखरे हुये थे।

छंद–मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।
मनिखंभ भीति बिरंचि बिरची कनकमनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रतिद्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।।

अर्थ–मणियों के दीपक शोभायमान थे, महल भी शोभा दे रहे थे जिनमें देहलियाँ मूंगे की लगाई गई थीं। खम्भों में मणि जड़े हुये थे और दीवारें तो मानों ब्रह्मदेव ने सुवर्णमयी मरकतमणि से जड़ी हुई बनाई थीं लम्बे चौड़े सुन्दर मनभावने महलों के आँगन स्फटिक मणियों से रुचि रुचिकर बनाये थे और प्रत्येक दरवाजे के किवाड़ सोने के बनाकर अनेक हीरों से जड़े हुए थे।

दोहा—चारु चित्रसाला गृह, गृह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिं चोराइ।।२७।।

सत्योपा०—रुचिराश्चित्रशाला वै गेहेगेहे विभान्ति च।
दर्शयन्त्यो रामचरितं मुनीनां चित्तहारिकाः।।१७०।।

अर्थ—प्रत्येक गृहस्थ के सदन में चित्रशाला बनी थी, उसमें ऐसे रुचिर चित्र थे जिन्हें देखकर मुनियों के भी मन रीझ जाते थे।

सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिधभाँति करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं।।

तथा चोपवनान्येव पुष्पाणा क्रमशः पुरा।
वसन्तेन बिना सम्यक् वनं सूनान्वितं सदा।।१७१।।

अर्थ—सब लोगों ने नाना प्रकार की पुष्पवाटिका बड़ी चतुरता से लगाई थीं, जो बसन्त के बिना भी सब ऋतुओं में फलती फूलती थीं।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा बह सुंदर।।

प्रफुल्लैश्शतपत्रैश्च राजितं भ्रमरान्वितैः।
त्रिविधाअनिलास्तत्र वान्ति स्म सततँव्वने।।१७२।।

अर्थ—खिले हुए कमलों, तदुपरि गुञ्जारते हुए मुखर मधुकरों से बाग की अपूर्व ही छटा दीख पड़ती थी, त्रिविधि पवन सदा सेवा करता था।

नाना खग बालकन्हि जिआये। बोलत मधुर उडात सुहाये।।

अर्थ—भाँति—भाँति के पक्षी बालकों ने पाला था, जो मीठी वाणी बोलते थे और उड़ते समय बड़े सुहावने लगते थे।

मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभा अतिपावत।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।

प्रान्तेषु पाटलानाञ्च नृत्यन्ति शिखिनो बहु।
वितत्य स्वस्य वर्हाणि मृदंगानां स्वनेन च।।१७३।।

अर्थ—मोरगण मृदंग के शब्द को सुनकर अपने पंख को फैलाकर बगीचे के आस पास प्रेम से नाचते थे।

सुक सारिका पढावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक।।
राजदुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू।।

लोकवार्ता यथालोकाः प्रवदन्ति गृहे स्वके।
प्रपठन्ति तथा रामं पञ्जरस्थाश्च सारिकाः।।१७४।।

अर्थ—जैसे सर्व साधारण अपने घर में रामरटन करते थे वैसे पिंजरे के अन्दर तोता मैना भी राम—राम रटती थीं।

छंद—बाजार चारु न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइये।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।

कः पण्यशोभाकथने समर्थो यत्राप्यते वस्तुविनार्घतोपि।
जज्ञे यतो राजशिखामणिर्नृपो मायामनुष्याकृतिरच्युतो विभुः।।१७५।।

अर्थ—बाजार ऐसा रमणीय था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वहाँ वस्तुएँ बिना मोल किये

मिलती थी(भाव यह कि क्रेता–विक्रेता सच्चे हृदय के थे। इस कारण मोल भाव नहीं करना पड़ता था) जिस स्थान में लक्ष्मीपति भगवान् राजा हैं वहाँ की धन सम्पत्ति का वर्णन कैसे हो सकता है।

दोहा–उत्तर दिसि सरजू बह, निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर।।२८।।

सोपानै र्विविधाकारै र्नानारत्नविचित्रितैः।
वहते तूत्तरस्यां वै सरयूः स्वच्छघट्टका।।१७६।।

अर्थ–उत्तर दिशा में श्री सरयू जी बहती हैं, घाटों पर पंक बिलकुल नहीं है और बिबिध भाँति के रत्न जटित सोपान(सीढी) से सुशोभित स्वच्छ घाट बने हैं।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजिगज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।

ईषद्दूरेऽस्य घट्टश्च वर्तते शोभनो महान्।
वाजिनो वारणा यत्र सलिलं प्रपिबन्ति च।।१७७।।
पृथग्घट्टश्च नारीणां यन्नरो न विशन्ति हि।

अर्थ–कुछ ही दूर पर मनोहर घाट बना था, जहाँ पर घोड़े, हाथी आदि पानी पीने जाते थे, अनेक अनेक उत्तम पनिघटों के होते हुये भी वनिता घाट भिन्न ही था जहाँ कि पुरुष समुदायों का गमनाधिकार न था।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।

राजघट्टे महादिव्ये चातुवर्ण्यं च मज्जति।।१७८।।

अर्थ– सब प्रकार से सुन्दर जो राजघाट बना था, वहाँ चतुर्वर्ण के लोग आकर स्नान करते थे।

तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि जिन्ह के उपबन सुन्दर।।

कूले कूले च देवानामासीन्मन्दिरमद्भुतम्।
परितस्तस्य चारामश्शोभमानो बहुप्रिये।।१७९।।

अर्थ–किनारे–किनारे धवल देवाश्रम बने थे जिनके चारों तरफ बगीचे शोभायमान थे।

कहुँ कहुँ सरितातीर उदासी। बसहिं ज्ञानरत मुनि संन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।
नद्यारोधसि सिद्धाश्च क्वचित् सन्यासिनस्तथा।
वृन्दावृन्दानि कुत्रापि मुनिभीरोपितानि च।।१८०।।

अर्थ–नदी के किनारे कहीं सिद्ध कहीं संन्यासी रहते थे स्थान–स्थान पर तुलसी के सुहावने समूह मुनियों ने भाँति–भाँति से लगाये थे।

पुरसोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तडागा।।

यस्या दर्शनमात्रेण पापहानिः प्रयायते।
कः स्तोतुमीष्टे नगरीमीदृशीञ्जातराघवाम्।।१८१।।

अर्थ– जिनके दर्शन मात्र से पाप नाश होता है, उस नगरी की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है।

छंद– बापी तडाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।।
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रब जनु पथिक हंकारहीं।।

वापीकूपतडागानामुत्तमानां पदे पदे।

सोपानं स्वच्छावारीणि वीक्ष्य मुह्यन्ति देवताः।।१८२।।

प्रोत्फुल्लशतपत्रस्था गुञ्जन्ति मधुपाः पिकाः।

अर्थ–स्थान–स्थान पर सुन्दर बावड़ी, तालाब और बड़े–बड़े उत्तम कुएँ शोभित थे, जिनकी सीढ़ियाँ और मधुर जल को देख देवतादि मुग्ध हो जाते थे। विकसित पद्म पत्र पर भौंरे और कोकिल प्रमुख खग चहचहा रहे थे।

दोहा–रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।

अनिमादिक सुख संपदा, रही अवध सब छाइ।।२९।।

यत्र सीतास्वयँल्लक्ष्मी रामो नारायणः स्वयम्।

सिद्धयो विपुलास्तत्र निधयश्चापि भूरिशः।।१८३।।

अर्थ–जहाँ श्रीसीताजी राजलक्ष्मी हैं और श्रीरामचन्द्रजी राजा हैं वहाँ अणिमादि सिद्धियों की क्या कमी थी।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।

भजहु प्रनतप्रतिपालक रामहिं। सोभासील रूप गुन धामहि।।

स्कन्ध पु०–सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि।।

संसारमुल्वणमसारमवाप्य जन्तोः सारोऽयमीश्वर पदाम्बुरुहस्य सेवा।।१८४।।

अर्थ– हे सज्जनों ! मैं सत्य कहता हूँ उस पर भी परलोक हितकारी कहता हूँ। इतना ही नहीं किन्तु उपनिषदों का सारांश कहता हूँ। इस नश्वर उल्वण संसार में जन्म लिए हुए मनुष्यों के लिए वास्तविक यथार्थ वस्तु भगवत् अर्चन ही है अर्थात् रामचन्द्रजी में स्नेह दृढ़ता प्रतीति आदि होना।

जलज बिलोचन स्यामल गातहिं। पलक नयन इव सेवक त्रातहिं।।

धृतसर रुचिर चाँप तूनीरहिं। संत कंज बन रबि रन धीरहिं।।

अर्थ–कमलनयन और साँवले शरीरवाले, नेत्रों को पलकों की नाईं भक्तों की रक्षा करनेवाले, सुन्दर बाण धनुष और तरकस के धारण करनेवले, सन्तरूप कमल बन को सूर्य के समान बलशाली को भजो।

काल कराल ब्याल खग राजहिं। नमत राम अकाम ममता जहिं।।

लोभ मोह मृग जूथ किरातहिं। मनसिज करि हरिजन सुख दातहिं।।

अर्थ–काम, यम रूप उग्र विषधर को गरुड़ तुल्य रामचन्द्र को अन्हता ममता को त्याग कर भजो, लोभ, मोह रूप मृगसमूह के ब्याध के समान को हाथी रूप कामदेव के लिए सिंह तुल्य को भजो।

संसय सोक निबिड तम भानुहिं। दनुज गहन घन दहन कृसानुहिं।।

जनक सुता समेत रघुबीरहिं। कस न भजहु भंजन भवभीरहिं।।

अर्थ–अंधकार रूप संदेह और दुःख को सूर्य के समान और राक्षसरूपी घने जंगल को जलाने के निमित्त अग्नि समान संसार के दुःखों से दूर करने वाले सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी को क्यों नहीं भजते।

बहु बासना मसक हिमरासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि।।

मुनिरंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि।।

अर्थ–मच्छररूप वासना को तुषार के समान को सदा एक रस रहने वाले अजन्मा और अव्यय को मुनिरञ्जन और भूभार भंजन तथा तुलसीदास के बड़े दानी श्रीरामचन्द्रजी को भजो।

दोहा– एहि बिधि नगर नारि नर, करहिं राम गुन गान।

सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपा निधान।।३०।।

अध्यात्म रा०– एवं विधा जनास्सर्वे रामसद्‌गुणगायकाः।
औरसानिव रामोपि जुगोप पितृवत् प्रजाः।।१८५।।

अर्थ–इस प्रकार अवधनिवासी स्त्री पुरुष श्रीरामचन्द्रजी के गुणानुवाद गाया करते थे। और दयासागर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भी जैसे पिता औरस पुत्र की रक्षा करते हैं तैसे ही प्रजाओं की रक्षा करते थे।

जब तें रामप्रताप खगेसा। उदित भयेउ अतिप्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहूँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका।।
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्यानिसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।

भुशुंडिरामायणे–श्रीरामचन्द्रस्य प्रतापसूर्येऽविद्यातमी लुप्ततमा बभूव।
शर्मप्रदेऽशर्मददे च दीप्त उलूकपाप्मा न च कामकैरवम्।।१८६।।

अर्थ–काकभुशुन्डिजी बोले, हे गरुड़जी! जब से श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप रूपी अतिबलशाली सूर्य का उदय हुआ तब से तीनों लोकों में प्रकाश पूर्णतः छा गया, परन्तु इससे बहुतेरों के मन में सुख और बहुतेरों के मनमें दुःख हुआ। जिन्हें दुःख हुआ उनका वर्णन करता हूँ, पहिले तो अविद्या रूपा रात्रि मिट गई। उलूक रूप पाप जहाँ तहाँ छिप रहे और काम,क्रोध रूप कुमुद सकुच गये अर्थात् अज्ञान और पाप मिट गये तथा काम और क्रोध दब गये।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।

गुणप्रभावप्रकृत्युत्थकर्म चकोरसौख्यं क्वचनास्ति नो स्मरा।
मात्सर्यमोहस्मयतस्कराणां कर्तव्यमासीज्जगतीतले न।।१८७।।

अर्थ–गुण और स्वभाव के प्रभाव से किये हुये अनेक प्रकार के कर्मरूप चकोर कहीं भी सुख नहीं पाते थे (त्रेता युग में युगानुसार सत्वगुण के साथ अपर भी दो गुण वर्तते हैं मनुष्य जो अनेक प्रकार के कर्म करते थे, उन्हें उन अनुचित कर्मों का माना हुआ सुख रामराज्य के कारण नहीं मिलता था। इसी प्रकार युगकाल के प्रभाव से जो पापरूप कर्म करने वाले सुख चाहते थे, वह उन्हें नहीं मिलता था। कारण कर्मों के पापांश का इस राज्य में दमन हो गया था सारांश यह है कि युग प्रभाव से दूषित गुणयुक्त तथा दूषित कालयुक्त कर्मों का प्रावल्य रामराज्य में नहीं था। डाह मान, मोह और मद रूप चोरों का कर्तव्य किसी भी स्थान में न चलता था। अर्थात् जो लोग दूसरों की विभूति को देख कर डाह करते थे, जो अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे जो विशेष ममता में फँसे थे और जो रूप,यौवन,धन,बल आदि के कारण मत्त थे ऐसे जीव श्रीरामचन्द्र के राज्य में चोरों की नाईं छिपे रहते थे।

धरम तडाग ज्ञान बिज्ञाना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका।।

ज्ञानं सविज्ञानमथोदियाय पंकेरुहं धर्म तडागमुख्ये।
वैराग्यसन्तोषविचारसौख्यकोका विशोका वहवो विभान्ति।।१८८।।

अर्थ–धर्मरूप तालाब में ज्ञान और विज्ञान रूप कमल नाना प्रकार से फूल उठे। सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक ये ही मानों बहुतेरे चकई चकवा शोकरहित हो गये अर्थात् जहाँ देखो वहाँ ज्ञान और वैराग्य आदि फैल रहे थे।

दोहा– यह प्रतापरबि जा के, उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढहिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास।।३१।।

एतत्प्रतापांशुमतिप्रदीप्ते हृदन्तरालेऽच्युतसाधुवीक्षणात्।
सप्तोपचिन्वन्ति वृषादिकाश्च सप्तापचिन्वन्त्युदिताश्चपूर्वम्।।१८९।।

अर्थ–इस प्रकार का प्रताप रूप सूर्य जब भगवद्दया से उदित होवे तो पिछले अर्थात् धर्म,ज्ञान,विज्ञान, सुख, सन्तोष वैराग्य और विवेक यह सात बढ़ते हैं और पिछले जिनका वर्णन कर आये हैं अर्थात् अविद्या, काम, क्रोध,कर्म, मत्सर, मोह और मद यह सात नाश को प्राप्त होते हैं।

भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। संग परमप्रिय पवन कुमारा।।
सुंदर उपबन देखन गये। सब तरु कुसुमित पल्लव नये।।

आनन्द रा०– एकदा भ्रातृभिः सार्धं सीताजानिः सवायुजः।
द्रष्टुं जगामोपवनन्तत्र वृक्षाः सपल्लवाः।।१९०।।

अर्थ–एक बार श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयों समेत साथ में परमप्रिय हनुमानजी को लेकर रमणीय बगीचे को देखने गये। वहाँ पर क्या देखते हैं कि सब वृक्ष फूले हुये थे, नये पत्तों से सुशोभित हो रहे थे।

जानि समय सनकादि आये। तेज पुंज गुनसील सुहाये।।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।

देवीभागवते–तत्रोपजग्मु र्मुनयश्चत्वारस्सूर्य्यवर्चसः।।१९१।।

अर्थ– मिलने का समय जानकर बड़े तेजस्वी, गुणवान्, शीलवान् सूर्य समान कान्तिमान, सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार ये चारों मुनि वहाँ आ पहुँचे। ये यद्यपि देखने में तो बालकरूप थे, परन्तु बहुकालीन थे।

रूप धरे जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा।।
आसा बसन व्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।।

अभेददर्शिनो धीराश्शान्ता दिग्वाससोऽमलाः।
नारायणकथा–प्रेमपरायण–महर्षयः।।१९२।।

अर्थ–कुछ भेद बुद्धि न रखनेवाले समानदर्शी दिगम्बर वे मुनिवर्य्य रामचरित्र की चर्चा जहाँ होती थी वहाँ जाकर सुनते थे। भाव यह कि चारों मुनि समदर्शी,वेदरूप, परमहंस और रामकथा के रुचिकर थे।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ज्ञानी।।
रामकथा मुनि बहु बिधि बरनी। ज्ञान जोनि पावक जिमि अरनी।।

अर्थ–महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! सनकादि मुनि तो वहाँ पर थे, जहाँ पर ज्ञानवान् मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य मुनि थे। अगस्त्यऋषिजी ने नाना प्रकार से रामकथा का वर्णन किया था जो कथा ज्ञानोत्पादिका है जिस प्रकार अरणी लकड़ी अग्नि को उत्पन्न करनेवाली है।

दोहा–देखि राम मुनि आवत,हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूछि पीतपट,प्रभु बैठन कहँ दीन्ह।।३२।।

आनन्द रा०–ताँस्तु सिद्धेश्वरान् वीक्ष्य प्रीत्युत्फुल्लविलोचनः।
आनम्य स्वासन रामो मुनीनभ्युपवेशयत्।।१९३।।
सम्पृष्टकुशलास्सर्वे तस्थू रामेण पूजिताः।

अर्थ–जब रामचन्द्रजी ने मुनियों को आते देखा तब तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उठकर उन्हें प्रणाम किया और कुशलप्रश्न पूछकर उनके बैठने को शुभासन बिछा दिया तत्पश्चात् अर्घ्यपाद्य आचमन आदि देकर पूजन किया।

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भये मगन मन सके न रोकी।।

अध्यात्म रा०–नवदूर्वादलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
कंदर्पकोटिलावण्यं पीताम्बरसमावृतम्।।१९४।।

निर्निमषै र्नेत्रपुटैः पपुस्ते मुखपंकजम्।।१९५।।

अर्थ–नवदूर्वादलसमानश्याम, कमलपत्र सदृश दीर्घलोचन, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर पीताम्बर धारी रघुकुलतिलक को देखकर ऐसे मग्न हो गये कि वे अपने मनको न रोक सके।

स्यामलगात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन।।

★एक टक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु के जोरे सीस नवावहिं।।

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा।।

अर्थ–साँवले शरीर वाले कमलनयन सौन्दर्य के धाम और संसार से छुटानेवाले प्रभु को हाथ जोड़ शीश नवा टकटकी बाँध कर देखते रह गये। श्रीरामचन्द्रजी ने उनकी ऐसी दशा देखी जिसमें कि उनके नेत्रों से प्रेम के आँसू बह रहे थे और शरीर रोमांचित हो गया था। भक्तिकी पराकाष्ठा दशा का बड़ा उत्तम चित्र गोस्वामीजी ने यहाँ पर खींच दिया है भक्तिरस में आप्लुत होकर प्राणी के नेत्रों से अश्रु बह निकलते हैं, शरीर में रोमोद्‌गम हो जाता है, देहकी दशा विह्वल और मन एकाग्र हो जाता है।

कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे।।

आज धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहि अघ खीसा।।

बड़े भाग पाइय सत संगा। बिनहिं प्रयास होइ भव भंगा।।

सत्योपा०–अद्य मे सफलञ्जन्म मुनयो वो विलोकनात्।

युष्माकन्दर्शनम्मन्ये नृणाम्भवति भाग्यतः।।१९६।।

अहो सत्संगमः पुंसामशेषाघप्रशोधनः।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी ने मुनियों का हाथ पकड़कर बैठाला और प्रसन्न होकर अत्यन्त मनभावनी वाणी बोले। हे ब्रह्मानन्दानुभाविनः! आज मुझे श्रीमानों के अलभ्य दर्शन से धरातल में मनुष्य होने का सार्थक्य भासित होकर यह समझ पड़ा कि महात्माओं का दर्शन गृही पुरुषों के भावीजीवन का सुधारक होता हुआ अखिल किल्विष को हटाकर उन्हें आत्म साक्षात्कार का सच्चा पाठ पढ़ा देता है।

दोहा–संतसंग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।

कहहिं संत कबि कोबिद ,श्रुति पुरान सदग्रंथ।।३३।।

श्रीभागवते–संगोयः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया।

स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते।।१९७।।

अर्थ–असाधु अर्थात् विषयी पुरुषों में अज्ञानवश जो संग किया जाता है वह संसृत का हेतु है भाव यह कि सांसारिक सुखानुभव के विचार से बारंबार मनुष्य को जन्ममरण का दुःख उठाना पड़ता है वही साधु पुरुषों में किया हुआ संसार निवृत्त का हेतु हो जाता है।

★इस दशा को नारदसूत्र में इस तरह कथन किया है–

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः– एकस्मै परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति। अत् प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साहो भवति यज्ज्ञात्वामतो भवति स्तब्धो भवत्यात्मा रामो भवति।

अर्थात् (नारदजी बोले) अब मैं भक्ति के स्वरूप का कथन करता हूँ। एक ही पर उत्कट तथा नित्य प्रेम ही उसका स्वरूप है जिसके प्राप्त होने पर जीव कृतार्थ होता है, मुक्त होता है और तृप्त होता है। जिसके प्राप्त होने पर वह किसी बात की भी इच्छा नहीं करता, शोक नहीं करता, द्वेष नहीं करता, किसी वस्तु में आसक्त नहीं होता और न उसका किसी विषय में उत्साह होता है जिसका स्वरूप ज्ञात होने पर वह मस्त हो जाता है स्थिर हो जाता है और आत्माराम हो जाता है।

⋆सुनि प्रभुबचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी।।

जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।

जय निर्गुन जय जय गुनसागर। सुखमंदिर सुंदर अति आगर।।

जय इंदिरारमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर।।

ज्ञाननिधान अमान मान प्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद।।

तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।।

अर्थ—आप ज्ञान के भंडार मानरहित प्रतिष्ठा देने वाले और पवित्र हैं, तथा आपकी कीर्ति वेद और पुराणों में कही गई है। आप तत्व के जाननेवाले उपकार के माननेवाले और अज्ञानको दूर करनेवाले हैं। आप अनेक नामों से पुकारे जाते हैं तो भी आप नाम रहित हैं।

सर्ब सर्बगत सर्बउरालय। बससि सदा हम कहँ परिपालय।।

द्वंद बिपति भवफंद बिभंजय। हृदि बसि राम काममद गंजय।।

अर्थ—आप विश्वरूप हैं देश, काल, वस्तुव्यापक हैं और सब प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं सो सदैव मेरी रक्षा कीजिये। और जगत जाल से छुड़ाकर हृदय में वश कर शांति प्रदान कीजिये।

दोहा—परमानंद कृपा यतन, मन परि पूरन काम।

प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम।।३४।।

अर्थ— हे आनन्दमय! कृपासागर आप आप्तकाम हो अर्थात् कामनाओं से परिपूर्ण हो हमें आप अपाय रहित भक्ति दें।

देहु भगति रघुपति अतिपावनि। त्रिबिध ताप भव दाप नसावनि।।

प्रनत काम सुर धेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजइ प्रभु यह बरु।।

श्रीभागवते—तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश।

पश्यामि नान्यच्छरणं तवांध्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात्।।१९८।।

अर्थ—हे ईश ! मैं तापत्रयाभिभूत होने ही से घोर भवाटवी में पड़कर ठोकर खा रहा हूँ ऐसी विपन्नावस्था से छुटकारा पाकर परमानन्दभाक् होना आपके चरणों की कृपा से अतिरिक्त अन्यत् साधन नहीं है।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवकसुलभ सकल सुख दायक।।

मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय।।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी ! आप भवसमुद्र के लिये कुम्भज हैं अर्थात् आपके प्रताप से यह संसार मिथ्या जंच कर नष्ट हो जाता है। आप अपने भक्तों को सहज ही में मिल जाते हैं और उन्हें सब प्रकार का सुख देते हैं। मानसिक दुःखों का दलन कीजिये और समानदर्शिता का संचार कीजिये।

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक।।

भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।

अर्थ—आप आशा, भय, द्वेष आदि से छुड़ानेवाले हो और नम्रता ज्ञान, तथा वैराग्य प्रचारक हैं और राजश्रेष्ठ हैं। हमें ऐसी भक्ति दीजिये जिसके आश्रय से आवागमन रूपा नदी को उल्लंघन कर जाँय।

⋆सनकादिक ऋषियों की इस ब्रह्मस्तुति में ऐसे और भी अनेक शब्द आये हैं जो एक दूसरे के विपरीत समझ पड़ते हैं। जैसे(१) 'अनेक'(२)'निर्गुण गुणसागर' (३) 'नाम अनेक, अनाम' परन्तु इन्हीं लक्षणों से परमेश्वर की अद्‌भुत सत्ता सूचित होती है यही स्पष्ट रूप से ईशोपनिषद् में यों कहीं गई है– तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थ– वह चलता है, वह नहीं भी चलता, वह दूर है, वह पास ही है, वह सब के बाहर है

भावार्थ– आत्मतत्व के न जाननेवाले पुरुष कह उठेंगे कि ये परस्पर प्रतिपधर्म एक पदार्थ कैसे रह सकते हैं। निस्संदेह किसी भौतिक एवं परिच्छिन्न पदार्थ में ऐसे दो विरुद्ध धर्मों का होना असम्भव है। ब्रह्म के लिए जिसकी सत्ता का कहीं पर भी अवरोध नहीं है, उसके विषय में यह परस्पर व्याघात नहीं कहलाता, प्रत्युत पदार्थों से उसकी भिन्नता और विलक्षणता सिद्ध करता है।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर।।
रघुकुल केतु सेतु स्तुतिरच्छक। काल कर्म सुभाव गुन भच्छक।।
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।।

अर्थ—मुनियों के मनमानस के हंस ब्रह्मा और शंकरजी से चरणकमल बन्द्य जिसके ऐसे, रघुकुल केतु मर्यादा सेतु, श्रुतिरक्षक, काल कर्म गुण स्वभाव के नाशक, तरन तारन कारक, सम्पूर्ण दूषणों से हारक त्रिभुवनभूषण और तुलसीदास के आप स्वामी हो।

दोहा—बार बार अस्तुति करि, प्रेमसहित सिर नाइ।
ब्रह्मभवन सनकादि गे, अतिअभीष्ट बर पाइ।।३५।।
सनकादिक बिधि लोक सिधाये। भ्रातन्ह रामचरन सिर नाये।।

सत्यो०—त आत्मयोगमतयो राघवेणार्चितर्षय।
शीलौदार्ये प्रशंसन्तो ब्रह्मलोकमयासिषुः।।१९९।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्र से पूजित होकर आत्मयोग में दृढ़मति रखनेवाले सनकादिक रघुकुलतिलक की शीलोदारता आदि की तारीफ करते हुये ब्रह्मसदन को गये।

पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं।।
सुनी चहहिं प्रभुमुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।।

अर्थ—सनकादिक के चले जाने पर तीनों भाइयों ने भ्रातृवर्यजी के चरणों में शीस नवाया परन्तु सब के सब प्रभुजी से पूछने में संकोच करते थे इस हेतु हनुमान्जी की ओर देखने लगे। श्रीरामचन्द्रजी के मुख से बचन सुनना चाहते थे, जिसके सुनने से सभी भ्रम भाग जाते हैं।

अंतरजामी प्रभु सब जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना।।
जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता।।
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।।

अर्थ—हृदयकी चेष्टा को जानने वाले स्वामी सब समझ गये और कहने लगे श्रीपवननन्दन कहो तो यह क्या पूछना चाहते हैं? तब हनुमान् जी हाथ जोड़कर कहने लगे, हे दीनानाथ! सुनिये, भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं परन्तु पूछने में हृदय से सकुचते हैं।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहिं मोहि कछु अंतर काऊ।।
सुनि प्रभुबचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।।
दोहा—नाथ मोहि सँदेह कछु, सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिही, कृपानंद संदोह।।३६।।

अर्थ—हे प्रभो! मुझे कुछ संदेह नहीं है और न भूलकर के भी कुछ दुःख है और न मोह है। हे कृपा और आनन्दनिधान! यह सब केवल आप ही की कृपा का कारण है।

करउँ कृपा निधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुख दाई।।
संतन कै महिमा रघराई। बहु बिधि बेद पुरानन्हि गाई।।
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बडाई। तिन्ह पर प्रभुहिं प्रीति अधिकाई।।
सुना चहहुँ प्रभ तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ज्ञान बिचच्छन।।
संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन के लच्छन सुनु भ्राता। अगिनित श्रुति पुरान बिख्याता।।

आनन्द रा०—साधुस्त्वयोत्तमश्लोकमतः कीदृग् विधः प्रभो।
एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत् प्रभो।।२००।।

प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम्।।२०१।।

अर्थ–हे पुरुर्षभ ! महात्माओं की कैसी स्थिति है, अर्थात् कैसे गुणवाले महात्मा पद से वाच्य हो सकते हैं। उनकी महिमा पुराणों में विविध प्रकार से कही गई है। मैं श्रीमुख से साधु पुरुषों का लक्षण सुनना चाहता हूँ इसलिए मैं आपको कष्ट दे रहा हूँ।

संत असंतन्ह कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निजगुन देह सुगंध बसाई।।

सुभाषितरत्न भां०–सुजनो न याति वैरं परहितनिरगो विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दनतरुस्सुरभयति मुखं कुठारस्य।।२०२।।

अर्थ– परोपकारी सज्जनबृन्द अपना विनाश देखते भी किसी से वैर नहीं करते जैसे कि चन्दन का वृक्ष कुल्हाड़ी से अपना सर्वनाश देखकर भी उसके मुख को सुगन्धित ही करता है एवं सज्जन दुर्जन से अपनी हानि समझते भी सौजन्यता नहीं त्यागते।

दोहा– ता तें सुरसीसहु चढत, जगबल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड।।३७।।

अर्थ–चन्दन के साथ विरुद्ध आचरण करने का परिणाम यह होता है कि चन्दन तो हित करने से देवताओं के मस्तक पर चढ़ाया जाता है और जगत में प्रिय समझा जाता है। कुठार जो हित करने पर भी अहिताचरण करता है अतः इसका मुख वह्नि में जलाकर निहाई पर रख करके घन से पीटा जाता है। इसी तरह सज्जन हित करने से देवलोक में पहुँच तत्रत्य सुख भोगते हैं और दुर्जन यम के मुद्गरों से पीटे जाते हैं।

बिषय अलंपट सील गुनाकर। परदुख दुख सुख सुख देखे पर।।

वन्हि पु०–त्यक्तात्मसुखभोगेच्छाः सर्वसत्वसुखैषिणः।
भवन्ति परदुःखेन साधवो नित्यदुःखिताः।।२०३।।

अर्थ–अपने सुख और भोगों की इच्छा न रखकर दिल से तमाम जीवों के सुख की परवाह करते हुए साधु पुरुष सब के दुःख सुख में समवर्ती रहते हैं।

सम अभूतरिपु बिरद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।

श्रीभागवते–तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवश्शान्ताः साधवः साधुभूषणाः।।२०४।।

अर्थ–हे भाइयो! सहनशील, दयालु समस्त शरीरधारियों का प्यारा जिसका संसार में कोई शत्रु नहीं है ऐसा साधु मुझे प्रिय है।

सबहिं मानप्रद आप अमानी। भरत प्रानसम मम तें प्रानी।।

अर्थ– साधु पुरुष सबकी प्रतिष्ठा करते हैं परन्तु आप मानरहित रहते हैं। हे भरतजी ! ऐसे प्राणी मुझे प्राणों की नाईं प्रिय हैं।

बिगतकाम मम नामपरायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मइत्री। द्विज प्रद प्रीति धरमजनयित्री।।
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानहु तात संत संतत फुर।।

भृतहरिशतके–तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं माकृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान् मानय विद्विषोप्यनुनय प्रख्यापय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां लक्षणम्।।२०५।।

अर्थ–तृष्णा को त्यागो क्षमा को धारण करो, अभिमान को दूर रक्खो पाप में प्रेम न करो, सत्य बोलो साधुमार्ग पर चलो, विद्वानों की सेवा करो, मान्य पुरुषों का सम्मान करो, शत्रुओं से भी बिनीत होओ। अपने गुणों को प्रकाशित करो, कीर्ति की रक्षा करो, दु:खी जनों पर दया रक्खो यह सज्जनों के लक्षण हैं।

सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।

कामन्दिकीये–साधवः प्रतिपन्नार्थाः प्रचलन्ति न सत्पथात्।

अर्थ–आत्मकाम साधुजन सत्पथ से बिचलित नहीं होते और न कदापि कठोर भाषण करते हैं।

दोहा– निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुखपुंज।।३८।।

गीतायाम्–तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः।।२०६।।

अर्थ– जिन्हें बड़ाई और निचाई दोनों बराबर हैं और येन केन प्रकारेण सन्तुष्ट हैं। अनिकेत अर्थात् गृह रहित रहकर सदा स्थिर प्रज्ञ हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिय न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।।

सुभाषितरत्न भां–परोपकारनिरतै दुर्जनैः सहसंगतिः।
वदामि भवतस्त्वन्न विधेया कदाचन।।२०७।।

अर्थ–मैं तुमसे सारांश बतला रहा हूँ कि असज्जनों का संपर्क अर्थात् उनके साथ किसी प्रकार का व्यवहार कभी भी न करना, कारण कि उनकी संगति सदा दु:खद है।

खलन्ह हृदय अतिताप बिसेखी। जरहिं सदा परसंपति देखी।।
ऊर्जितं सज्जनं दृष्ट्वा द्वेष्टि नीचः पुनः पुनः।
कवली कुरुते स्वस्थं विधुं दिवि विधुन्तुदः।।२०८।।

अर्थ–दुर्जन मनुष्य सज्जन को हरे भरे देख अपने प्राक्तन दु:संस्कारानुरूप उससे चिढ़ा करता है। जैसे सिंह का सुत राहु गगनचारी कलानिधि को पूर्णकलासमन्वित देख पूर्णिमा में ग्रस लेता है।

जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।

अहो सहन्वे वत नो परोदयं निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः।।२०९।।

अर्थ–आश्चर्य है कि स्वभावसिद्ध मलिन अन्त:करणवाले असज्जन दूसरों के अभ्युदय को नहीं रख पाते।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।

भृतहरिशतके–अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्।।२१०।।

अर्थ–निर्दयता, बिना कारण झगड़ा करना, परधन और पर स्त्री पर निगाह डालना, सज्जन और सम्बन्धियों की बात न सहना यह सब बातें दुर्जनों में स्वभाव सिद्ध होती हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुबचन जिमि मोरा। खाहिं महाअहि हृदय कठोरा।।

सुभाषिते–परिशुद्धामपि वृत्तिं समाश्रितो दुर्जनः परान् व्यथते।
पवनाशिनोपि भुजंगाः परोपतापं न मुञ्चन्ति।।२११।।

अर्थ–दुर्जन मनुष्य देखावटी बाना भले ही क्यों न अच्छा बनाये हो परन्तु सज्जनों को भाँप जाना

चाहिये कि क्या पवन पीकर रहनेवाला भुजंग दूसरों को कष्ट देने से चूकता है अर्थात् नहीं।

दोहा—परद्रोही पर दार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पावँर पाप मय, देह धरे मनुजाद।।३९।।

चाणक्यनीतौ— येषां न विद्या न तपो न दानं न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।२१२।।

अर्थ—जिसमें न विद्या है, न तप,दान,शील, न धर्म आदि सद्गुणों में एक भी गुण है वह इस मरणर्धी संसार में जन्म लेकर पृथ्वी के भाररूप हैं और मनुष्य शरीर धारण कर मृगादि पशुओं के समान अपना निर्वाह करते हैं।

लोभइ ओढन लोभइ डासन। सिस्नोदरपर जमपुर त्रासन।।

हितोपदेशे— यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः।
आस्थिते रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत्।।२१३।।

अर्थ—परदार और पेट भरने के व्यवसाय में लगे हुए दुर्जनों के पथ पर जो लोग पग बढ़ाये हैं वे पहले की तरह फिर भी नरक का आदर करेंगे।

काहू कै जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूडी आई।।

सुभाषिते—दह्यमानास्सुतीव्रेण नीचाः परयशोग्निना।

अर्थ—नीच मनुष्य किसी भी सज्जन का अभ्युदय नहीं देख पाते, जहाँ बड़ों का यश सुन पाया देह में वह्निज्वाला धधकने लगती है।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भये मानहुँ जगनृपती।।

चाणक्यनीतौ— खलाः परविपत्तिभिः

अर्थ—असज्जन पुरुष किसी को आपत्ति में देखते हैं तो उन्हें चक्रवर्ती होने का सुख होता है।

स्वारथरत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अतिक्रोधी।।

गरुड़ पु०—यस्मिन् वंशे समुत्पन्नस्तमेव निजचेष्टितैः।
दूषयत्यचिरेणैव घुणकीट इवाधमः।।२१४।।

अर्थ—अधम नर जिस वंश में जन्म लेता है अपनी करतूतों से घन के कीड़ों की तरह उसे ही बिगाड़ता है।

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं।।
करहिं मोहबस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।

माता पित्रोश्च हन्तारो वेदब्राह्मणनिन्दकाः।
द्विषन्तः परकार्याणि स्वात्मानं हरिमीश्वरम्।।२१५।।

अर्थ—माता–पिता को निष्प्रयोजन कष्ट देने वाले, अधमनर वेद और ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं और सत्पुरुषों के किये कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं अपने आत्मस्वरूप ईश्वर से भी विद्वेष करते हैं।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी।।
विप्रद्रोह सुर द्रोह बिसेषा दंभ कपट जिय धरे सुबेषा।।

भागवते—जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान् सतोवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः।।२१६।।

अर्थ—दुष्टजन अपने तीव्राभिमान से अन्धबुद्धि होकर भगवत्प्रिय भगवद्भक्तों का अपमान करते हैं।

दोहा—ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं।।४०।।

कृतं त्रेता द्वापरश्च कालश्चेति चतुर्युगम्।
अनेनक्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते।।२१७।।

अर्थ—कृत, त्रेता, द्वापर, कलि यह युग चतुष्क क्रम से इस जगत में प्राणियों के ऊपर वर्तते हैं, परन्तु

सतयुग और त्रेता में लोग सदाचारी, सबके मित्र और तपोनिष्ठ होते थे। द्वापर में नातिहिंसक, नातिक्रूर, नातिलम्पट होते थे और कलियुग में अधिकतर लोग अतिहिंसक, अतिक्रूर, अतिलम्पट होते हैं।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीडा सम नहिं अधमाई।।
निरनय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।

सुभाषितरत्न भां०–अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य बचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।२१८।।

अर्थ–अट्ठारह पुराणों में व्यासजी के दो ही वचन हैं। परोपकार करना ही पुण्य है और दूसरों को दुःख देना पाप है।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महाभव भीरा।।
मानुषं देहमाश्रित्य परान् यो हि व्यतिक्रमेत।
सोप्याप्नोति महत् कष्टं नात्रकार्या विचारणा।।२१९।।

अर्थ–मनुष्य शरीर धारण कर जो प्राणी किसी भी जीवधारी को कष्ट पहुँचाता है उसे दारुण यातना भुगतनी पड़ती है इसमें सन्देह नहीं है।

करहिं मोहबस नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नसाना।।
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करमफलदाता।।
गरुड़ पु०– धर्मे च फलदाताहमधर्मे यम एव च।
यातनां ददतेऽधर्मो धर्म्मो मुक्तिम्प्रयच्छति।।२२०।।

अर्थ–भगवान् कहते हैं कि जो स्वार्थान्ध होकर मोहवश परलोकागमन को भूल में डाल नाना प्रकार के अघ करते हैं उन्हें मैं यमराज होकर नाना प्रकार की भीषण यातना देता हूँ। और धर्मनिष्ठ परोपकारी पुरुष को धर्मरूप होकर चतुर्वर्ग फल देता हूँ।

अस बिचारि जे परमसयाने। भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने।।
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहिं सुरनर मुनि नायक।।

शिवसंहितायाम्–असारं खलु संसारं ज्ञात्वा माम्पण्डितास्सदा।
भजन्ते सर्वभावेन संगं त्यक्त्वा बरानने।।२२१।।

अर्थ–हे वरानने ! पंडितजन संसार को असार समझ कर सर्व भाव से सबका साथ छोड़ मेरा भजन करते हैं। शुभ और अशुभ कर्म को छोड़ कर मेरा भजन करते हैं।

संत असंतन के गुन भाखे। ते न परिहिं भव जिन्ह लखि राखे।।

अर्थ–मैंने सज्जन और असज्जनों के लक्षण बतला दिया है भाई ! जो इस पर ध्यान देगा वह कभी भवफेर में न फँसेगा।

दोहा– सुनहु तात मायाकृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखियहिं, देखिय सो अबिबेक।।४१।।

श्रीभागवते–किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः।।२२२।।

अर्थ–भगवान् बोले हे तात् ! यह सब तुमने गुणदोषों के भेद जो कुछ पूछा है उसका बहुत वर्णन न कर संक्षेपतः बतलाता हूँ कि गुण और दोष को न देखना तो गुण है और दोनों का देखना ही दोष है।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदय समाई।।
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हिय हरष अपारा।।
पुनि रघुपति निज मंदिर गये। एहि बिधि चरित करत नित नये।।

आनन्द रा०—एवं बहूपदेशञ्च दत्वा भ्रातृभ्य उत्तमम्।
चरितं सततं नूत्नं करोतिस्म महेश्वरि।।२२३।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के बचनों को सुनकर भ्रातृगण सहित पवनकुमारजी अत्यन्त प्रसन्न हुये, और रामचन्द्रजी इस तरह सदुपदेश देकर अपने भवन को चले गये। भगवान् शंकर स्वामी इस प्रसंग को पूरा कर पार्वती के प्रति कह रहे हैं कि हे महेश्वरी! रघुनाथजी इसी तरह की नित्य नई लीला करते थे।

बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं।।
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं।।
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुनगानहिं।।

सत्योपा०—तेन स्तोत्रं समारब्धं ब्रह्मादीनाञ्च सन्निधौ।
ब्रह्मादयस्तु ते देवाः शशंसुर्मनसा मुनिम्।।२२४।।
अहो मुने त्वं धन्योऽसि पुनर्वद हरेर्गुणान्।

अर्थ—नारदजी श्रीअवध में आकर प्रतिदिन श्रीरघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी के नये—नये चरित्रों को देख सत्यलोक जाकर के पितामह जी को सुनाया करते थे और पितामह भी सुनकर बहुत ही प्रसन्न होते हुये कहा करते थे, अहो नारदजी तुम्हें धन्य है फिर से भगवान् के चरित्र को गान करो।

सनकादि नारदहिं सराहहिं। जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं।।
सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।।
दोहा—जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरिकथा न करहिं रति, तिन्ह के हिय पाषान।।४२।।

श्रीभागवते—आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः।।२२५।।
तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणै र्हरिनामधेयैः।।२२६।।

अर्थ—परमात्मतत्व के विचार में लगे योगी यती भी उरुक्रम बामनादि अवतारों की सुललित कथायें बड़े ध्यान से निःकारण सुनते हैं। ऐसे गुणविशिष्ट भगवान् राम—कृष्णादि के सुन्दर चरित्रों में जो प्रेम नहीं करते है उनके हृदय पाषाण हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाये। गुरु द्विज पुरबासी सब आये।।
बैठे सदसि अनुज मुनि सज्जन। बोले बचन भगत भय भंजन।।

आनन्द रा०—एकदा राघवः श्रीमानाजुहाव गुरुन् द्विजान्।
भरतं लक्ष्मणं शत्रुसूदनं पुरवासिनः।।२२७।।

अर्थ—एक दिन श्रीरामचन्द्रजी के बुलाने से गुरुवसिष्ठजी ब्रह्ममंडली और नगर निवासी सब उपस्थित हुये। जब सभा में तीनों भाई मुनिगण और महाजन बैठ गये तब भक्तभयभंजन श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जौ तुम्हहिं सुहाई।।

श्रीभगवानुवाच—शृण्वन्तु मनुयस्सर्वे सर्वे शृण्वन्तु बन्धवः।
पुत्रौ द्विजा मन्त्रिणश्च सर्वाः शृण्वन्तु मातरः।।२२८।।

अर्थ— भगवान् बोले हे मुनिगणों ! तथा माननीय विप्रवृन्दों और उपस्थित सज्जनों मेरे वचनों को सुनों, मैं अपने हृदय में कुछ अपनपो या अहन्ता मानकर नहीं कहता हूँ। इसमें न तो कुछ नीति के विरुद्ध है और न कुछ अधिकार सूचक है इन्हें सुनों और यदि तुम्हें अच्छे लगे तो मेरे कहने को करो।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई।।
जौं अनीति कछु भाषउँ भाई।। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।

मदादेशकारो लोको वत्सला मम एव सः।
यथार्हं यन्न भाषेय दूषयन्तु तदैव तत्।।२२९।।

अर्थ—जो कोई मेरे वचनों को मानेगा, वही मेरा प्यारा सेवक है। हे भाइयों ! यदि मैं कुछ नीति के अनुसार न कहूँ तो निडर होकर मुझ टोक देना।

बड़े भाग मानुषतनु पावा। सुरदुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधनधाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।
दोहा— सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताई।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ।।४३।।

भागवते—येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिम्प्रपन्ना ज्ञानं च तत्वविषयं सहधर्म यत्र
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य सम्मोहिता विततया वत मायया ते।।२३०।।

अर्थ—अच्छे–अच्छे ग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य देह जो देवतओं को भी नहीं मिलता है, यही मनुष्यदेह सम्पूर्ण साधनों का मार्ग है इसे पाकर जिसने अपना परलोक नहीं सुधार लिया सो वह परिणाम में दुःख पाता है। और अन्त में माथा पीट–पीट कर पछतावा करता है और समय, कर्म, तथा ईश्वर को झूठ ही दोषी ठहराता है अर्थात् मनुष्य देह पाकर जो ईश्वर का भजन नहीं करता वह दुःख पाता है फिर कहता है कि यह समय का फेर है। (२) या कर्मों की प्रबलता है, (३) अथवा ईश्वरेच्छा है परन्तु जो यथार्थ कारण है उसे नहीं कहता कि वो मेरी असावधानी का फल है।

ऐहि तन कर फल विषय न भाई। स्वरगउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नरतनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं।।

भागवते—यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम्।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्यमृतं त्यजन्।।२३१।।

अर्थ—हे भाइयों ! यह शरीर केवल विषय भोग की प्राप्ति के हेतु नहीं है कारण स्वर्गप्राप्ति यदि हुई भी तो थोड़े ही समय के लिये है और उसका परिणाम भी दुःखद है। मनुष्य का शरीर पाकर नारायण का भजन स्मरण छोड़कर जो लोग विषयों में फँसे रहते हैं वे मूर्ख अमृत को पलट कर विष बटोरते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अबिनासी।।

अर्थ—उसको कोई भी भला नहीं कहता, कारण वह पारस पत्थर को त्याग कर घुंमची को ले लेता है। यह नाशरहित जीव चौरासी योनियों में भटकता फिरता है।

फिरता सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नरदेही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

विष्णु पु०—मायाधीनोऽयमशिवं शिवो भुङ्क्ते गुणत्रयम्।
दयया ददाति भगवान् नृदेहञ्जीववत्सलः।।२३२।।

अर्थ—और सदैव माया के अधीन हुआ यह कल्याण रूप जीव अनित्य गुणत्रय को भोगता है अर्थात् अपने अनुचित या उचित कर्मों के प्रभाव से ऊँच नीच योनियों में पड़कर चक्कर खाता रहता है। बिना ही स्वार्थ के प्रीति करनेवाले परमेश्वर कभी दया करके मनुष्य देह देते हैं।

नरतन भवबारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
दोहा— जो न तरइ भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आतम हन गति जाइ।।४४।।

भागवते–नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।२३३।।

अर्थ–पहले तो मनुष्य के शरीर का सुलभ होना अतिदुर्लभ है यही देह दृढ़ नौकारूप है। इस देहरूपी नौका में गुरु नाविक हैं और मेरी कृपा रूप वायु से वह चलती है ऐसी सामग्री सहित मनुष्य शरीररूपी नौका को पाकर जो मनुष्य संसारसिंधु के पार नहीं जाता वह मूर्ख आत्मघाती है।

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि ममबचन हृदय दृढ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान स्रुति गाई।।

सत्योपा०–एतदात्यन्तिकं क्षेमं वदामि भवतोऽनघाः।
मदीयो भक्ति योगो उभयत्र प्रशर्मकृत्।।२३४।।

अर्थ– हे अनघाः ! मैं आप लोगों के आत्यन्तिक क्षेम (अतिशय कल्याणमार्ग) का उपाय बता रहा हूँ जो सांसारिक वा पारलौकिक सुख चाहते हो तो मेरी भक्ति को श्रद्धा से ग्रहण करो।

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भगतिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।

पुराणे– ज्ञानमार्गो नराणां च दुर्गमस्तस्य साधनम्।
कठिनं तीव्रकष्टेन गम्यते क्वापि कैरपि।।२३५।।

अर्थ–ज्ञानमार्ग में बड़ी दुर्गमता है और साधन भी कठिन है विघ्नों की भरमार है यह नहीं कहता हूँ कि किसी से साध्य ही नहीं है, परन्तु यह उसीसे साध्य है जो जितेन्द्रिय और स्थिरप्रज्ञ है।

भगति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।
पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।

सत्योपा०–यदि भाग्याद्धि साधूनां संगति र्जायते क्षितौ।
तदा रामस्य भक्तित्वे नराणाञ्जायते मनः।।२२६।।
बिना भक्त्या न मुक्तिश्च नराणामंडगोलके।

अर्थ–इस ब्रह्माण्ड में बड़े भाग्योदय से जब कभी कहीं महात्मा के दर्शन हो जाते हैं तब उनके सदुपदेश से श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में भक्ति हो जाती है जिसके द्वारा वह मुक्तिमार्गावलम्बी हो जाता है।

पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करइ द्विजसेवा।।

विष्णु सं०–यद् ब्राह्मणास्तुष्टतमा वदन्ति तद्देवताः प्रत्यभिनन्दयन्ति।
तुष्टेषु तुष्टास्सततम्भवन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः।।२३७।।

अर्थ– जो वाक्य प्रसन्नमन से ब्राह्मण कह देते हैं उसी वाक्य को देवता भी अंगीकार करते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष देव महीसुरों के सन्तुष्ट होने पर परोक्ष देव भी परम प्रसन्न होते हैं।

दोहा–अउरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि।।४५।।

न कथम्मयि सद्भक्तिं लभते पापपूरुषः।
यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्नहि।।२३८।।

अर्थ–जो मनुष्य मेरे परमभक्त सदाशिवजी का पूजन नहीं करता वह पापात्मा कभी मेरा भजनाधिकारी नहीं हो सकेगा।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथालाभ संतोष सदाई।।

विधेश्वर सं०– न योगो न जपो यज्ञो न तपो न व्रतानि च।

यदृच्छा लाभसंतुष्ट्या सुलभ्योहन्न संशयः।।२३९।।

अर्थ–भला कहो तो भक्ति मार्ग में क्या कठिनाई है जिसमें योग, सांख्य, जप, तप, ब्रत आदि किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं है। किंतु सरल स्वभाव छलरहित भाव यथालाभ में सन्तोष रखने में सुलभ अर्थात् सुख से मिल जाता हूँ।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा।।

महाभारते– भोजने छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।

योऽसौ विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते।।२४०।।

अर्थ–जो नारायणजी अखिल ब्रह्माण्ड का भरण–पोषण करते हैं, उन्हें भक्तों की सर्वसुविधाओं पर क्या उपेक्षा हो सकेगी ? अर्थात् कभी नहीं। सदैव भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने में कटिबद्ध रहते हैं।

बहुत कहउँ का कथा बढाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई।।

भागवते–निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम्।

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः।।२४१।।

अर्थ–हे भाइयों ! मैं निष्कपट भक्ति के अधीन हूँ। और निरपेक्ष (नःस्पृह) वैररहित, समदर्शी, शान्तरूप मुनिजनों के पीछे में इन चरणधूलियों से पवित्र होऊँ ऐसी कामना करता हुआ चलता हूँ।

बयरु न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।

मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।।२४२।।

अर्थ–मुझसे प्रसन्न रहने वाले, शत्रु मित्र राग,द्वेष में समचित्त रखनेवाले, कुछ भी पास न रखनेवाले महात्मा को सर्वत्र सुख है।

अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिज्ञानी।।

गीतायाम्– अनपेक्षश्शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।२४३।।

अर्थ–इच्छारहित शुद्धचित्त, कार्यकुशल, फलत्यागी दुःख के कारण चल विचल न होनेवाला, कामनायुक्त कार्यों का आरम्भ न करनेवाला मेरा भक्त मुझे बहुत ही प्रिय है।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृनसम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।

भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।

भर्तृहरिशतके– वाञ्छा सज्जनसंगतौ परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता।

भागवते– न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।

न योगसिद्धीरपुनर्भवञ्च मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।।२४४।।

अर्थ–मेरे भक्त सदा सत्पुरुषों में प्रेम, परगुणों में प्रेम, गुरुजनों में प्रेम व नम्रता दोनों रखते हैं। अपनी आत्मा मुझे सौंपकर किसी भी वस्तु की चाह न करते हुए स्वर्गादि लोकों को अतितुच्छ मान हठपूर्वक सेव्य सेवक भाव को दृढ़ता से गह करके कुतर्कों से सदा दूर रहते हैं।

दोहा–मम गुनग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।

ता कर सुख सोइ जानइ, परानंद संदोह।।४६।।

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव।

अमानित्वमदभित्वं कृतस्य परिकीर्तनम्।।२४५।।

अर्थ– हे उद्धव! जो ममता, मोह और मद को त्याग कर मेरे ही गुणों का कीर्तन और नाम जप में मग्न रहते हैं इस रहस्य का सुख वही जानते हैं।

सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबन्हि पर कृपाधाम के।।
जननि जनक गुरु बंधु हमारे। कृपानिधान प्रान तें प्यारे।।
तन धन धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी।।

पाण्डवगीतायाम्–त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव।।२४६।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्र के अमृत समान वचनों को सुनते ही सब लोगों ने कृपासागर प्रभु के चरणगहे और कहे कि हे दयासागर ! आप ही हमारे प्राणों से प्यारे माता पिता भाई सुहृद सभी कुछ हो।

अस सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथरत ओऊ।।
हेतुरहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।

भागवते–भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एका स्निग्धाः काकिणिना सद्यस्सर्वेऽरयः कृताः।।२४७।।

अर्थ–आपके बिना ऐसी शिक्षा और कोई नहीं दे सकता (कदाचित् कहैं कि) माता पिता और सुहृद बड़े प्यारे होते हैं परन्तु वे भी एक कौड़ी के कारण भेद बुद्धि धरण कर लेते हैं। और तत्काल सबके सब पूरे शत्रु हो जाते हैं।

स्वारथमीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।।

वृहच्छार्ङ्गधरपद्धतौ–श्रुद्रास्सन्ति सहस्त्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः।
स्वार्थोयस्य परार्थ एव सपुमानेकः सतामग्रणीः।।२४८।।

अर्थ–अपने पेट भरने के व्यापार में कमरकसे सहस्त्रों पामर मनुष्य हैं लेकिन परमार्थका स्वार्थ मानकर विश्व का उपकार करनेवाला मनुष्य कोई एक है।

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने।।
निज गृह गये सुआयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।।
दोहा–उमा अवधबासी नर,नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, रघुनायक जहँ भूप।।४७।।

सत्योपा०–अयोध्यावासिनस्सर्वे जगन्नाथस्य मूर्तयः।
यत्र नारायणः साक्षात् चतुर्धा व्यस्य स्वन्तनुम्।।२४९।।
सदैव रमते यत्र तस्याः किं वर्ण्यते गुणः।।२५०।।

अर्थ–महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! अवधवासी जन भगवान् के रूप हैं जहाँ साक्षात् रमाकांत वैकुण्ठनाथजी अपने रूपको चार भागों में विस्तृत करके रम रहे हैं, उस नगरी का वैभव वर्णन कहाँ तक कोई कर सकता है।

एक बार बसिष्ठ मुनि आये। जहाँ राम सुखधाम सुहाये।।
अतिआदर रघुनायक कीन्हा। पदपखारि चरनोदक लीन्हा।।

एकदा ब्रह्मपुत्रस्तु वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
प्रतस्थे यत्र रामश्च शर्मधाम्नि विराजते।।२५१।।
प्रत्युद्गम्य गुरुं रामो ददावासनमुत्तमम्।

अर्थ–किसी दिन बसिष्ठमुनि वहाँ पधारे जहाँ श्रीरामचन्द्रजी का मनोहर सुखद भवन था श्रीरामचन्द्रजी ने वसिष्ठजी का बड़ा सम्मान किया तथा उनको अर्ध्य पाद्याचमनीय से पूजन कर भद्रासन पर बैठाया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपा सिंधु बिनती कछु मोरी।।
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा।।

शृणु राममहाबाहो वचनम्मम सादरम्।
चरितन्तव संदृश्य संशयो जायते बहु।।२५२।।

अर्थ– हे आजानुबाहो ! मेरी सुनों, वह यह कि आपके चरित्रों को देख देखकर मेरा हृदय बड़े चक्कर में पड़ जाता है त्रिकालज्ञ गुरु वसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी के आचरणों का संकेत करते हैं उनमें से कई एक हैं। (१) विश्वामित्र की सेवा (२) अहिल्या का उद्धार। (३) केवट की मिताई। (४) मृत राक्षसों को मुक्ति देना। (५) लंका में सीताजी की वह्नि परीक्षा (६) विमाता कैकयी के साथ उत्तम वर्ताव आदि।

महिमा अमित बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना।।
उपरोहिती कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा।।
दोहा–तब मैं हृदय बिचारा, जोग जज्ञ व्रत दान।
जा कहँ करिय सो पइहउँ, धर्म न एहि सम आन।।४८।।

अध्यात्म रा०–पौरोहित्यमहञ्जाने विगर्ह्यं दृष्यजीवनम्।
इक्ष्वाकूणां कुलेरामः परमात्मा जनिष्यते।।२५३।।
इति ज्ञातं मयापूर्वं ब्रह्मणा कथितम्पुरा।
ततोहमाशया राम तव सम्बन्धकांक्षया।।२५४।।
अकार्पं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये।
ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन।।२५५।।
त्वदधीना महामाया सर्व्वलोकैकमोहिनी।
माँय्यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह।।२५६।।
गुरुनिष्कृतिकामस्त्वँय्यदि देह्येत देव मे।।२५७।।

अर्थ–वसिष्ठजी बोले कि हे रघुकुलतिलक ! मैं पौरोहित्यकर्म को अति निन्द्य और उससे जीविका चलाना दूष्य समझता हुआ उसे किसी तरह स्वीकार नहीं करता था। किंच पितामहजी ने मुझे अनेक भाँति से सान्त्वना देते हुये ''परब्रह्म परमात्मा नारायणजी इक्ष्वाकुवंश में अवतरेंगे''– यह कथा कही तो मुझे बड़ा सन्तोष और खुशी हुई। अतएव हे सच्चिदानन्द ! मैंने विगर्हित पौरोहित्यकर्म को अंगीकार कर लिया है वह अब चरितार्थ हो गया आपके भव्यदर्शन से मनोरथ तरु फल गया। विनय इस बात की है कि आप सब प्रकार समर्थ हैं चाहें तो मायापिशाची से छुटकारा मिल सकता है। गुरुऋण से मुक्त होना चाहते हो तो कृपया महामाया से मुझे छुड़ा दो, यही दक्षिणा माँगता हूँ।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। स्रुतिसंभव नाना सुभ कर्मा।।
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धरम कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढे सुने कर फल प्रभु एका।।
तब पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।

भागवते– क्रियया क्रतुभिर्दानै स्तपः स्वाध्यायमर्शनैः।
आत्मेन्द्रियोज्जयेनापि सन्यासेन च कर्म्मणाम्।।२५८।।
योगेन विविधांगेन भक्तियोगेन चैव हि।
आत्मतत्वावबोधेन वैराग्येन दृढेन च।।२५९।।
ईयते भगवानेभिस्सगुणो निर्गुणः स्वदृक्।

अर्थ–जप, तप, नियम, योग, यज्ञ, दान, दया और नाना प्रकार के सत्कर्म जो वेदानुसार किये जाते हैं। तथा इन्द्रियदमन, कर्म संन्यास, अष्टांग योग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, दृढ़ वैराग्य प्रभृति जिन धर्मोंका बेद और सज्जनों ने वर्णन किये हैं। हे नाथ ! पुराण पुरुष आपके श्रीचरणों में दृढ़ानुराग होना ही सबका सर्वोत्तम फल है।

छूटइ मल कि मलहि के धोये। घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।

महाभारते—आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा।।२६०।।

अर्थ—हे युधिष्ठिर ! जिस आत्मारूप नदी का इन्द्रियदमन ही पुण्यतीर्थ है, सत्य ही जिसका जल है, शील (स्वभाव) ही जिसके किनारे हैं और दया जिसकी तरंगें हैं ऐसी नदी में स्नान करो। क्योंकि बाहरी जल से हृदयस्थ मल धोया नहीं जा सकता भाव यह कि हृदय की शुद्धि के लिये इन्द्रियों का दमन, सत्य का ग्रहण, शील का धारण और दया का पालन आवश्यक है।

सोइ सर्बज्ञ जज्ञ सोइ पंडित। सोइ गुनगृह बिज्ञान अखंडित।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जा के पद सरोज रति होई।।
दोहा— नाथ एक बर मागउँ, राम कृपा करि देहु।
जनम जनम प्रभुपद कमल, कबहुँ घटइ जनि नेहु।।४९।।

सत्योपा०—रामत्वत्तो वरं वव्रे देहि मे कृपया रतिम्।
अङ्घ्र्यब्जयुगुलेऽनित्यामनन्याम्प्रणतार्तिहन्।।२६१।।

अर्थ— हे प्रणतपाल रामचन्द्रजी ! मैं एक वर मांगता हूँ कृपाकर दीजिये कि मेरा प्रेम आपके चरण सरोरुह में कभी किसी जन्म में न घटे।

अस कहि मुनि बसिष्ठ गृह आये। कृपासिंधु के मन अति भाये।।
एवमुक्त्वा वसिष्ठस्तु प्रतस्थे च निजाश्रमम्।।२६२।।

अर्थ—इतना कहकर मुनिनायक वसिष्ठजी अपने आश्रम को सिधारे।

हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिये सेवक सुख दाता।।
पुनि कृपाल पुर बाहर गये। गज रथ तुरग मँगावत भये।।
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिये उचित जिन्ह जिन्ह जेइ चाहे।।

आनन्द रा०—बन्धुभिस्सचिवै रिष्टै र्दूतैः सर्वत्र वेष्टितः।
रामः पुराद् वहिर्गत्वा सर्वभूतानुकम्पकः।।२६३।।
वारणेन्द्राँश्च तुरगान् शिविकाश्च रथाँस्तथा।
नानालंकार संयुक्तान् वरवस्त्रैः समन्वितान्।।२६४।।
ददौ यथेप्सितं द्रव्यं येन यद् संवृतन्तदा।

अर्थ—तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने बन्धुवर्गों, मन्त्रियों और इष्टमित्रों तथा दूतों को साथ लेकर बस्ती से बाहर जाकर हाथी, घोड़े, पालकी, रथ इत्यादि को पट्टांशुकों से अलंकृत कर जिसे जो अभीष्ट था और जिसने जो यांचा उसे वही दिया।

★हरन सकलस्त्रम प्रभु स्त्रम पाई। गये जहाँ सीतल अँवराई।।

आनन्द रा०—कृत्स्नश्रमापनेता च रामो ज्ञानवताँव्वरः।
श्रान्तो भूत्वा गतस्तत्र यत्राम्रवणमुत्तमम्।।२६५।।

★इस चौपाई में कविजी ने बड़ी दूरदर्शिता और चतुराई के साथ दूसरा गूढ़ आशय रक्खा है, कि परमेश्वर ने अवतार धारण करके रावण आदि दुष्ट राक्षसों का वध किया और पुनः शीतल अमराई (शांति पूर्ण देवलोक) अर्थात् परमधाम को प्रस्थान किया ऐसा करनेसे गोस्वामीजी ने गुप्त रीति से अवतार की समाप्ति दर्शाते हुये यह बात सिद्ध किया है कि अवध में श्रीरामचन्द्रजी का निवास अटूट है तथा व्यापकत्व दृष्टिसे कोई भी स्थान उनसे शून्य नहीं है। स्मरण रहे कि शिवजी ने पार्वतीजी के नवें प्रश्न 'प्रजा सहित रघुबंस मनि, किमि गवने निज धाम' का उत्तर भी इसी में बड़ी बुद्धिमानी से दिया है—

यदि पूर्वानुसार बिहार करने को बगीचे में गये होते तो गज, रथ आदि पीछे से क्यों मँगाते और मँगा कर उन्हें वितरण क्यों करते इसका सन्दर्भ कविजी ने पहले ही से सूचित कर दिया है। यथा—

पुनि कृपाल पुर बाहर गये। गज रथ तुरत मँगावत भये।

अर्थ—सबको थकावट दूर करनेवाले, ज्ञानिश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी श्रान्त (थकित) हो जहाँ ठंडी अमराई थी वहाँ गये।

भरत दीन्ह निजबसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई।।

प्रसारिते च वसने भरतेन महात्मना।

तत्रासीनस्य रामस्य सेवाञ्चक्रुश्च बन्धवः।।२६६।।

अर्थ—उस समय भरतलाल जी ने अपना वस्त्र बिछा दिया, उस पर श्रीरामचन्द्रजी बैठ गये और भ्रातृगण सेवा करने लगे।

मारुतसुज तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई।।

हनूमान समान बड़ भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी।।

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार निज मुख गाई।।

अध्यात्म रा०—मारुतिर्व्यजनं चक्रे प्रभोः पार्श्वे व्यवस्थितः।

गिरिजे शृणु सुप्रेम प्रशशंस रघूत्तमः।।२६७।।

यस्य प्रसन्नो भगवान् तत्समः कोस्तिपुण्यवान्।।२६८।।

अर्थ—पवनपुत्र श्रीहनुमानजी श्रीरघुनाथजी के बगल में खड़े होकर बड़ी प्रसन्नता से पंखा करने लगे। तब महादेवजी कहने लगे कि हे पार्वती ! सुनों, श्रीहनुमत्लाल जी के तुल्य भगवान् और कोई दूसरा नहीं है क्योंकि जिसकी प्रीति और सेवा का वर्णन श्रीरामचन्द्र जी ने पुनः पुनः निज वदनारबिन्द से मुक्तकंठ से किया था।

दोहा—तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन।

गावन लागे राम कल, कीरति सदा नवीन।।५०।।

आनन्द रा०—आगतो नारदा वीणां रणयन् पाणिभिर्जवात्।

स्तुवञ्छ्रीरामचन्द्रस्य यशांसि विमलानि सः।।२६९।।

अर्थ—उसी समय ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदजी बीना बजाते हुये और रामचन्द्रजी के निर्मल यश का गान करते हुये आ गये।

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोक बिमोचन।।

नील तामरस स्याम कामअरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि।।

नारद उवाच— श्रीरामं जनसद्धामं मुनिविश्रामं सीतारञ्जनसत्यसनातनराजारामं घनश्यामम्।

अर्थ— हे पुण्डरीकाक्ष ! मेरी ओर निहारिये आप दयादृष्टि से परिपूर्ण हैं और दुःख को दूर करनेवाले हैं। तात्पर्य यह है कि मेरा ही शाप स्वीकार करके आपने इतना श्रम उठाया, तथापि आपने भक्तों पर अपनी दयादृष्टि को कभी कम नहीं किया, सो उसी कृपा कटाक्ष से मेरा अपराध क्षमा करते हुये मेरी ओर देखिये।

जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघगंजन।।

भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक।।

भुजबल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित।।

रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर।।

सीतारंजित विश्वेशं वरपृथ्वीशं सुरलोकेशं ग्रावोद्धारण रावणमर्दन तद्भ्रातृ कृतलंकेशम्।

पृथ्वीजेशं हृतभूभारं नतयोगीन्द्रं जगतीपालं रामन्त्वां प्रणमामिच्छेदितसत्तालम्।।२७०।।

अर्थ— हे रावणमर्दन ! आपने अपने भुजबल से धरणी के उग्र बोझ को हटा दिया तथा खरदूषण और बिराध नाम के राक्षसों को बड़े पाण्डित्य से हता था। और बिभीषण को लंकेश बनाया, हे रघुकुल कुमुदसुधाकर ! आपको प्रणाम है।

सुजस पुरानबिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम।।
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन।।
कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनतजन।।

संसेव्यं मुनिभिर्गेयं कविभिः स्तव्यं हृदिसन्धार्यं नानापंडित–
तर्कपुराणजवाक्यादिकृतसत्काव्यम्।।२७१।।

अर्थ– आपकी सुन्दर कीर्ति पुराणों, बेदों और शास्त्रों में की गई है, उसे देवता ऋषिगण तथा साधुजन श्रवण मनन करते हैं अनेक प्रवीण पंडित आप की साधु काब्य करते हैं।

दोहा– प्रेमसहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदय धरि, गये जहाँ बिधिधाम।।५१।।

एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम्।
प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रपयौ विधिधाम सः।।२७२।।

अर्थ–इस प्रकार प्रेम सहित नारदमुनि भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति कर और प्रभु से आज्ञा पाकर अभिवादनान्त ब्रह्मलोक को गये।

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा।।
रामचरित सत कोटि अपारा। स्रुति सारदा न बरनइ पारा।।

आनन्द रा०–सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम्।
उक्तम्मया सविस्तारं यथामति गिरीन्द्रजे।।२७३।।
मानं रामचरित्रस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
विस्तरेण प्रवक्तुं च क्षमः कोपि न भूतले।।२७४।।

अर्थ– श्रीशंकरजी बोले कि हे बल्लभे ! सुनो महामंगलदायक कर्णरसायन पवित्र रघुपतिचरित यथामति अर्थात् जो कुछ मेरी बुद्धि में आया वह तुम्हें मैंने सुना दिया विस्तार से कोई भी रामचरित का प्रतिपादन नहीं कर सकता सुना जाता है कि रामचरित का प्रमाण सौ करोड़ है उसमें से कुछ ही चरित्र तुम्हें सुना पाया है।

राम अंनत अंनत गुनानी। जनम कर्म अनंत नामानी।।
जलसीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं।।

श्रीभागवते–यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु वालबुद्धिः।
रजांसिभूमेर्गणयेत् कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नाः।।२७५।।

अर्थ–जो कोई अनन्त भगवान् के गुणों को गिनना चाहता है वह मूर्ख है बालबुद्धि है भले ही कोई पृथिवी के परमाणुओं को गिन ले परञ्च अचिन्त्य अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवान् के गुणों की संख्या योगी पुरुष भी कथंचिदपि नहीं कर सकता।

बिमल कथा हरिपद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी।।
उमा कहेउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहिं सुनाई।।
कछुक रामगुन कहेउँ बखानी। अब का कहउँ सो कहहु भवानी।।

सत्योपा०–कथेयङ्कथिता तुभ्यं हरिभक्तिप्रदायिनी।
नाम्ना भुशुण्डिकाकश्च यदवोचत्खगेश्वरम्।।२७६।।
चरितं रघुनाथस्य व्याहृत्य कथयामि किम्।

अर्थ– हे पार्वती ! यह पवित्र कथा जो तुम्हें मैंने सुनाई है वह भगवान् बैकुण्ठनाथ के लोक को देने वाली है। जो कथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जी को सुनाई थी वही कथा मैंने सुनाई बतलाओ अब क्या कहूँ।

सुनि सुभकथा उमा हरषानी। बोली अतिबिनीत मृदुबानी।।

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सनेउँ रामगुन भव भय हारी।।

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि महेश्वर।।२७७।।

अर्थ– परमरम्य कथा को सुनकर पार्वतीजी प्रसन्न हुई और बहुत ही नम्र मधुर वचन बोलीं। हे भगवन् प्राणनाथ ! आप की कृपा से भवभयहारी हरिचरित सुनने का अवसर मुझे भी मिला इसके लिए मैं अपने को धन्या मानती हूँ।

दोहा– तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ रामप्रताप प्रभु, चिदानंद संदोह।।
नाथतवानन ससि स्त्रवत, कथा सुधा रघुबीर।
स्त्रवनपुटन्हिमनपानकरि, नहिं अघात मतिधीर।।५२।।

श्रीभागवते–निगमकल्पतरोर्गलितम्फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहोरसिका भुवि भावुकाः।।२७८।।

अर्थ–हे रसज्ञ भगवद्भक्तो ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पतरु का फल है और परम भागवत श्रीशुकाचार्यजी के मुखारविन्द से भूमिमंडल पर टपक कर अमृतरस से अन्वित है। इसे आप लोग बार–बार मुक्ति पर्यन्त पान करो। भाव यह कि हे श्रीभगवत प्रेमी सज्जनो ! जिस प्रकार तोता के मुँह लगे फल को अतिस्वादु जान कर लोग बड़े चाव से खाते हैं उसी प्रकार श्रीशुकदेवजी जो कि साक्षात् व्यासनन्दन हैं उनके वदनारविन्द से वर्णित वेदमयी इस भगवत्सम्बन्धिनी कथा को मधुर जान कर बारम्बार सुनें।

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।।
★जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ।।
भवसागर चह चार जो पावा। रामकथा ता कहँ दृढ नावा।।
विषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। स्त्रवनसुखद अरु मन अभिमाना।।
स्त्रनवंत अस को जग माहीं।जाहि न रघुपतिचरित सुहाहीं।।
ते जड जीव निजात्मक घाती। जिन्हहिं न रघुपति कथा सुहाती।।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान् विरज्येत बिनापशुघ्नात्।।२७९।।

अर्थ–जिन सच्चिदानन्द भगवान् का नाम उत्तमश्लोक है उनके गुणानुवाद को मुक्त, मुमुक्ष और विषयी यह तीनों प्रकार के जीव गाते हैं। अर्थात् जीवन्मुक्त महामुनि श्रीशुकदेवजी आदि निरन्तर हरिगुण गाते हैं और जो मुक्ति चाहनेवाले हैं वे रामकथा को भवभैषज्य जानकर निरन्तर पान करते हैं और जो विषयासक्त हैं वे हरिकथा को कर्णरसायन वा मनमोहनी समझकर सुनते हैं। उपर्युक्त त्रिबिध पुरुष हरिकथा सुधासिंधु का सादर पान करते हैं। यह हरिकथा केवल पशुघाती और आत्मघाती को छोड़कर सबको प्रिय लगती है।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा।।
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई।।

अर्थ–पार्वतीजी बोलीं हे प्रभो ! जो रामचरितमानस आपने वर्णन किया उसे सुनकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ, परन्तु आपने जो कहा कि यह मनभावनी कथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़ से कही सो–

दोहा–बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ, रामचरित अतिनेह।
बायसतन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह।।५३।।

अर्थ– मुझे सन्देह हो रहा है कि काकशरीर में रामभक्ति व वैराग्य दृढ़ ज्ञान विज्ञान आदि कैसे हुए?

★संसार में देह धारण किये रहते हैं परन्तु कोई नाता नहीं रखते, उन्हें हर्ष, शोक, सुख, दुख, हानि,लाभ, मान, अपमान, शत्रु, मित्र, निन्दा, स्तुति आदि देहा गेहाभिमान नहीं है।

नरसहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख बिरागरत होई।।
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई।।
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।।
तिन्ह सहस्त्र महँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी।।
धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।।
सब तें सो दुरलभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया।।

श्रीमन्महारा०–मुग्धे शृणुष्व मनुजोपि सहस्त्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशीलः।
तेष्वेव कोटिषु भवद्विषये विरक्तः सज्ज्ञानकोभवति कोटिविरक्तमध्ये।।२८०।।
ज्ञानीषु कोटिषु नृजीवनकोऽपि मुक्तः कश्चित् सहस्त्रनरजीवनमुक्तमध्ये।
विज्ञानरूपविमलोप्यथ ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत्खलु रामभक्तः।।२८१।।

अर्थ–हे पार्वती ! सुनो सहस्त्रों मनुष्यों में कोई बिरला धर्मब्रतधारी और सबमें समान स्वभाव से बर्ताव रखने वाला होता है और करोड़ों धर्मशीलों में विषय विमुख अर्थात् वासनारहित विरक्त कहीं कोई होता है। करोड़ों विरक्तों में कोई एक पूर्ण ज्ञानी होता है, करोड़ों ज्ञानियों में जीवन्मुक्त कोई एक होता है, सहस्त्रजीवन्मुक्त मनुष्यों के बीच में कोई विरला ही विज्ञानरूप विमल और ब्रह्मलीन होता है उन करोड़ों धर्मात्मा ज्ञानी विरक्त, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन विज्ञानी पुरुषों के मध्य में कोई विरला संत श्रीरामजी का भक्त हेता है इस पद्य और उपर्युक्त चौपाइयों का संक्षिप्त भाव यह है कि श्रीरामभक्ति जीवों को जन्मजन्मान्तर के पुण्य से उपलब्ध होती है।

सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई।।
दोहा– रामपरायन ज्ञानरत, गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पायेउ कागसरीर।।५४।।
यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा।।
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अतिकौतुक भारी।।

सत्योपा०–तां दुर्लभां भक्तिमसौ हरेः प्रभो लेभे कथं वायसविग्रहं पुनः।
हरेश्चरित्रं च ततः कथं श्रुतं त्वयाद्भुतं कारणमत्र कथ्यताम्।।२८२।।

अर्थ–हे नाथ ! ऐसी दुर्लभ हरिभक्ति काक को कैसे मिली और हरिभक्त होकर कौए का शरीर कैसे पाया किंच काक होकर फिर किस प्रकार उनको रामचरित प्राप्त हुआ और आपने उनके कैसे रामायण सुनी। हे महाराज ! इस विचित्र शिक्षा सुननेको मुझे परम कुतूहल हो रहा है।

गरुड महाज्ञानी गुनरासी। हरिसेवक अतिनिकट निवासी।।
तेहि केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनिनिकर बिहाई।।
कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा।।

ज्ञानीगुणाकरोदासो हरिसन्निधिवासकृत्।
गरुडः श्रुतवान् काकात् कथं रामकथां शुभाम्।।२८३।।

अर्थ–ज्ञानी गुणखानि हरिदास और नारायण जी के समीप रहने वाले गरुड़जी ने क्यों काक से सुन्दर रामकथा सुनी।

गौरिगिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई।।
धन्य सती पावनि मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी।।
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल सोक भ्रम नासा।।
उपजइ रामचरन बिस्वासा। भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा।।

दोहा—ऐसइ प्रस्न बिहंगपति, कीन्ह काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ, सुनहु उमा मन लाइ।।५५।।

श्रुत्वा नम्रां शिवावाणीं शिवः प्राहातिहर्षितः।
धन्या त्वमसि शर्वाणि रामपादानुरागिणी।।२८४।।
यच्छ्रुत्वा शोकमोहादिनाशो भवति तत्क्षणम्।
तच्छृणु त्वं रघुश्रेष्ठचरित्रं परमं शुभम्।।२८५।।

अर्थ—पार्वतीजी की मृदुल वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो श्रीमहादेवजी बोले कि हे प्रिये ! तुम धन्य हो जो श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल में तुम्हें दृढ़ प्रेम है जिसके सुनने से तत्काल शोक मोह आदि का नाश हो जाता है वह श्रीसाकेतबिहारी जी का पवित्र चरित्र है उसे सावधानी से सुनो ! इसी प्रकार का प्रश्न काक जी के प्रति गरुड़ ने किया था वही सब मैं कहता हूँ।

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि।।
प्रथम दच्छगृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा।।
दच्छजज्ञ जब भा अपमाना। तुम्ह अतिक्रोध तजे तब प्राना।।
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा।।
तब अतिसोच भयउ मन मोरे। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरे।।
सुंदर बन गिरि सरित तडागा। कौतुक देखत फिरेउँ बिरागा।।

भुशुण्डि रा०— दाक्षायणी यदा त्वञ्च सती नाम्ना बरानने।
अनाहूता पितुर्गेहं गता यज्ञमहोत्सवे।।२८६।।
तत्रापवादमाश्रुत्यासूनहासीः क्रुधा तव।
वियोगे निर्विषण्णोद्रिगुहागहननिम्नगाः।।२८७।।
पर्य्यटन् कौतुकं विश्वक् दृष्टवान् गिरिनन्दिनी।

अर्थ—हे सुमुखि ! दक्ष के यज्ञ में जब बिना बुलाये तुमने जाकर पितृभवन में मेरा अपवाद देखा और सुना तो गुस्से में आकर अपने प्राणों को त्याग दिया उसे देख मेरे गणों ने यज्ञ का विध्वंस कर डाला। यह वार्ता तुम जानती ही हो। उस समय तुम्हारे बिरह में हे गिरि सुते ! अति दुःख के कारण उत्तम उत्तम वन, पहाड़,नदी आदि स्थानों में विचरता हुआ मैं कौतुक आश्चर्यमय बातें देखता था।

★गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी।।
तासु कनकमय सिखर सुहाये। चारि चारु मोरे मन भाये।।
तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला।।
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनिसोपान देखि मन मोहा।।
दोहा—सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कलरब हंसगन, गुंजत मंजुल भृंग।।५६।।

मेरोरुत्तरदिग्भागे नीलोनाम सुपर्वतः।
तस्य हेममये कूटे चतुः संख्ये मनोहराः।।२८८।।
प्लक्षाम्राश्वत्थन्यग्रोधाः सन्ति तत्र च सुंदरम्।
सरोऽस्ति बहुराजीवं गुञ्जद्भ्रमरसंयुतम्।।२८९।।

अर्थ—सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में बहुत ही दूर पर एक अतिसुन्दर नील नाम का पर्वत है उसके सुहावने सुवर्णमय चार उत्तम शिखर हैं तो मेरे मन को अच्छे लगे। उन चारों शिखरों पर एक–एक बड़ा वृक्ष

★सुमेरु हिमालय पर्वत का नाम है जिसके उत्तर भाग में तिब्बत प्रदेश है। इसके उत्तरी भाग में नीलगिरि पर्वत है जिसको वर्तमान में समय कोई क्वीनलेन पहाड़ कहते हैं।

लगा है। अर्थात् वट,पीपर,पाकरि और आमवृक्ष हैं। पर्वत के ऊपर एक सुन्दर तालाब है, जिसकी सीढ़ियों में रत्न जड़े हैं, जिन्हें देखते ही मन लुभाय जाता है। उसका पानी ठण्डा निर्मल और मीठा है, जिसमें अनेक भाँति के कमल फूले रहते हैं, और उन पर बैठ कर भौंरे मधुरध्वनि से गुञ्जार रहे थे।

तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कलपांत न होई।।
मायाकृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका।।
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरिनिकट कबहुँ नहिं जाहीं।।

प्रलयेऽपि न यस्यान्तो निवसत्यनिशं खगः।
कामक्रोधादिषड्वर्गास्तत्र यान्ति न कर्हिचित्।।२९०।।

अर्थ—महाप्रलय में भी जिसका नाश नहीं है उस सुहावने पर्वत पर उसी पक्षीका निवास है। उस स्थान की महत्ता कहाँ तक कही जा सकती है वह ऐसा भावुक है कि जहाँ कामादि षड्वर्गों की गम नहीं है। भाव यह कि कामादि सर्वत्र संसार में फैले हैं, लेकिन उस पर्वत के समीप कभी नहीं जाते।

तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा।।
पीपर तरु तर ध्यान जो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई।।
आमछाँह कर मानस पूजा। तजि हरिभजन काज नहिं दूजा।।
बट तर कह हरिकथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।।

तत्र स्थितश्शकुन्तश्च हरिभक्तिं दधाति सः।
अश्वत्थे ध्यायति ब्रह्म प्लक्षे जपति तन्मनून्।।२९१।।
रसाले मानसीम्पूजां भगवद्ध्यानतत्परः।
न्यग्रोधे श्रावयत्यब्जनाभस्य चरितं शुभम्।।२९२।।

अर्थ—हे पार्वती ! वहाँ रहकर जिस प्रकार काकभुशुण्डि हरि का भजन किया करते हैं उसे प्रेमपूर्वक सुनो, वे पीपर के नीचे ध्यान लगाते हैं और जप तथा यज्ञ पाकरवृक्ष के नीचे किया करते हैं। आम के नीचे मानस पूजा करते हैं, इस प्रकार उन्हें हरिभजन के सिवाय दूसरा काम नहीं, बट के नीचे रामकथा का वर्णन करते हैं वहाँ पर बहुत से पक्षी आकर सुनते हैं।

रामचरित बिचित्र बिधाना। प्रेम सहित कर सादर गाना।।
सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जो तेहि ताला।।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेखा।।

★दोहा— तब कछु काल मरालतनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास।।५७।।

तत्रत्येजो विपुलं समीक्ष्य जातः प्रमोदो निरगाच्च दुःखम्।
त्वद् विप्रलब्धोत्थमतीव तत्र, धृत्वा वपुर्हंसमहं न्यवात्सम्।।२९३।।
श्रीराघवेन्द्रस्य चरित्रमंहोहरं निशम्याथ गिरिं समागम्।।२९४।।

अर्थ—श्रीशंकरजी कहते हैं कि हे प्रिये ! उस स्थान का प्रकट प्रभाव कैसे कहा जा सकता है जहाँ अविद्या एक योजन तक जाती ही नहीं, वहाँ जाने से मुझे इतना आनन्द हुआ कि तुम्हारे वियोग का दुःख दूर हो गया और मैं कुछ काल तक हंसरूप धारण कर वहीं रहने लगा, फिर आदरपूर्वक रामचरित को सुन कर कैलास को लौट आया।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा।।
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खगकुल केतू।।

★शंकरजी ने हंस का शरीर इसलिए धारण किया था कि पक्षी समाज में देवमूर्ति धारण कर जाना समाज के प्रतिकूल होगा और यदि काकभुशुण्डि मुझे पहिचान लेगा तो मेरे सामने कथा कहिने में कदाचित् उसे संकोच होगा।

इतिहासं प्रिये तुभ्यमाचक्षे काकसन्निधिम्।
अब्राजीद्धेतुना येन खगराजो महामतिः।।२९५।।

अर्थ—हे पार्वती ! जब मैं काकभुशुण्डिजी के पास गया था उस समय की सब कथा मैंने कह सुनाई। अब वह इतिहास सुनो कि जिस कारण से सब पक्षियों का राजा गरुड़ काकभुशुण्डि के पास गया था।

जब रघुनाथ कीन्ह रनक्रीड़। समुझत चरित होत मोहि ब्रीडा।।
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारदमुनि गरुड पठायो।।
बंधन काटि यगउ उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा।।
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँति। करत बिचार उरगआराती।।
ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा।।
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।।
दोहा—भवबंधन तें छूटहिं, नर जप जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नागपास सोइ राम।।५८।।

यदा युद्धलीलाकृता राघवेण सितो मेघनादेन रामोऽहि पाशैः।
तदा प्रेरितो ब्रह्मपुत्रेण वीशो विवृश्च्यावरोधम्भ्रमच्चित्तकोऽभूत्।।२९६।।
नरो यस्य नामस्मरन् याति मुक्तिं भवाद्धस्वरात्रिञ्चरस्तं बबन्ध।
यथा सत्प्रभावः श्रुतो व्यापकत्वं न दृष्टं मया मायिनस्तस्य किञ्चित्।।२९७।।

अर्थ—जब श्रीरामचन्द्रजी ने युद्धलीला की थी उस समय के चरित्रों का विचार करने से मेरे हृदय में संकोच होता है कि उन्होंने अपने को इन्द्रजीत द्वारा नागपाश में बँधवा लिया। उस समय नारदमुनि ने गरुड़ को रणभूमि में भेजा। तब सर्पशत्रु गरुड़जी नागपाश को काट कर चले गये, परन्तु उनके मनमें बड़ा संशय उठा। संशय इस भाँति का हुआ कि जिनके नामस्मरण मात्र से मनुष्य संसार—सागर से मुक्त हो जाता है उन्हें एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश से बाँध लिया। मैंने सुना था कि घटघटवासी परमात्मा, माया मोह से परे अवतरे हैं लेकिन इस बन्धन को देखते यह भासता कि उरुक्रम भगवान् का अवतार नहीं हैं।

नाना भाँति मनहिं समुझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा।।
खेदखिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहि नाई।।
ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निजमन माहीं।।
सुनि नारदहिं लागि अतिदाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया।।

नानाप्रकारेण मनः प्रबोधयन् कुतर्कनिष्ठं बुबुधे न सत्वरम्।
सविक्लवाक्रान्तमनास्सुरर्षये निवेदयामास कुतर्कमात्मजम्।।२९८।।

अर्थ—कई प्रकार से मनको समझाया, परन्तु मन तो कुतर्कनिष्ठ था वह कैसे समझे क्योंकि शुद्धविचार स्वच्छ हृदय में होता है। शीघ्र न समझ सके इस लिये चञ्चलचित्त हो नारदमुनि के पास गये और अपने मनका संदेह उनसे कह सुनाया। यह सुनते ही नारदजी का दया आ गई और कहा कि हे गरुड़जी! श्रीरामचन्द्रजी की माया बड़ी बलवान् है।

जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई।।

मार्कण्डेय पु०—ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महानाय प्रयच्छति।।२९९।।

अर्थ—वह ज्ञानवानों के भी चित्त हो हर लेती है और बलपूर्वक उन्हें मोह में फँसा लेती है।

जेहि बहु बार नचाबा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही।।
महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे।।
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जो देहिं निदेसा।।

दोहा—अस कहि चले देवरिषि, करत रामगुन गान।
हरिमाया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान।।५९।।

हृदयान्तरालेऽजनि गाढसम्भ्रमो न नङ्क्ष्यति क्षिप्रमुदाहरान् मम।
गत्वा सकाशं भवता प्रजासृजो वृत्तन्निवेद्याथ तदुक्तमादरात्।।३००।।
मान्यं खगेन्द्रेत्थमुदीर्य नारदो जगाम मायाबलमुच्चरन् स्मरन्।

अर्थ—हे खगराज ! तुम्हारे हृदय में भारी भ्रम उत्पन्न हुआ है वह मेरे कहने से शीघ्र नाश न होगा। हे गरुड़ ! आप ब्रह्मदेवजी के पास जाइये और जो कुछ आज्ञा दें वही कीजिये। इतना कह कर नारदमुनि श्रीरामचन्द्रजी के गुणानुवाद गाते हुये चले और माया की बलवत्ता को विचारते जाते थे।

तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ।।
सुनि बिरंचि रामहिं सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम उर छावा।।
मन महँ करइ बिचार बिधाता। मायाबस कबि कोबिद ग्याता।।
हरिमाया कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहि मोहि नचावा।।
अग जग मय सब मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा।।
★तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस रामप्रभुताई।।
बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू।।
तहँ होइहि तब संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधिबानी।।

उपेत्य सर्वं निजगाध बेधसम् सोऽचिन्तयद्राममहित्वमद्भुतम्।
उपेहि गङ्गाधरमाशुगत्वर प्रजापतिस्त्वं श्वसयन्नुवाच तम्।।३०१।।

अर्थ—नारदजी के भेजे हुए गरुड़जी ब्रह्मदेव के पास गये और उनसे अपना सन्देह कह सुनाया। यह सुनते ही ब्रह्माजी ने श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया और उनकी महिमा को स्मरण कर प्रेम में मग्न हो गए। परमात्मा की माया का भारी प्रताप है जिसने मुझे अनेक बार चक्कर में डाला था। हे तार्क्ष्य ! सर्वज्ञ शिवजी के पास जाइये क्योंकि रामचरितमानस के आचार्य शिवजी हैं वहाँ सम्पूर्ण सन्देह दूर होगा।

दोहा—परमातुर बिहंगपति, आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेरगृह, रहिहु उमा कैलास।।६०।।

विह्वलो वैनतेयस्त्वाजगाम मम सन्निधिम्।
ब्रजतोयक्षराड्गेहं कैलासे च त्वमावसः।।३०२।।

अर्थ—हे पार्वती ! तब गरुड़ बहुत ही जल्दी मेरे पास आये, मैं उस समय कुबेर के घर जा रहा था और तुम कैलास में रही थी।

तेहि मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा।।
सुनि ता करि बिनीत मृदुबानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी।।
मिलेहु मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावउँ तोही।।
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिय सतसंगा।।

★इसमें कोई–कोई यह शंका कर बैठते हैं कि नारदमुनि के कथनानुसार गरुड़जी ब्रह्माजी के पास गये, इस अभिप्राय से कि ब्रह्माजी के वचनानुसार कार्यवाही करने से मोह दूर होगा और ब्रह्माजी ने अपना बोझ शंकरजी के ऊपर फेंक दिया कि भगवान् शंकर स्वामी शरण जाने से सब संशय दूर होंगे सो शंकरजी ने उपदेश करके गरुड़ का मोह क्यों नहीं मिटाया। समाधान यह है कि शंकरजी रामचरित मानस के आचार्य हैं। उन्हीं ने काकभुशुण्डिजी को राम कथा सुनाई थी। जैसा बालकाण्ड में लिख आये हैं कि ''सो शिवकाकभुशुण्डिहिं दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा।।'' इससे शिवजी ने अपने शिष्य परमभक्त काकभुशुण्डि जी के द्वारा मोह दूर कराया सो मानो शिवजी ने ही दूर किया और ब्रह्माजी के बचनों को सत्य किया ''तहँ होइहि तब संसय हानी'' इसके सिवाय काक द्वारा मोह हटाने में जो विशेषता है सो इस कथन से स्पष्ट होता है कि 'खग जानै खग ही की भाषा।''

प्रणम्य तेनाभिहितः स्वसंशयो गिराम्मनोज्ञार्थ महन्निशम्य सत्।

मध्ये पथम्प्राप्तमिमं प्रशासितुं न शक्नुयामुत्तरमाशुदत्तवान्।।३०३।।

अर्थ—हे गिरीन्द्रजे ! गरुड़ पहुँचते ही मेरे चरणों में शीस नवाया और फिर अपनी शंका कह सुनाई, तब मैंने बचनों का भाव गूढ़ समझ कर उन्हें शीघ्र ही उत्तर दिया कि तुम मुझे मध्यमार्ग से मिले हो, किस भाँति श्रीरामचरितमानस के विमल तत्व का संक्षेप से उपदेश कर सकता हूँ अर्थात् दीर्घकाल तक जब उपदेश दिया जाय तो सफलता प्राप्त हो सकेगी।

सुनिय तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई।।

जेहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।

आदौ मध्येऽवसाने च हरिस्सर्वत्र गीयते।।३०४।।

अर्थ—वेद, रामायण, पुराण और महाभारत इन सबके आदि मध्य और अन्त में परमेश्वर ही के गुणानुवाद गाये गये हैं और हे खगेश ! जिस कथा के आरम्भ, मध्य तथा अंतमें केवल प्रभावशाली रामरूप भगवान् ही का निरूपण होवे उस सत्संगति में आप प्राप्त काम हो सकेंगे।

नित हरिकथा होति जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई।।

जाइहि सुनत सकल संदेहा। रामचरन होइहि अतिनेहा।।

नित्यं रामकथा यत्र प्रेषयामि प्रवर्तते।

श्रुतिमान्या च श्रुत्वैव निश्शङ्कस्त्वम्भविष्यसि।।२०५।।

अर्थ—हे भाई ! जिस स्थान में प्रतिदिन रामकथा होती है वहीं मैं तुम्हें भेजता हूँ। तुम जाकर उसे सुनो, सुनते ही सब संदेह दूर होंगे और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में अधिक प्रेम उत्पन्न होगा।

दोहा— बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।

मोह गये बिनु रामपद, होइ न दृढ अनुराग।।६१।।

दृढानुरागौ बुधवन्दनीये हरौ च सर्वात्मनि वैनतेय।

न जायते जातुबिना सुसंगमान् मोहश्च शोको भवतो ह्यजस्त्रम्।।३०६।।

अर्थ—हे विनतासुत ! सज्जनों की संगति के बिना सर्वसाक्षी, सर्वान्तर्यामी, परमात्मा नारायण में निश्चल प्रेम नहीं होता और शोक मोह नित्य बना रहता है।

मिलहिं न रघुपति बिनु—अनुरागा। किये जोग जप ज्ञान बिरागा।।

श्रीभागवते—प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्।।३०७।।

अर्थ—योग, यज्ञ,जप के करने पर भी यदि प्रेम न हो तो भगवत् प्राप्ति नहीं हो सकती।

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह कागभुसुंडि सुसीला।।

रामभगति पथ परम प्रबीना। ज्ञानी गुनगृह बहुकालीना।।

राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंग बर।।

जाइ सुनहु तहँ हरिगुन भूरी। होइहि मोहजनित दुख दूरी।।

भुशुंडि रा०—उत्तराशासु शैले च नीले वायस उत्तमः।

नाम्ना भुशुंडिराख्यातो रामभक्तो वसत्यहो।।३०८।।

कथां रामस्य दिव्यां च कीर्तयत्यनिशं सखे।

श्रोतारोऽनेकविहगास्तत्रेत्वा शृणु सद्गुणान्।।३०९।।

अर्थ— उत्तर दिशा में एक सुन्दर नील पर्वत है वहाँ पर वायसतिलक काकभुशुण्डिजी रहते हैं। हे सखे! वे सदा रामकथा कहा करते हैं, जिसे नानाप्रकार के श्रेष्ठ पक्षी आदरपूर्वक सुना करते हैं। वहाँ जाकर

श्रीरामचन्द्रजी के चरित्रों को सुनो, मोह से उत्पन्न हुआ तुम्हारा दुःख दूर हो जावेगा।

मैं जब तेहि सब कथा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरनाई।।
ता तें उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरम मैं पावा।।

मदादेशं समादाय गिरिजे गतवान् हि सः।

अर्थ—हे शैलसुते ! मेरी बात को मानकर गरुड़जी प्रणाम करके चलते भये हे पार्वती ! मैं श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से सब प्रसंग समझ गया था तभी तो मैंने समझाया नहीं, गरुड़ ने कभी कुछ अभिमान किया होगा उसी को दयासागर परमेश्वर छुड़ाना चाहते थे कि जब मैं ध्यान धरके देखा कि इन्हें न तो नारद और न ब्रह्मदेव ने समझाया तब तो मैंने भी समझाना उचित न समझा। इस बिचार से कि यह पक्षिराज अहंकारी हो रहे हैं सो यह जब कौए से रामयश सुन उन्हें परमभक्त जान उपदेश लेंगे तब ही इसका मान नष्ट होगा।

कछु तेहिं तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खग ही कै भाखा।।
प्रभुमाया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी।।

अर्थ—कुछ और भी कारण था जिससे मैंने गरुड़ को नहीं रखा वह यह कि पक्षी ही पक्षी की भाषा ठीक–ठीक समझते हैं। हे पार्वती ! भगवान् की माया बड़ी बलवती है ऐसा कौन ज्ञानवान् है जिसे वह अपने वश नहीं कर लेती।

दोहा— ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवन पति कर जान।
ताहि मोह माया नर, पावँर करहिं गुमान।।

वैकुण्ठाधिपतेः पत्रम्भक्तप्रवरमुत्तमे।
मोहयामास सा माया किमन्यकथया प्रिये।।३१०।।

अर्थ— भक्तों में श्रेष्ठ, त्रिलोकीनाथ के वाहन गरुड़जी को भी बलवती माया ने मोहित कर डाला, अपर प्राणियों की कौन कहे।

दोहा— सिव बिरंचि कहँ मोहइ, को हइ बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान्।। ६२।।

अर्थ—याज्ञवल्क्यमुनि बोले कि हे भरद्वाज ! मैं कहाँ तक कहूँ, महादेवजी तथा ब्रह्मदेव के मनको भी माया ने मोह लिया है। तो फिर दूसरा बेचारा किस लेखे में है इस बात को विचारकर मुनि लोग माया के स्वामी गरुड़जीगामी का भजन किया करते हैं।

गयउ गरुड जहँ बसइ भुसुंडी। मति अकुंठ हरिभगति अखंडी।।
देखि सयल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ।।
करि तडाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना।।
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आये। सुनइ राम के चरित सुहाये।।
कथाअरंभ करइ सोइ चाहा। तेही समय गयउ खग नाहा।।

काकाश्रमं वीक्ष्य भृशम्प्रसन्नस्वान्तो गरुत्मान् वटमाजगाम्।
यत्रोपविष्टश्च कृतावगाहः कथामुपाख्यातुमनस्क आसीत्।।३११।।

अर्थ—गरुड़जी वहाँ जाकर काकजी के शुभाश्रम को देखते ही प्रसन्नमन हो गये, शोक, मोह जाता रहा। और जहाँ स्नानादि नित्य नियम से छुटकारा पाकर बट वृक्ष के नीचे बूढ़े–बूढ़े विहंगमों को रामचरित्र सुनाने की इच्छा से काकराजजी बिराजते थे वहाँ जा पहुँचे।

आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा।।
अतिआदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा।।
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा।।

दोहा—नाथ कृतारथ भयउँ मैं, तब दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करउँ अब, प्रभु आयसु केहि काज।।

आयन्तमालोक्य खगेन्द्रमारात्समं सदस्यैस्स तु काकराजः।
आभ्युत्थ्यमस्याकुरुतानुयुज्य स्वागत्यमुत्सृज्य शुभासनं च।।३१२।।
उवाच नाथ त्वयि वीक्षितेहं दिष्टं स्वकीयं सफलं खगेश।
मन्ये समाज्ञा क्रियतान्त्वयाशु प्रख्यायतामागतिहेतुरत्र।।३१३।।

अर्थ— काकराजजी ने सम्पूर्ण पक्षियों के राजा गरुड़जी को आते देख बड़े हर्ष से समाज के सहित उठ कर सम्मान किया और क्षेम कुशल पूछ उत्तम आसन बैठने को दिया। पश्चात् मधुर बचन बोले कि हे प्रभो आपके दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ, आज्ञा दीजिये अपने आगमन का कारण बतलाइये मैं उसे पालन करूँगा।

दोहा—सदा कृतारथ रूप तुम्ह, कह मृदुबचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर, निज मुख कीन्हि महेस।।६३।।
सदा कृतार्थरूपस्त्वं यः स्तुतश्शंकरेण ह।।३१४।।

अर्थ— गरुड़जी नम्र वाणी से कहने लगे आप तो सदा कृतकृत्य हैं जिनकी बड़ाई शिवजी ने अपने श्रीमुख से सादर की।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तब पायउँ।।
देखि परम पावन तब आस्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम।।
अब श्रीराम कथा अतिपावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि।।
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही।।

मेध्याश्रमे दृष्टिपथंगते ते पूर्णोमदीयागतिहेतुराढ्य।
आख्याहि रामायणमादितस्त्वं श्रुत्वा यदाप्नोति चतुष्पदार्थम्।।३१५।।

अर्थ— हे रामभक्त ! परमपावन, शोक नशावन आपके आश्रम को देखकर मेरे आगमन का कारण नितान्त पूर्ण हुआ अर्थात् शोक मोहादि द्वन्द्व जाते रहे अब आदि से आप मुझे रामायण सुनाइये, जिसे सुनकर मनुष्यों को चतुष्पदार्थ सुलभ हो जाता है।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सप्रेम सुखद सुपुनीता।।
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहइ रघुपति गुनगाहा।।

प्रेमान्वितां व्याहृतिञ्च श्रुत्वा तार्क्ष्यस्य वायसः।
वर्णयामास सुभगे श्रीरामचरितं क्रमात्।।३१६।।

अर्थ—भुशुण्डिजी सरल, सीधी और प्रेमभरी गरुड़जी की सुन्दर वाणी को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी के मनोहर चरित्रों का क्रमशः उपाख्यान करने लगे।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी।।
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा।।

(ऋग्वेदे ३—३—२२)महाऋषिर्देवजोदेवजूतो अस्तभ्रात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः विश्वामित्रो यदवहत् सुदास मयि प्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः।।३१७।।

(अथर्वणि ४—६—२१) ब्राह्मणो यज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ससोमं प्रथमः पपौ स चकार रसं विषम्।।३१८।।

अर्थ—महादेवजी बोले कि हे पार्वती ! पहले अति अनुराग से भुशुण्डिजी ने रामचरित सर का निरुपण किया, फिर नारदमुनि का प्रगाढ़ मोह कह रावण का जन्म कह सुनाया।

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसुचरित कहेसि मन लाई।।

दोहा—बालचरित कहि बिबिध बिधि, मन महँ पर उछाह।
रिषिआगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह।।६४।।

वाल्मीकीये–जन्म रामस्य सुमहद् वीर्यं सर्वानुकूलताम्।
लोकस्य प्रियतां क्षान्ति सौम्यतां सत्यशीलताम्।।३१९।।
नानाचित्राः कथाश्चान्या विश्वमित्रसहायने।
जनक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम्।।३२०।।

अर्थ–तदनन्तर रघुनाथजी के अवतार की कथा वर्णन करके उनके बालचरित्र प्रेमसे कहने लगे (बालरूप के काकजी उपासक हैं। ''बालकरूप रामकर ध्याना। कहेउ करन मोहिं कृपानिधाना।।'' इस चौपाई से ध्वनित होता है कि सद्गुरुपदेश द्वारा उपदिष्ट होने से बालरूप इन्हें अत्यन्ताभीष्ट था यथा ''इष्टदेव मम बालक रामा'') अतएव मनमें उत्साह लाकर बाललीला बहुप्रकार से वर्णन किया। किंच स्वामी की लोकप्रियता, साधुता, सहिष्णुता, सत्यशीलता, सर्वानुकूलता का भी साथ ही साथ दिग्दर्शन कर दिया है। इसके बाद विश्वामित्रजी का आगमन और धनुर्भञ्जन, श्रीमैथिलीजीके साथ विवाह वर्णन किया।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा।।
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा।।

तथाभिषेकं रामस्य कैकय्या दुष्ट भावताम्।
विघातञ्चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम्।।३२१।।
प्रकृतानां विषादं च रामलक्ष्मणयो र्वचः।

अर्थ–फिर श्रीरामचन्द्रजी के युवराज बनाने का बिचार अथ च राजा दशरथजी के बचनों को स्वीकार कर लेने से राजरस का भंग होना। नगरवासियों का विछोह जन्य दुःख वर्णन करना राम लक्ष्मण की परस्पर बातचीत।

बिपिनगवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा।।
बाल्मीकि प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बस भगवाना।।
सचिवागवँन नगर नृप मरना। भरतागवँन प्रेम बहु बरना।।
करि नृपक्रिया संग पुरबासी। भरत गये जहँ प्रभु सुखरासी।।

निपादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा।
गंगायाश्चापि सन्तारं भरद्वाजस्य दर्शनम्।।३२२।।
भरद्वाजाम्भ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम्।
वास्तुकर्म निवेशं च भरतागमनं तथा।।३२३।।
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम्।।३२४।।

अर्थ– बनगमन, निषाद की प्रीति और गंगा जी के पार उतर प्रयाग का रहना (वर्णन किया) वाल्मीकमुनि से श्रीरामचन्द्रजी की भेंट वर्णन की तथा चित्रकूट में जा वसना कहा, सुमन्त का वन से लौट कर नगर में आना, दशरथजी का मरना, भरतका ननिहाल से लौटकर अत्यन्त प्रेमदशा वर्णन किया। दशरथजी की क्रिया करके भरत जी नगरवासियों को साथ ले सुखनिधान भगवान् के पास गये।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाये। लेइ पादुका अबधपुर आये।।
भरतरहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी।।
दोहा– कहि बिराध बध जेहि बिधि, देह तजी सर भंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्ति सतसंग।।६५।।

पादुकाग्र्याभिषेकं च नन्दिग्रामनिवासनम्।
दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधन्तथा।।३२५।।
दर्शनं शरभंगस्य सुतीक्षणेनाभिसमागमम्।
अगस्तस्य मुनिर्योगः परस्परमघान्तकृतम्।।३२६।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के समझाने पर चरणपादुका लेकर भरतजी श्रीअवध को लौट आये (इसका) दिग्दर्शन कराके साधु वेष से नन्दिग्राम में रहना और इन्द्रपुत्र जयन्त कर करतूत तथा श्रीरामचन्द्रजी का अत्रिमुनि से मिलन कहा। विराध राक्षस का वध वर्णन कर जिस प्रकार शरभंग मुनि ने शरीर छोड़ा उस प्रसंग को सुनाया, तत्पश्चात् सुतीक्ष्णमुनि का प्रेम वर्णन कर प्रभु और अगस्त्य मुनि की भेंट की कथा कही।

कहि दंडक बन पावन ताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई।।
पुनि प्रभु पंचबटी कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह कै त्रासा।।

दंडकारण्यपावित्र्यं मैत्र्यं गृध्रेण वर्णितम्।
आवासः पञ्चवट्याञ्च मुनीनां त्रासभंजनम्।।३२७।।

अर्थ–दंडक वन को पवित्र करना कहा तथा जटायु के साथ मित्रता कह सुनाई। फिर श्रीरामचन्द्रजी ने पंचवटी में डेरा डाला और सम्पूर्ण मुनियों के दुःख दूर किये।

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा।।
खर दूषन वध बहुरि बखाना। जिमि सब मरम दसानन जाना।।

शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा।
वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च।।३२८।।

अर्थ– जिस प्रकार सूर्पणखा की नाक काटी गई सो भी कहा, खरदूषण त्रिसरा का बध वर्णन किया और रावण ने जिस प्रकार सब बातें जानी वह भी कहा।

दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही।।
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना।।
पुनि प्रभु गीधक्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही।।

मारीचस्य वधं चैव वैदेह्याहरणं तथा।
राघवस्य विलापं च गध्रराजनिबर्हणम्।।३२९।।
हत्वा कबन्धं शबरीशुभाश्रमगतिन्तथा।
फलमूलाशनं कृत्वा तस्यै दत्ता गतिश्शुभा।।३३०।।

अर्थ–फिर जिस प्रकार रावण और मारीच के बीच बातचीत हुई थी सो सब गरुड़ से कही। पश्चात् माया रूपीसीता का हरण और संक्षेप से श्रीरामचन्द्रका बिछोह दुःख वर्णन किया। फिर जिस तरह प्रभु ने जटायु की क्रिया की तथा कबन्ध को मार शबरी को मुक्ति दी, वह वर्णन किया।

बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोबर तीरा।।
दोहा– प्रभु नारद संबाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीवँ मिताई, बालिप्रान कर भंग।।

प्रलापं चैव पंपाया हनूमद्दर्शनन्तथा।
ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम्।।३३१।।
प्रत्ययोत्पादनं सख्यं बालिसुग्रीवविग्रहम्।
बालिप्रथमनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम्।।३३२।।

अर्थ–रघुनाथजी का विरह वर्णन करते हुये पंपासर के किनारे गये (सो सब कहा) श्रीरामचन्द्रजी और नारदमुनि का सत्संग कहा, फिर हनुमान के मिलने का प्रसंग कहा तथा ऋष्यमूक गिरि पर जाकर सुग्रीव से मिले और मित्रता की सो कहा। तत्पश्चात् बालिवध वर्णन किया।

दोहा– कपिहि तिलक करि प्रभुकृत, सैल प्रबरषन बास।
बरनत बरषा सरद कर, रामरोष कपित्रास।।६६।।

ताराविलापं समयं वर्षरात्रनिवासनम्।

कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसंग्रहम्।।३३३।।

अर्थ–फिर रामचन्द्र जी की कृपा से सुग्रीव को तिलक हुआ। उपरान्त प्रवर्षण गिरि पर वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन करते हुये निवास किये, फिर रामचन्द्रजी के क्रोध से सुग्रीव को भय हुआ।

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाये। सीता खोजन सकल सिधाये।।

बिबरप्रबेस कीन्ह जेहि भाँति। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती।।

दिशः प्रस्थापनञ्चैव पृथिव्याश्च निवेदनम्।

अंगुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम्।।३३४।।

प्रायोपवेशनं चैव सम्पातेश्चापि मेलनम्।

अर्थ–तथा जिस प्रकार सुग्रीव ने वानर भेजे और वानरवृन्द सीताजी की खोज में इधर–उधर धाये और जिस तरह प्यास लगने पर मार्ग भूल जाने के कारण विवर में घुसे, और सम्पाती नाम के गीध से मिले थे वह सब प्रसंग सुनाया।

सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाँघत भयउ पयोधि अपारा।।

लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरज जिमि दीन्हा।।

बन उजारि रावनहिं प्रबोधी। पुर दहि नाँघेउ बहुरि पयोधी।।

पर्वतारोहणं चैव सागरस्यापि लंघनम्।

रात्रौ लंकाप्रवेशं च एकस्यापि विचिन्तनम्।।३३५।।

अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम्।

अभिज्ञानप्रदानञ्च सीतायाश्चापि भाषणम्।।३३६।।

अर्थ–सब बात सुनते ही पवन कुमार अपार समुद्र के पार पहुँचे जिस प्रकार वे लंका में पैठे और जैसे और जैसे उन्होंने सीताजी को धैर्य देते हुये मुद्रिका रूप चिह्न देकर अशोक वाटिका को उजाड़ करके रावण को समझाया था और लंका को जलाकर फिर समुद्र को लांघ कर इस पार आये सो भी वर्णन किया।

आये कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही कै कुसल सुनाई।।

ग्रहणं वायुसूनोश्च लंकादाहाभिगर्जनम्।

प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा।।३३७।।

राघवाश्वासनं चैव मणिनिर्यातनञ्चवै।।३३८।।

अर्थ–फिर सब वानर श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और उन्हें मणि मुँदरी देकर सीताजी के समाचार सुनाये।

सेन समेत जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारि निधि तीरा।।

मिला बिभीषण जेहि बिधि आई। सागरनिग्रह कथा सुनाई।।

दोहा–सेतु बाँधि कपिसेन जिमि, उतरी सागरपार।

गयउ बसीठी बीरबर, जेहि बिधि बालिकुमार।।

संगमं च समुद्रेण नलसेतोश्च बन्धनम्।।

प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम्।।३३९।।

विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदम्।

अर्थ–और सेना समेत जिस प्रकार रामचन्द्रजी समुद्र के किनारे निवास किये। जिस भाँति विभीषण शरणागत हुआ और समुद्रका मान भंग किया वह सब कथा सुनाई। समुद्र में पुल बँधने पर जिस तरह वानरीसेना समुद्र के पार उतर गई और जैसे बड़े बलधारी दूत अंगद जी भेजे गये वह सब वर्णन किया।

दोहा— निसिचर कीस लराई, बरनेसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर, बल पौरुस संहार।।६७।।

वानराणां कर्बुराणां युद्धमद्भुतमीरितम्।
कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिवर्हणम्।।३४०।।

अर्थ—फिर राक्षसों और वानरों की लड़ाई अनेक प्रकार वर्णन की। तत्पश्चात् कुम्भकर्ण, मेघनाद का बल पराक्रम और नाश वर्णन किया।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना।।
रावनबध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देब असोका।।
सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी।।
पुनि पुष्पक चढि कपिन समेता। अवध चले प्रभु कृपानिकेता।।

रावणस्य विनाशनं च सीतावाप्तिमरेः पुरे।
विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्यावलोकनम्।।३४१।।

अर्थ— नाना प्रकार से राक्षसों का वध, तथा राम रावण युद्ध भी वर्णन किया। रावण वध, मन्दोदरी का विलाप, बिभीषण को राज्य और देवताओं का दुःख निवारण, श्रीसीता और श्रीरघुनाथजी का मिलाप तथा हाथ जोड़ कर देवताओं ने स्तुति की वह कही फिर दयासागर श्रीरामचन्द्रजी वानरों के साथ पुष्पक विमान पर बिराजमान हो श्रीअवध की ओर चले।

जेहि बिधि राम नगर निज आये। बायस बिसद चरित सब गाये।।
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनन नृपनीति अनेका।।

सत्योपा०—अयोध्यायाश्च गमनम्भरतेन समागमम्।
रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम्।।३४२।।
पाद्मे—पुर्य्या वर्णनं चैव राजनीतिरनेकधा।।३४३।।

अर्थ—अयोध्यापुरी में श्रीरामचन्द्रजी का आगमन, श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक (सम्पूर्ण सेना का विसर्जन) नगरका तथा अनेक प्रकार राजनीति आदि का वर्णन।

कथा समस्त भुसुंडि बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी।।
सुनि सब कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछावा।।

अर्थ—हे पार्वतीजी! पूर्वोक्त कथा हमने जो तुमसे वर्णन की है वही सब कथा काकभुशुण्डिजी ने वर्णन की थी। इस प्रकार गरुड़जी रघुनाथजी की शुभ कथा को सुनकर प्रसन्न हुए और मन में परम उत्साहित हो कहने लगे।

सो०—गयउ मोर संदेह, सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह, तब प्रसाद बायस तिलक।।

सत्योपा०—श्रुत्वा श्रीरामचन्द्रस्य बालचारित्रमद्भुतम्।
अस्मिन्क्षणे मया देव ज्ञानं प्राप्तं च सुंदरम्।।३४४।।
पाद्मे—रामस्य चरणाम्भोजे जाता मम दृढामतिः। सर्वसंशय निर्वृत्तिः....।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के अद्‌भुत बालचरित्र को सुनकर इस समय मैं सुन्दर ज्ञान को प्राप्त हो गया। सम्पूर्ण संशय भी निवृत्त हो गया। और श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल में मेरी मति दृढ़ हो गई।

सो०—मोहि भयउ अति मोह, प्रभुबंधन रन महँ निरखि।
चिदानंद संदोह, राम बिकल कारन कवन।।६८।।

महारामायणे—रणे श्रीरामचन्द्रस्य चिदानन्दस्य धीमतः।
वन्धनम्पश्यतो जातस्संदेहो हृदि मे ततः।।३४५।।

अर्थ—युद्धक्षेत्र में चिदानन्द श्रीरामचन्द्रजी के बन्धन को देख कर मेरे हृदय में संदेह प्राप्त हुआ।

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदय मम संसय भारी।।

सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना।।

श्रीमद्भागवते—प्रपञ्चं निष्प्रपंचोपि विडंवयसि भूतले।।३४७।।

पाद्मे—नरानुकारिणीं लीलां दृष्ट्वा मोहाभिजायते।

तदप्यनुग्रहं मन्ये यज्जातं तव दर्शनम्।।३४७।।

अर्थ—भगवान् की इस मनुष्यकारिणी लीला को देख कर मेरे हृदय में मोह उत्पन्न हुआ है। परन्तु यह जो आप का दर्शन हुआ इससे उसे (मोहाविर्भाव को) भी ईश्वर की कृपा मानता हूँ।

जो अतिआतप ब्याकुल होई। तरुछाया सुख जानइ सोई।।

जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही।।

पाद्मे—धर्मार्ताः पुरुषाः सुशीतलतरुच्छायोद्भवं वै सुखम्। जानन्त्येव—

अर्थ—घाम से सन्तप्त मनुष्य सुन्दर शीतल वृक्षछाया जन्यसुख का अनुभव करता है। हे तात ! जो मुझे अत्यन्त मोह न होता तो मैं आप से किस प्रकार मिलता ? अर्थात् तुम से सत्संग कैसे होता।

सुनतेउँ किमि हरिकथा सुहाई।अतिबिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई।।

निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा।।

अर्थ—मैं यह शोभायमान् श्रीरामचन्द्रजी की कथा कैसे सुनता। आप ने जिसे अनेक प्रकार से विचित्रता के साथ गान किया है।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही।।

रामकृपा तब दरसन भयऊ। तब प्रसाद सब संसय गयऊ।।

उत्तररामचरिते— सतां सद्भिः संगः कथमपिहि पुण्येन भवति।

पाद्मे— संशयो मे विलीनोऽभूत् दर्शनात्तव धीमते।।३४८।।

अर्थ—किसी अपूर्व पुण्य ही से सज्जनों का सज्जनों के साथ समागम होता है। हे महामते! आप के दर्शन से मेरा संदेह दूर हो गया।

दोहा—सुनि बिहंगपति बानी, सहित बिनय अनुराग।

पुलक गात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग।।

भुशुण्डिरा०—श्रुत्वा वचः श्रीपतिवाहनस्य विनम्रमौदार्य्यगुणप्रयुक्तम्।

जहर्ष सोत्फुल्ल विलोचनो वै काकस्समन्तात्पुलकायमानः।।३४९।।

अर्थ—काक भुशुण्डि जी विनम्र, औदार्य, गुण संपन्न गरुड़जी के वचन सुनकर विकसित नेत्र और पुलकायमान् हो प्रसन्नता को प्राप्त हुये।

दोहा— स्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास।

पाइ उमा अतिगोप्य अपि, सज्जन करहिं प्रकास।।६९।।

महाभारते—श्लाधिने श्लाघनीयाय प्रशांताय तपस्विने।

इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय च।।३५०।।

भक्तायानुरक्ताय तथा निर्दिष्टकारिणे।

रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कदाचन।।३५२।।

अर्थ—शास्त्र की प्रशंसा करने वाले, प्रशंसनीय, प्रशान्त, तपस्वी, भक्त, कथानुरागी, प्रियपुत्र अथवा आज्ञाकारी शिष्य से यह रहस्यधर्म कहना चाहिये। दूसरे (अनधिकारी) से कदापि न कहना चाहिये।

बोलेउ काग भुसुंडि बहोरी। नभगनाथ पर प्रीति न थोरी।।

सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे।।

भुशुंडिरा०—जनयन् परमाम्प्रीतिं प्रत्युवाचाथ तं खगः।

पूज्योऽसि मम पक्षीन्द्र दयापात्रं यतः प्रभोः।।२५३।।

अर्थ—काकभुशुण्डिजी परमस्नेह प्रकट करते हुये गरुड़जी के प्रति बोले। हे पक्षीन्द्र। आप मेरे पूज्य हो क्योंकि आप प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के कृपापात्र हो।

★तुम्हहिं न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया।।

:: पठइ मोहमिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही।।

न संशयस्ते हृदि नैव माया मोहो न लोभो न खगेन्द्र कामः।।२५४।।

अर्थ—हे पक्षिराज ! आपके हृदय में न संशय है, न माया है, न लोभ है, न मोह और न काम। हे नाथ मुझ पर आपने कृपा की है। रघुनाथ जी ने तुम्हें मोह के बहाने मेरे पास प्रेषित कर मुझे बड़ाई दी है।

तुम्ह निज मोह कहा खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं।।

नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी।।

अर्थ—हे पक्षिराज! आपने जो निज मोह कहा, हे स्वामिन् ! यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। नारद, शंकरजी, ब्रह्मा और सनकादि मुनीश्वर जो कि आत्मत्व को जानने वाले हैं। (उनमें से भी)

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।

तृष्णा केहि न कीन्हा बौरहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दहा।।

दोहा—ज्ञानी तापस सूर कबि, कोबिद गुन आगार।

केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न एहि संसार।।

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।।

मृग—लोचनि—लोचन सर, को अस लाग न जाहि।।७०।।

को मोहेन न मुह्यते भुवि न वा कामेन मत्ती कृतो—

भस्मीसाद् भवतिस्म को न हि रुषा को वा न तृष्णार्दितः।

लोभाकृष्टमना न कः कुटिलतां संप्राप्य राज्यश्रियम्—

को वा नैति मृगीदृशाभ्भ्रमरतान्नो वा गतश्चक्षुषाम्।।३५५।।

अर्थ—संसार में कौन ऐसा पुरुष है जो मोह से मोहित नहीं हो जाता है? (अर्थात् कोई नहीं) या काम से मतवाला न हो गया हो (अर्थात् सब हो जाते हैं) क्रोध से कौन पुरुष भस्म नहीं हुआ (अर्थात् सब हो जाते हैं) और तृष्णा किसे नहीं बाधित करती (अर्थात् सब को बाधित करती है) लोभ से आकृष्ट किसका मन नहीं हुआ। राज्य लक्ष्मी को प्राप्त हो कर कौन कुटिलता को प्राप्त नहीं हुआ। और मृगनयनियों के नेत्रों का भ्रमर कौन नहीं बन गया (अर्थात् सब बन गये हैं।)

गुन कृत सन्निपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निवेही।।

जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जसु न नसावा।।

अर्थ—गुणों का किया हुआ सन्निपात (त्रिदोष ज्वर) किसको नहीं हुआ ? अभिमान और मद को छोड़ कर कोई पार नहीं गया। युवारूपी ज्वर ने किस को नहीं बलका दिया और ममत्व ने किस का यश नहीं नाश किया।

७मत्सर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा।।

चिंतासाँपिनि को नहीं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।।

★गरुड़ के सत्य सन्देश, मोह और माया को असत्य निश्चय कर उनके आगमन को अपने ऊपर कृपा प्रकट करना ''शुद्धापन्हुति अलंकार'' है।

::मोह के बहाने रघुनाथजी मेरे समीप प्रेषित कर मुझे बड़ाई दी इस में कैतवापन्हुति अलंकार है।

७शोक को वायु का स्वरूप और चिन्ता को सर्पिणी का स्वरूप वर्णन करना सम अभेद रूपकालंकार है। संसृष्टि भी है।

अर्थ—मत्सर (ईर्ष्या डाह) किसको नहीं कलंक लाया ? शोक रूपी पवन किसे नहीं कंपायमान् किया चिन्तारूपी सांपिनि किस को नहीं काटा। कौन ऐसा प्राणी संसार में है जिस को माया न व्यापी हो!

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।
सुत बित लोक ईषन तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।

अर्थ—शरीररूपी काष्ठ में मनोरथरूपी घुन जिस को न लगा हो ऐसा कौन धीर पुरुष है ? पुत्र, धन और लोक (जन समुदाय) इन तीनों की इच्छा ने किस की मति को मलीन नहीं कर दिया।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनइ पारा।।
सिव चतुरानन जाहि डेराहिं। अपर जीव केहि लेखे माहीं।।

शनत्कुमार सं०—कामलोभादयो दोषास्सर्वे प्रकृतिसंभवाः।
यतो बिभेति ब्रह्मापि शिवोऽपि कस्तथाऽपरः।।३५६।।

अर्थ—काम और लोभादिक दोष ये सब माया से उत्पन्न हुये हैं जिस से ब्रह्मा और शिव भी भयभीत होते हैं, अन्य की क्या गणना है ?

दोहा— ब्यापि रहेउ संसार महँ, मायाकटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड।।

अर्थ—माया की प्रचंड सेना संसार में फैली हुई है उसके कामादिक (काम,क्रोध,लोभ) सेनापति हैं और दम्भ,पाखंड, कपट आदि योधा हैं।

दोहा—सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि।।७१।।

अर्थ—वह माया रघुवीरजी की दासी है और समझ लेने पर निश्चय झूठी है। काकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे नाथ ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि वह बिना श्रीरामचन्द्रजी कृपा दूर नहीं हो सकती।

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सोई प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

अर्थ—जो माया सम्पूर्ण जगत् को नचाती है, जिसकी लीला किसीने नहीं देखी । हे गरुड़ ! प्रभु रामचंद्र के इशारे से वही माया अपने समाज के सहित नर्त्तकी (नाचनेवाली नटिन) की तरह नाचती है।

सोइ सच्चिदानंदघन रामा। अज बिज्ञानरूप बलधामा।।
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता।।
अगुन अदभ्र गिरागोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृतिपार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबिसनमुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

महानिर्वाणतंत्रे— स एक एब सद्रूपः सत्यौऽद्वैतः परात्परः।
स्वप्रकाशस्सदापूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।।३५७।।
निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः।
गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदाप्रभुः।।३५८।।
गूढः सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी सनातनः।
सर्वेन्द्रिय गुणाभासः सर्वेन्द्रिय विवर्जितः।।३५९।।
लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः।
स वेत्ति विश्वं सर्वज्ञ तन्नजानाति कश्चन।।३६०।।

भागवते— विभावसो किन्नु समीपगस्य शीतं तमोभीः प्रभवन्त्यजाद्य।

अर्थ—वही भगवान् सत्‌रूप, सत्य, अद्वैत, परात्पर, स्वप्रकाश, सदापूर्ण, सत्‌चित् आनन्दरूप, निर्विकार, निराधार निर्विशेष, आकुलतारहित, गुणातीत, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा, सर्वद्रष्टा, स्वामी, सम्पूर्ण प्राणियों में प्रच्छिप्त सर्वव्यापी, सनातन, सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुणों से भी समान, सब इन्द्रियों से रहित, लोक से परे, संसार के हेतु वाणी मन इन्द्रियों से बाह्य, वह ईश्वर सम्पूर्ण संसार को जानता है क्योंकि वह सर्वज्ञ है और उसे कोई नहीं जानता। परमात्मा के विषय में मोह का कुछ भी कारण नहीं है। क्या अग्नि के समीप वाले पर शीत और अन्धकार अपना प्रभाव दिखा सकते हैं अर्थात् कदापि नहीं।

दोहा—भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
★जथा अनेक बेष धरि, नृत्य करइ नट कोई।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।७२।।

श्रीमद्भागवते— राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नरस्य।
सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्यचान्ते संहृत्य चात्ममहिनोपरतः सआस्ते।।३६१।।

अर्थ—हे राजन्! परमेश्वर का मनुष्य योनि में जन्म लेना अथवा तिरोधान होना मायामात्र है जैसे नट के अनेकों रूप होते हैं अर्थात् जैसे नट अनेकों रूप धारण कर अनेकों भावों को दिखलाता है ऐसे ही ईश्वर अपने भक्तों के रक्षणार्थ रूप धारण करता है। वह ईश्वर स्वयम् सृष्टि करता है और अर्न्तयामी होकर संसार में बिहार करता है पश्चात् सम्पूर्ण व्यापारों से रहित होकर अपने आनन्दस्वरूप में प्राप्त हो जाता है (भाव ईश्वर अपने भक्तों के रक्षणार्थ मनुष्य योनि में अवतार लेकर साधारण मनुष्य के समान शुद्ध चरित्र करता है परन्तु वस्तुतः उन चरित्रों से वह भिन्न है जैसे नट अनेकों वेष धारण कर अनेकों भाव दिखलाता है परन्तु आप अन्त में ज्यों—का—त्यों बना रहता है।)

::असि रघुपति लीला उरगारी। दनुजबिमोहनि जन सुखकारी।।
जे मतिमलिन बिषयबस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी।।

महारामायणे—लीलेयं रामचन्द्रस्य जगदानन्दकारिणी।
महामोहनिशासुप्त राक्षसानाम्बिमोहनी।।३६२।।
शिवपुराणेऽपि—विचित्रं रामचरितं जानन्त्येव विपश्चितः।
ये सान्त मूढमतयः किमप्यन्यद्वरन्ति ते।।३६३।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की यह लीला संसार को आनन्द करनेवाली है परन्तु महामोह रूपी निशा में सोते हुये राक्षसों को विमोहित करने वाली है। हे स्वामिन् ! जो बुद्धिरहित विषयी और कामीजन हैं वे प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के विषय में ऐसा मोह आरोपण करते हैं।

☸नयनदोष जा कहँ जब होई। पीतबरन ससि कहँ कह सोई।।
जब जेहि दिसिभ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा।।

अर्थ—जब जिसके नेत्र में कोई विकार (कमल रोग) हो जाता है तब वह चन्द्रमा को पीतवर्ण का बतलाता है। और हे खगेश ! जब जिसको दिशा भ्रम हो जाता है तब वह सूर्यभगवान् को पश्चिम उदय हुआ बतलाता है।

नौकारूढ चलत जग देखा। अचल मोहबस आपुहि लेखा।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परसपर मिथ्याबादी।।

★उदाहरणालंकार है।

::यहाँ— प्रथम ब्याघातालंकार है। जैसे, लीला, वस्तु एक ही है परन्तु भृत्यों को सुखदायिनी है और वही (लीला) दैत्यों को बिमोहित करने वाली है।

☸यहाँ—अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

हरि बिषयक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अज्ञान प्रसंगा।।

महारामायणे—तीरस्थाजगदीक्षन्ते भ्रमन्तभ्रमि पीड़िताः।।३६४।।

अध्यात्मे—यथाहि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकम्बिनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते।

तथैव देहेन्द्रिय कर्त्तुरात्मा कृतं परेध्यस्य जनोविमुह्यति।।३६५।।

ज्ञानं तथा ज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने।

अर्थ—नौका पर बैठा हुआ मनुष्य संसार को चलता हुआ और अपने को अचल देखता है। जैसे नेत्र के घूमने से अज्ञपुरुष (बालक आदिकों) को घर आदि घूमते दिखाई पड़ते हैं वस्तुतः घर घूमता नहीं। ऐसे ही मूढ़ पुरुष देहेन्द्रियाहंकार का किया हुआ जो कर्म उसे देहेन्द्रियाहंकार से परे शुद्ध परमेश्वर में आरोपण करके मोह को प्राप्त होते हैं परन्तु शुद्ध सच्चिदानन्द श्रीरामचन्द्रजी में ज्ञान अज्ञान ये दोनों नहीं संबटित होते।

मायाबस मतिमंद अभागी। हृदय जबनिका बहु बिधि लागी।।

ये सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।

दोहा—काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप।

ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ परे तमकूप।।

निर्गुनरूप सुलभ अति, सगुन न जानहिं कोइ।

सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनिमन भ्रम होइ।।७३।।

अध्यात्मे—एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये।

स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये।।३६६।।

संसारमेवानुसरन्तिते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः।।३६७।।

अर्थ—जो विमूढ़ चित्तवाले और माया से आच्छादित मनवाले वे इस रामतत्व को नहीं जानते। और इसी से शुद्ध ज्ञानस्वरूप रामचन्द्र में अपना अज्ञान आरोपण करते हैं। जैसे वे पुत्र कलत्रादि में आसक्त होकर आप संसार में आया जाया करते हैं ऐसे ही श्रीरामचन्द्र के भी विषय में समझते हैं ये अंधेरे कुएँ में पड़े हुए रामचन्द्र को कैसे जान सकते हैं।

श्रीरघुनाथजी का निर्गुणरूप अत्यन्त सुगम है और सगुणरूप कोई नहीं जानता। भगवान् का निर्गुणरूप सुगम और सुगमरूप दुर्गम होने के सम्बन्ध में नाना प्रकार के चरित्र (घटनाओं) को सुन–सुन कर मुनियों के मन में भ्रम हो जाता है।

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई।।

जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सो सब कथा सुनावउँ तोही।।

अर्थ— काकभुशुण्डि कहते हैं, हे पक्षिराज ! सुनिये रघुनाथ जी की प्रभुता की सुहावनी कथा अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। हे प्रभो ! जिस प्रकार मुझे मोह उत्पन्न हुआ है वह सब कथा आप को सुनाता हूँ।

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता।।

ता तें नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ।।

अगस्त्य सं०—रघुनाथकृपात्रं यतस्त्वं खगनायक।

अध्यात्मे—अथ ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम्।।३६८।।

अर्थ—हे तात ! आप रघुनाथजी के कृपापात्र हो अतः अब परमरहस्य दुर्लभ रघुनाथ के चरित्र को तुम से कहता हूँ।

सुनहु राम कर सहज सुभाउ। जन अभिमान न राखहिं काऊ।।

संसृतभूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।।

अर्थ—सुनिये रामचन्द्रजी का यह सहज स्वभाव है कि अपने दास का अभिमान कदापि नहीं रहने देते क्योंकि अभिमान ही संसृति अर्थात् जन्ममरण का मूल अनेक प्रकार का शूल उत्पन्न करनेवाला और सम्पूर्ण

शोकों का देनेवाला है।

ता तें करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी।।
जिमि सिसुतन ब्रन होइ गुसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं।।
दोहा—जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी, गनत न सो सिसुपीर।।

अर्थ—इस कारण कृपानिधि अभिमान को दूर कर देते हैं सेवकके ऊपर बहुत ममता रखते हैं। हे स्वामिन्! जैसे बालक के शरीर में फोड़ा होता है उसे माता कठोर होकर चिरवाती है। यद्यपि बालक प्रथम दुःख पाता है और रोता है तो भी माता रोगनाश होने के लिए उस लड़के की पीड़ा को नहीं गिनती।

दोहा—तिमि रघुपति निजदास कर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजसि भ्रम त्यागि।।७४।।
भरद्वाजरामायणे— भक्तानां रामचन्द्रोपि मानं हरति सर्वथा।

अर्थ—रामचन्द्र भी अपने भक्तों का मान सब प्रकार से हरण कर लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि भ्रम छोड़ कर ऐसे प्रभु रामचन्द्रजी को क्यों नहीं भजता ?

रामकृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई।।
जब जब राम मनुजतनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं।।
रामानुकूलताम्बच्मि जाड्यं स्वं खगनायकः
यदा यदाहि लोकेऽस्मिन् भक्तानां हितकाम्यया।।३६९।।
नरानुकारिणीं लीलां करोति भगवान् हरिः।।३७०।।

अर्थ—हे खगराज ! मैं श्रीरामचन्द्रजी की अनुकूलता और अपनी जड़ता वर्णन करता हूँ। जब जब हरि भगवान् इस संसार में भक्तों की हित कामना से नर लीला करते हैं।

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ।।
जनममहोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई।।

अर्थ—तब तब अयोध्यापुरी में जाता हूँ और उनकी बाल लीला देख कर सुख पाता हूँ। जन्म महोत्सव जाकर देखता हूँ और पाँच वर्ष तक वहाँ भूला हुआ सा रहता हूँ।

इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि—सत—काम।।
निज—प्रभु—बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी।।
लघु बायस बपु धरि हरिसंगा। देखउँ बालचरित बहुरंगा।।
ममाभीष्टप्रदो रामः कोटिमन्मथ सुन्दरः।
पश्यन्तस्य मुखं चक्षुः करोमि सफलं खग।।३७१।।
निरीक्षे विहरन्तेन तद्बालचरितानि च।

अर्थ—करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी मेरे अभीष्ट देने वाले हैं हे खग ! उनके मुखारविन्द को देखता हुआ अपने नेत्रों को सुफल करता हूँ और उनके साथ बिहार करता हुआ उनके बालचरित्रों को भी देखता हूँ।

दोहा—लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठन परइ अजिर महँ, सोइ उठाइ करि खाउँ।।
एक बार अतिसय सब, चरित किये रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर।।७५।।

अर्थ—वे बालपन में जहाँ जहाँ फिरते हैं तहाँ तहाँ उनके साथ उड़ता हूँ। जो उनके हाथ से जूठन आंगन

में गिर पड़ता है उसे उठाकर खाता हूँ। एक समय रघुनाथजी ऐसा प्रबल चरित्र किया कि उन प्रभु रामचन्द्रजी की लीला का स्मरण कर शरीर पुलकायमान हो गया।

कहइ भुसुंडि सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक–सुख–दायक।।
नृपमंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती।।

सत्योपा०–शृणुष्वरामस्य कथां च दिव्यां संजीवनी भक्त जनस्य नूनम्।।३७२।।

अर्थ– हे पक्षिराज ! भक्तजनों को संजीवनी औषधि के समान श्रीरामचन्द्रजी की इस दिव्य कथा को सुनें। राजमंदिर सब प्रकार से सुन्दर है जहाँ पर अनेकों प्रकार की सुवर्णमणि जड़ित है।

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई।।
बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि–सुख–दाई।।

अर्थ–सुन्दर अंगनाई नहीं वर्णन की जा सकती जहाँ नित चारों भाई खेलते हैं। रघुनाथजी बाललीला करते हैं माता के सुख देनेवाले आँगन में खेलते फिरते हैं।

★मरकतमृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा।।
नव–राजीव–अरुन मृदुचरना। पदज रुचिर नख ससि–दुति–हरना।।

इन्द्रनीलमणिश्यामं कोमलाकृतमव्ययम्।
कोटिमन्मथलावण्यं सुन्दरं रघुनन्दनम्।।३७३।।
शशिद्युतिहरेणापि पादपद्मेन शोभितम्।

अर्थ–इन्द्रनीलमणि के सदृश श्यामरङ्ग, कोमलशरीर, करोड़ों कामदेव की भांति सुन्दर, चन्द्रमाकी कान्ति को हरण करने वाले चरणकमल से सुशोभित हैं।

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर–रव–कारी।।
चारु पुरट–मनि–रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मखर सुहाई।।

शङ्खं च चक्रं कुलिशं च पद्मं चिह्नानि सर्वाणि पदारविन्दे।
नितम्बबिम्बं रघुनायकस्य सूत्रेणनद्धं मणिचित्रितेन।।३७४।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल में शंख, चक्र, बज्र और कमल आदिक सब चिह्न वर्तमान हैं मणि जड़ित सूत्र से बंधा हुआ सुन्दर नितम्ब है।

दो०–रेखा त्रय सुंदर उदर, नाभि रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बालबिभूषन चीर।।७६।।

अर्थ–पेट में सुन्दर तीन रेखायें पड़ी हैं और नाभि गहरी एवं मनोहर है विशाल वक्षस्थल पर बालकों के गहने और कपड़े अनेक भांति के शोभायमान् हैं।

अरुन पानि नखकरज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर।।
कंध बालकेहरि दर ग्रीवाँ। चारु चिबुक आनन छबि सीवाँ।।

अर्थ–लाल हाथों की अंगुलियाँ और नख मनोहर हैं विशाल बाहुओं में सुन्दर आभूषण शोभित हैं। सिंह के बच्चे के समान कंधा और शंख के बराबर गला है, सुन्दर ठोढ़ी और मुख शोभा की अवधि है।

ए कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे।।
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा।।

अध्यात्म रा०–स्मितवक्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणि प्रभम्।
अनुग्रहाख्य हृत्स्थेन्दु सूचितस्मितचन्द्रिकः।।३७५।।

★इस चौपाई में बाचक लुप्तोपमा और चतुर्थ प्रतीत की संसृष्टि है। मरकत मृदुल में अनुप्रास और 'अंग–अंग' में पुनरुक्तिप्रकाश है।
एअ,द,ब और स अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। 'दुई दुई शब्द में पुनरुक्ति प्रकाश है। हास उपमेय, चन्द्र किरण उपमान सम, वाचक और सुखदाई,धर्म, पूर्णोष्मालंकार है। यहाँ शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों की संसृष्टि है।

अर्थ—मन्द मुसकान करने वाले मुखारविन्द में सुन्दर छोटे–छोटे दांत हैं। अनुग्रहरूपी हृदय में स्थित चन्द्रमा को सूचित करनेवाला मनोहरहास है।

नील कंज लोचन भवमोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन।।
बिकट भृकुटि सम स्त्रवन सुहाये। कुंचित कच मेचक छबि छाये।।

करुणारससंपूर्ण विशालोत्पललोचनः।।३७६।।

अर्थ—नील कमल के समान नेत्र संसार बंधन से छुड़ाने वाले हैं गोलोचन का तिलक मांथे पर शोभायमान है। टेढ़ी भौंह, सुहावने बराबर कान और काले घूंघरवाले बाल छबि के स्थान हैं।

पीत झीनि झिगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही।।
रूपरासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निजप्रतिबिंब निहारी।।

क्वचिच्च वदनं रम्यं स्तम्भेषु प्रतिबिम्बितम्।
सुभगै रत्नयुक्तेषु चालकैः संवृत्तं मुखम्।।३७७।।
द्वितीयं बालकं मत्वा हास्यं च कुरुते प्रभुः।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी किसी समय सुन्दर रत्नयुक्त खम्भों में बालों से ढके हुये अपने मुख के प्रतिबिम्ब को देख दूसरा कोई बालक है यह समझ कर हंसते हैं।

मोहिंसन करहिं बिबिध बिधि क्रीडा। बरनत चरित होत मोहि ब्रीडा।।
किलकल मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं।।

अर्थ—मुझ से नाना प्रकार के खेल करते हैं, वह चरित्र वर्णन करते हुए मुझे लज्जा होती है। जब मुझे किलकारी मार कर पकड़ने के लिए दौड़ते हैं और मैं भाग चलता हूँ तब पुआ दिखाते हैं।

दोहा—आवत निकट हसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितइ पराहिं।।

सत्योपा०—काकोनाम्नाभुशुंडस्तु कदाचिदाजगामह।
स्वस्थानाच्च हरेर्भक्तः रामदर्शनलालसः।।३७८।।

अर्थ—किसी समय भगवद्भक्त काकभुशुण्डिजी दर्शन की लालसा से अपने स्थान से श्रीरामचन्द्रजी के समीप आये।

प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहिं मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द संदोह।।७७।।
रामं शष्कुलिकं हस्तं खादन्तं च पुनः पुनः।
तं दृष्ट्वा बालकं काक इति संदग्धिमानसः।।३७९।।
कथमेष परब्रह्म वेदेन परिगीयते।।३८०।।

अर्थ—हाथ में शष्कुली (पूणी) लेकर खाते हुये बालक श्रीरामचन्द्रजी को बार–बार देख कर काकभुशुण्डिजी संदिग्ध मन हुये कि जिन्हें वेद परब्रह्म ऐसा गान करता है वह इस प्रकार कैसे।

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया।।
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृति नाहीं।।

अर्थ—हे पक्षिराज! इतना मन में लाते ही रघुनाथजी की प्रेरणा से मुझे माया व्याप गई है। वह माया मुझ को दुःखदाई नहीं हुई, अन्य जीवों की तरह संसार में पतित करने वाली नहीं हुई।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरि जाना।।

अर्थ—हे नाथ गरुड़जी ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है वह सावधान होकर सुनिये।

ज्ञान अखंड एक सीताबर। मायाबस्य जीव सचराचर।।

माया ते प्रबलारामं ययाजातमिदं जगत्।

अर्थ–हे रामचन्द्रजी आपकी माया अत्यन्त प्रबल है जिसके द्वारा यह चराचर के सहित जगत उत्पन्न हुआ।

जौं सब के रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।

मायाबस्य जीव अभिमानी। ईसबस्य माया गुनखानी।।

अर्थ–यदि सब को एक समान ज्ञान रहे, तब कहिये ईश्वर और जीव का भेद कैसा ? यह अभिमानी जीव माया के अधीन है, वह गुणों की खान माया ईश्वर के वश में है।

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।

★मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाय न कोटि उपाया।।

अर्थ–जीव पराधीन है और ईश्वर स्वाधीन हैं, जीव असंख्यों हैं, पर नारायण अकेले ही हैं। यद्यपि माया का किया हुआ बिलगाव मिथ्या है, किन्तु बिना भगवान् की कृपा के करोड़ों उपाय करने पर नहीं जाता।

::दोहा–रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।

ज्ञानवंत अपि सो नर, पसु बिन पूछ बिखान।।

अर्थ–जो बिना रामचन्द्रजी का भजन किये मोक्ष पद चाहता है वह मनुष्य ज्ञानी होने पर भी बिना पूंछ और सींग का पशु है।

राकापति षोडस उअहिं, तारागन समुदाइ।

सकल गिरिन्ह दब लाइय, रबि बिनु राति न जाइ।।

अर्थ–पूर्णिमा के सोलह चन्द्रमा उदय हों और असंख्यों तारागण उगें, सम्पूर्ण पर्वतों में आग लगा दी जाय पर बिना सूर्य के रात्रि नहीं दूर होती।

ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा।।

हरि सेवकहिं न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या।।

अध्यात्म रा०– मद्भक्ति विमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम्।

न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि।।३८१।।

अर्थ– जो पुरुष मेरी भक्ति से विमुख हो शास्त्ररूपी गढ़े में मोह को प्राप्त हो रहे हैं उनको सैकड़ों जन्मों तक ज्ञान और मोक्ष नहीं होता।

तातें नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर।।

भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेखा।।

तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मात पिताहू।।

जानु पानि धाये मोहि धरना। स्यामलगात अरुन कर चरना।।

सत्योपा०–सर्वात्मा रामचन्द्रोपि तस्य विज्ञाय मानसम्।

जहासैवैकरूपेण तं द्वितीयेन दुद्रुवे।।३८२।।

अर्थ–सर्वात्मा श्रीरामचन्द्रजी भी उसके मानसिक विचार को जान कर एक रूप से हँसे और दूसरा रूप धारणकर पकड़ने के लिये दौड़े।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी।।

जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ हरिभुज देखउँ निज पासा।।

★रामचन्द्रजी की कृपा के बिना माया दूर नहीं होती 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है।

::प्रथम विनोक्ति और दृष्टांत अलंकार की संसृष्टि है।

यत्र यत्र भुशुंडोपि तत्र तत्र रघूद्वहः।।३८३।।

अर्थ–हे गरुड़ जी! तब मैं भाग चला और रामचन्द्रजी पकड़ने के लिए बाहु फैलाई । ज्यों ज्यों मैं आकाश में दूर उड़ता जाता था, वहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की भुजा अपने पास ही देखता था।

दोहा–ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उडात।

★जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहिं मोहि तात।।

सत्यलोकं मनश्चक्रे गंतुं पक्षीविशेषतः।

तत्र गत्वा शिशुं राममजस्य निजसद्मनि।।३८४।।

अजाद्यैश्चैव मुनिभिः पादयोः परिशीलितम्।

अर्थ–काकभुशुण्डिजी विशेष कर सत्यलोक (ब्रह्मलोक) को जाने के लिये मन से इच्छा की और वहाँ जाकर ब्रह्मा तथा मुनियों से सेवित बालकरूपी श्रीरामचन्द्रको देखा।

::दोहा–सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि।

गयउ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि।।७९।।

सप्तभूविवरान्काकः गता राम भयाद्द्रुतम्।

पृष्ठभागे निरीक्षन्स धावमानोरघूत्तमम्।।३८५।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के भय से पीछे को देखते हुये, काकभुशुण्डिजी, अति शीघ्रता से दौड़ते हुये सप्त पातालों में गये और वहाँ भी श्रीरामचन्द्रजी को देखा।

मूंदेउ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ।।

एवं निरीक्ष्य रामं तु न कुतश्चिद्गतिः खगः।

भूलोकं पुनराविश्य चात्मानं ददृशे खगः।।३८६।।

अर्थ–काकभुशुण्डि इस प्रकार रामचन्द्रजी को देख तथा अपने को कहीं भी शरण न पाकर भूलोक में आये।

मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं।।

भागवते– तावच्छिशोर्वैश्वसितेन भार्गवः सोऽन्तः शरीरं मशकोयथाविशत्।।३८७।।

अर्थ–इतने में ही उस बालक के ऊपर के खैंचे हुये श्वास से वह मार्कण्डेयजी उसके पेट में मच्छर के समान खिंचे चले गये।

उदर माँझ सुनु अंडज–राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।

अतिबिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक तें एका।।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडुगन रबि रजनीसा।।

अगनित लोकपाल जम काला।। अगनित भूधर भूमि बिसाला।।

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा।।

सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर।।

दोहा–जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहू न समाइ।

सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवन बिधि जाइ।।

तत्राप्यदोन्यस्तमचष्टकृत्स्नशो यथापुरामुह्यदतीवविस्मितः।

खं रोदशीभगणानद्रिसागरान् द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान्।।३८८।।

वनानि देशान्सरितः पुराकरान् खेटान् ब्रजानाश्रम वर्णवृत्तयः।

★राजमहल से लेकर सम्पूर्ण आकाश में ब्रह्मधाम पर्यन्त रामचन्द्रजी की भुजाओं का वर्णन तृतीय विशेष अलंकार है। यही अलंकार नीचे दोहे में भी है।

::जल,वायु,अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति यही सातों आवश्यक हैं।

महांतिभूतान्यथभौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम्।।३८९।।

यत्किंचिदन्यद्व्यवहाकारणं ददर्शविश्वं सदिवावभासितम्।

अर्थ—वहाँ जाते ही उन्होंने, यह जगत जैसा प्रलय के पहले बाहर था, तैसे ही भीतर भी सब देखा, तब वह अति विस्मित होकर मोहित हो गये।

आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारे, पर्वत, समुद्र, खण्डों सहित द्वीप, दिशा, देव, दैत्य, वन, देश, नदी, शहर, खान, किसानों के गाँव, ग्वालों की गढ़इये, आश्रम, वर्ण, उनकी आजीविका, पञ्चमहाभूत, उनसे उत्पन्न हुये पदार्थ अनेक युगोंकी और कल्पों की कल्पना करने वाला काल और भी जो कुछ व्यवहार का कारण था सो सब ही बालकरूप परमेश्वर से ही परमार्थ के समान (सत्यसा) भासमान हुआ उन मार्कण्डेयजी की दृष्टि में पड़ा।

दोहा— एक एक ब्रह्मांड महँ, रहेउँ बरष सत एक।

एहि बिधि देखत फिरेउँ मैं, अंडकटाह अनेक।।८०।।

अर्थ— एक–एक ब्रह्मांड में एक एक सौ वर्ष मैं रहा। इस प्रकार असंख्यों लोकमंडलों को देखता फिरा।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता।।

नर गंधर्व भूत बैताला। किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला।।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भाँती।।

::महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनहिं आना।।

सत्योपा०—वसंति यस्यां देवाश्च किन्नराः सिद्धचारणाः।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मतत्पराः।।३९०।।

सर्वे विलोकितादेशा नरनारीप्रपूरिताः।।३९१।।

अर्थ—स्त्री पुरुषों से परिपूरित सब देशों को देखा जहाँ के देवता, किन्नर, सिद्ध, चारण, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र अपने धर्म में तत्पर होकर निवास करते हैं।

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनिस अनेक अनूपा।।

अवधपुरी प्रतिभुवन निहारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी।।

अर्थ—हर एक ब्रह्माण्ड में अपना रूप अनेक प्रकार अनुपम देखा। प्रत्येक लोकों में अयोध्यापुरी, सरयू नदी और स्त्री पुरुष भिन्न–भिन्न तरह अवलोकन किया।

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता।।

प्रतिब्रह्मांड राम अवतारा। देखेउँ बालबिनोद उदारा।।

अर्थ—हे तात ! सुनिये, दशरथ, कौशल्या और भरत आदि को अनेक रूप में देखा। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामचन्द्रकी का जन्म और श्रेष्ठ बालक्रीड़ा देखी।

दोहा—भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अतिबिचित्र हरिजान।

अगनित भुबन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन।।

अर्थ—हे विष्णु वाहन स्वामिन् ! मैंने सब अत्यन्त विलक्षण और ही और प्रकार के देखे। असंख्य लोकों में फिरा परन्तु रामचन्द्रजी को दूसरे रूपमें नहीं देखा।

७दोहा—सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।

भुवन भुवन देखत फिरेउँ, प्रेरित मोह सरीर।।८१।।

अर्थ—वही लड़कपन, वही शोभा, उन्हीं कृपालु रघुनाथजी को लोक लोकान्तरों में मोह रूपी वायु की प्रेरणा

:: यहाँ सभी वस्तुओं का और ही और होना वर्णन भेदकातिशयोक्ति अलंकार है।

यहाँ प्रति....... यमक अलंकार है। भिन्न शब्द में पुनरुक्ति प्रकाश है। और न अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

७'स' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है। भुवन शब्द में पुनरुक्ति प्रकाश है। मोह को वायुरूप वर्णन करते में सम अभेद रूपक अलंकार हैं।

से मैं दीखता फिरा।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कलपसत एका।।

फिरत फिरत निज आस्त्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ।।

भागवते–हिमालयं पुष्पबहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत्।

अर्थ–मुझे असंख्यों ब्रह्माण्ड में घूमते हुये मानो एक कल्प बीत गये। फिरते–फिरते आश्रम में आया, फिर वहाँ रह कर कुछ समय व्यतीत किया।

निज प्रभु जनम अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ।।

देखेउँ जनम महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई।।

अर्थ–अपने स्वामी का जन्म अयोध्या में सुन पाया, प्रेम से परिपूर्ण प्रसन्न होकर उठ दौड़ा। जाकर जन्म महोत्सव देखा जिस तरह मैंने पहले गाकर कहा है।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना।।

तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। मायापति कृपाल भगवाना।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के उदर में अनेक संसार देखा, वह देखते ही बनता था वर्णन नहीं किया जा सकता, फिर वहाँ सुजान माया के स्वामी, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को देखा।

करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी।।

उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउ स्त्रमित मन मोह बिसेखा।।

दोहा–देखि कृपाल बिकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।

बिहँसत ही मुख बाहेर, आयउँ सुनु मतिधीर।।

भागवते– विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशौर्वै वहिर्निरस्तोन्यपतल्लयाब्धौ।।३९२।।

अर्थ–मैं सारे संसार को देखता हुआ उस बालक के श्वास के साथ ही बाहर निकलकर निज स्थान पर आ गया।

दोहा– सोइ लरिकाई मोसन, करन लगे पुनि राम।

कोटि भाँति समुझावउँ, मन न लहइ बिस्राम।।८२।।

अर्थ– वही लड़कपन फिर श्रीरामचन्द्रजी मुझसे करने लगे, करोड़ों तरह से मन को समझाता हूँ, पर चैन नहीं मिलता है।

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देहदसा बिसराई।।

धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत तन त्राता।।

पाद्मे–दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा मोहितोऽहम् बभूबह।

विसस्मार तदा देहं गेहं च पतितो भुवि।।३९३।।

अध्यात्मे–त्राहित्राहिजगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक।

अर्थ–मैं इस चरित को बार–बार देख मोहित हो गया, देह और स्थान की सुध भूल गई, पृथ्वी में गिर पड़ा। हे जगन्नाथ! हे त्रैलोक्य रक्षक राम ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये, कहने लगा।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी।।

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ।।

सत्योपा०–मस्तके तु करन्तस्य रामोदध्रे दयान्वितः।

जहार दुस्सहं दुःखं दीनानां परिपालकः।।३९४।।

अर्थ–प्रभु रामचन्द्रजी ने मुझे परम आकुल देखकर अपनी माया के प्रभुत्व को रोक लिया। दीनों के परिपालक दयालु श्रीरामचन्द्रजी ने सिर पर कमल रखा और दुस्सह दुःख को हर लिया।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा।।

प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अतिभारी।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे मोह रहित कर दिया, श्रीरामचन्द्रजी सेवक के सुखदाता कृपा के पात्र हैं। पहली प्रभुताई विचारकर मेरे मन में बहुत प्रसन्नता हुई।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिशेखी।।
सजल नयन पुलकित करजोरी। कीन्हेउँ बहु बिधि बिनय बहोरी।।

अर्थ–प्रभु रामचन्द्रजीकी भक्तवत्सलता देख कर मेरे हृदय में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई। नेत्रों में जल भर आये, पुलकांग हो हाथ जोड़ कर फिर बहुत प्रकार से विनती की।

दोहा–सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु, बोले रमानिवास।।
कागभुसुंडी माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपररिधि, मोक्ष सकल सुखखानि।।८३।।

ज्ञान बिबेक बिरति बिज्ञाना। सुरदुर्लभ गुन जे जग जाना।।
आजु देउँ तब संसय नाहीं। माँगु जो तोहि भाव मन माहीं।।

सत्योपा०–काकेन प्रार्थितो रामस्तमूचे मंदया गिरा।
भक्तस्य मोहनो भक्त्या तथा दीनं विलोक्य च।।३९५।।
भागवते–वरान्वृणीष्व (राजर्षे) सर्वान्कामान् ददाति ते
मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम्।।३९६।।

अर्थ–मुझ (काक) से प्रार्थना किये गये श्रीरामचन्द्रजी मुझे (मोहित तथा) दीन देख कर गंभीरवाणी से बोले। वरों को मांग, तेरे सम्पूर्ण कामों को सम्प्रदान करूँगा। मेरी शरण में आया हुआ कोई भी मनुष्य फिर शोक को नहीं प्राप्त होता।

सुनि प्रभुबचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ।।
प्रभु कह देन सकलसुख सही। भगति आपनी देन न कही।।

अर्थ–प्रभु के वचन सुन अधिकप्रेम में मग्न हो गया और तब अपने मनमें अनुमान करने लगा कि स्वामी ने मुझे सम्पूर्ण सुख देने को कहा सही परन्तु अपनी भक्ति देने के लिए नहीं कहा।

★भगतिहीन गुन सब सुख कैसे। लवन बिना बहु ब्यंजन जैसे।।
भजनहीन सुख कवने काजा। अस बिचारी बोलेउँ खगराजा।।

आनन्द रा०–शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न शोभते सर्वगुणोपपन्नम्।

अर्थ– जिस प्रकार लवण के बिना, सब गुणों के रहते हुए भी शाक नहीं बनता ऐसे ही बिना भजन का सुख किस काम का है, ऐसा विचार कर हे खगराज! मैंने कहा।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मोपर करहु कृपा अरु नेहू।।
मन भावत बर माँगउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी।।

अर्थ–हे प्रभो ! जो मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहते हो तो बड़े प्रेम से मेरे ऊपर कृपा करो। हे स्वामिन् ! अब मैं भी आप से मन भाया वर माँगता हूँ। तुम उदार हो और सब के अन्तःकरण की जानने वाले हो।

दोहा–अबिरल भगति बिसुद्ध तब, स्त्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।
::भगत कलप तरु प्रनतहित, कृपासिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम।।८४।।

★भक्तिहीन गुण और सब सुख फीके हैं ? इस सामान्य बात की विशेष समता दिखानी, कि बिना लवण जैसे शाक आदि फीके लगते हैं इसमें ''उदाहरणालंकार'' है। भजन के बिना सुख को अप्रिय कथन करना 'प्रथम बिनोक्ति' अलंकार भी है।

सत्योपा०–भो श्रीराम महाभाग भक्तिं मे देहि निश्चलाम्।
अनेन वान्यरूपेण सदा मे हृदये बस।।३९७।।
भागवते–वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात्।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वपि।।३९८।।

अर्थ–हे श्रीरामचन्द्रजी ! हे महाभाग ! मुझे अपनी निश्चला भक्ति दीजिये और इस रूप से तथा अन्य रूप से मेरे हृदय में निवास कीजिये। हे महाभाग ! सम्पूर्ण कामनाओं के देने वाले आप से एक वरदान माँगता हूँ। वह यह है कि आप में तथा आप के जनों में मेरी परा भक्ति होवे।

एवमस्तु कहि रघुकुल नायक। बोले बचन परम सुख दायक।।
★सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना।।
सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी।।
जो मुनि कोटिजतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं।।
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई।।
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे।।
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा।।
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा।।

सत्योपा०–यथा वदसि भो काक तत्तथैव भविष्यति।।३९९।।
भागवते– कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे।
आकल्पान्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा।।४००।।
ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्म विज्ञानं च विरक्तिमत्।
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात् पुराणाचार्यतास्तु ते।।४०१।।

अर्थ–हे काकभुशुण्डि ! जैसा वरदान माँगते हो वह वैसा ही तुम को प्राप्त होवे। अधोक्षज भगवान् में तुम्हारी भक्ति हो और कल्पपर्यन्त यश, पुण्य और अजरामरता प्राप्त होवे, तथा त्रैकालिक ज्ञान विरागमय विज्ञान, और पुराणाचार्यता भी प्राप्त होवे।

दोहा–मायासंभव भ्रम सकल, अब न ब्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि।।
सत्योपा०–मायया तव बंधो न भविष्यति कदाचन।
आश्रमे तव माया न प्रभाव स्वं करिष्यति।।४०२।।

अर्थ– माया करके तुम्हारा बन्धन कभी न होगा और तुम्हारे आश्रम में माया अपना प्रभाव न करेगी।

दोहा–मोहि भगत प्रिय संतत, अस बिचार सुनु काग।
काय बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग।।८५।।

अर्थ–हे काक ! सुन, मुझे भक्त सदा प्यारे हैं, ऐसा विचार कर शरीर बचन और मन से मेरे चरणों में अचल प्रेम करना।

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी।।
निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोहीं।।

अर्थ–अब मेरी अत्यन्त निर्मल वाणी सुन, जो सत्य और सुगम वेद और शास्त्रों में कही है। मैं तुझ को अपना सिद्धान्त सुनाता हूँ उसको सुन कर मनमें धारण कर और सब त्याग कर मेरा भजन कर।

मम माया संभव परिवारा। जीब चराचर बिबिधि प्रकारा।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब तें अधिक मनुज मोहि भाये।।

★ यहाँ सहज सुजान शब्द साभिप्राय है, चतुर ही ऐसा वर माँग सकता है परिकरांकुर अलंकार भी है।

भागवते—एकद्वित्रिचतुष्पादः बहुपादस्तथाऽपदः।
वह्व्यः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया।।४०३।।

अर्थ—एक, दो,तीन व चार चरणों के, बहुत से चरणों के अथवा बिना चरण के उत्पन्न किये हुये बहुत से शरीर हैं उनमें मुझे मनुष्य शरीर परमप्रिय लगता है।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगमधर्म अनुसारी।।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु तें अति प्रिय बिज्ञानी।।
तिन्हतें पुनि मोहि प्रिय निजदासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।।

महाभारते—पुरुषेभ्यो द्विजानाहु र्द्विजेभ्यो मंत्रदर्शिनः।
भागवते—ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ विभर्ति माम्।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।।४०४।।

अर्थ—पुरुषों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में वेदपाठी और जो मुझे ज्ञान से धारण करता है ऐसा ज्ञानी अत्यन्तप्रिय है उन सबों से भी भगवद्भक्तों का दर्शन दुर्लभ है ऐसा मैं मानता हूँ।

भगतिहीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।
भगतिवंत अतिनीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय अस मम बानी।।

भागवते—न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि र्न शंकरः।।४०५।।
भगवद्गीतायाम्— मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम्।।४०६।।

अर्थ—न वैसे प्यारे ब्रह्मा हैं न शंकरजी जैसे कि हे पार्थ! पापयोनि वाले मेरे आश्रयी हैं स्त्री, वैश्य तथ शूद्र ये सब यदि मेरे आश्रयी अर्थात् मेरे भक्त हैं तो परम गति को अवश्य प्राप्त होंगे।

दोहा—सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग।।८६।।

अर्थ—पवित्र, सुशील और सुन्दर मतिमान् सेवक कहो किस को प्रिय नहीं लगता ? हे काग ! वेद पुराण ऐसी नीति कहते हैं तू सावधान होकर सुन।

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुनसील अचारा।।
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।।
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई। सब पर प्रीति पितहि सम होई।।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहु जान न दूसर धर्मा।।

भरद्वाजरामायणे—जायन्ते पितुरेकस्य पुत्राः प्राणप्रिया यथा।
भवन्त्यनेकधर्माणः सौशील्यादिगुणैश्चते।।४०७।।

अर्थ—जिस प्रकार एक पिता के प्राणप्रिय अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं और वे सौशील्यादि गुणों से अनेक धर्मवाले होते हैं।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।।

अर्थ—वह पुत्र पिता को प्राण के समान प्यारा होता है यद्यपि वह सब भाँति से मूर्ख ही क्यों न हों ।इस प्रकार तीनों लोकों में देवता, मनुष्य और दैत्यों के सहित जड़ चेतन जितने जीव हैं।

अखिल बिस्व यह मम उपजाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।
तिन्ह मह जो परिहरि मद माया। भजइ मोहि मन बच अरु काया।।

भगवद्गीतायाम्— समोऽहम् सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तुषु चाप्यहम्।।४०८।।

अर्थ—(यह सारा ब्रह्माण्ड मेरा निर्माण किया हुआ है) मैं सम्पूर्ण भूतों में समभाव से व्याप्त हूँ, न मेरा कोई

अप्रिय है और न प्रिय। परन्तु जो मुझे प्रेम से भजते हैं वे मुझ में और मैं भी उनमें निवास करता हूँ।

दोहा–पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ।
भगति भाव भजि कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ।।

अर्थ–पुरुष, नपुंसक, स्त्री व जड़ चेतन जीवों में कोई हो जो सब भाव से कपट त्यागकर मुझे भजता है वही मेरा परम प्यारा है।

सो०–सत्य कहउँ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब।।८७।।

अर्थ–हे खग ! मैं तुझ से सत्य कहता हूँ पवित्र सेवक मुझे प्राण के समान प्यारे हैं ऐसा विचार कर सबकी आशा और भरोसा छोड़ कर तू मेरा भजन कर।

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोहीं। सुमिरि सु भजेसि निरंतर मोहीं।।
प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ। तन पुलकित मन अति हरषाऊँ।।
छिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।४०९।।

अर्थ–वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली शांति को प्राप्त होता है। तू सत्य जान मेरा भक्त कभी नर्क को नहीं प्राप्त होता। अतः मुझे निरन्तर भजना और स्मरण करना। प्रभु रामचन्द्रजी के इस वचनामृत को सुनकर तृप्ति नहीं होती थी, शरीर पुलकित हो गया, मन में बहुत प्रसन्नता हुई।

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना।।
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहिं नहिं बयना।।
महाभारते– या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो ब्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः।।४१०।।

अर्थ– उस सुख को मन और कान जानते हैं किन्तु जीभ से कहा नहीं जा सकता। जो आंखें देखती हैं वे बोल नहीं सकतीं और जो जीभ बोलती है वह देख नहीं सकती। अर्थात् आँखें श्रीरामचन्द्रजी की शोभा को देख सकती हैं पर कह नहीं सकती और वाणी कह सकती है पर देख नही सकती।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसुकौतुक तेई।।
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा।।

अर्थ– बहुत प्रकार से समझाकर मुझे सुख दिया, फिर वह रामचन्द्रजी बालचरित्र करने लगे नेत्रों में जल भरकर और मुख कुछ मलीन करके अत्यन्त भूख लगी है यह कह कर माता की ओर देखने लगे।

देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदुवचन लिये उर लाई।।
गोद राखि कराब पयपाना। रघुबर चरित ललित कर गाना।।
सत्योपा०–प्रेम्णाक्षियुग्मं च पुन र्वदनं हि विलोक्य च।
कंठे स्वकीये सा माता बालकं मिलतिस्म ह।।४११।।
समं स्वाङ्के निधायाथ लालयामास प्रेमतः।

अर्थ–कौशल्या जी प्रेम के साथ नेत्र युगल और मुख को देखकर अपने गले में कुमार को लगा लिया और रामचन्द्रजी को गोद में लेकर प्रेम से लालन करने लगीं।

सो०–जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ–बेष–कृत सिव सुखद।
ः॒अवधपुरी नर नारि, तेहि सुखमा संतत मगन।।

अर्थ–जिस सुख में लगकर त्रिपुरारी शिवजी अमंगल वेष किये रहने पर भी आनन्ददाता हैं। अयोध्यापुरी के भी पुरुष उसी सुख में मग्न हैं।

ः॒अर्थान्तरम्यासालंकार है। पूर्वार्ध में एक विशेष बात कह कर उत्तरार्ध में फिर उसी का समर्थन करना उक्त अलंकार का लक्षण है।

सो०–सोई सुख लवलेस, जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ।
तेहि नहिं गनहिं खगेस, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति।।८८।।

अर्थ–उसी सुख का लवलेशमात्र जिन्होंने एक बार सपने में भी पाया है हे खगराज! वे सुन्दर मूर्तिमान् सज्जन ब्रह्मानन्द को कुछ नहीं समझते।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला।।
रामप्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजास्त्रम आयउँ।।

अर्थ–मैं कुछ दिनों तक अयोध्या में रहा और सुन्दर बालविनोद देखा रामचन्द्रजी की कृपा से भक्ति कर वरदान पाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरण वन्दना करके मैं अपने आश्रम को चला आया।

तब तें मोहि न ब्यापी माया। जब तें रघुनायक अपनाया।।
यह सब गुप्तचरित में गावा। हरिमाया जिमि मोहि नचावा।।

अर्थ–जब से रघुनाथजी ने मुझे अपनाया तब से मुझे माया नहीं ब्यापी। यह सम्पूर्ण गुप्त चरित्र मैंने आपसे कहा जिस प्रकार भगवान् की माया ने मुझे नचाया है।

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिन हरि भजन न जाहिं कलेसा।।
::रामकृपा बिन सुनु खगराई। जानि न जाय राम प्रभुताई।।

अर्थ–हे पक्षिराज ! अब मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना भगवान् के भजन के क्लेश दूर नहीं होता रामचन्द्रजी के बिना उनकी महिमा को कोई नहीं जान सकता।

जाने बिन न होइ परतीती। बिनु परतीति होहि नहिं प्रीति।।
★प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।

अर्थ–बिना जाने विश्वास नहीं होता, बिना विश्वास की प्रीति नहीं होती, प्रीति के बिना भक्ति में दृढ़ता नहीं होती, जैसे जल की चिकनाई नहीं टिकती।

ν्सो०–बिनु गुरु होहि कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहहिं हरिभगति बिनु।।

शनक सं०–गुरोर्ऋते न ज्ञानन्न पृथक् ज्ञानाद्विरक्तता।
नहि स्यात्परमानन्दं रामभक्तिं बिना क्वचित्।।४१२।।

अर्थ–गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता, बिना ज्ञान के विरक्तता नहीं आती, बिना रामचन्द्रकी भक्तिके परमानन्द नहीं प्राप्त होता।

सो०–को बिस्त्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलइ कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय।।८९।।

अर्थ– हे तात ! क्या कोई स्वाभाविक सन्तोष के बिना सुख पा सकता है करोड़ों उपाय पूर्ण रूप से करने पर भी बिना जल के क्या नाव चलेगी ? (कदापि नहीं)

+बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।।
रामभजन बिन मिटहि न कामा।। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा।।

अर्थ–बिना संतोष के कामनाऐं नष्ट नहीं होती, कामनाओं के रहते हुये सुख स्वप्न में भी नहीं मिलता

::यहाँ प्रथमविनोक्ति अलंकार है। अपना अनुभूतज्ञान कहने में 'प्रत्यक्षप्रमाणालंकार' है अतः दोनों की संसृष्टि है।

★यहाँ 'कारणमालालंकार' है विनोक्ति अलंकार तथा उदहरणालंकार है। इन तीनों अलंकारों की संसृष्टि है।

νयहाँ वक्रोक्ति अलंकार है विनोक्ति अलंकार तथा शब्द प्रमाणालंकार है और तीनों की संसृष्टि है।

+यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। तल्लक्षणम् यथा–

साहित्यदर्पणे–सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। कार्यं च कारणेभेद कार्येण च समर्थ्यते।

जहाँ विशेष से सामान्य या सामान्य से विशेष अथवा कारण से कार्य या कार्य से कारण साधर्म्य के द्वारा कि वैधर्म्य समर्थित होता है उसे अर्थान्तरन्यासालंकार कहते हैं। तो यहाँ बिना संतोष के कामनायें नहीं नष्ट होतीं और बिना रामभजन के वासनायें नहीं मिटती। इन दोनों बातों को विशेष प्रमाण द्वारा पुष्ट करना अर्थात् काम की उपस्थिति में गुण नहीं और बिना स्थल के वृक्ष कदापि नहीं उगता 'अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

श्रीरामचन्द्रजी के भजन बिना किये क्या वासनायें नष्ट हो सकती हैं ? (कदापि नहीं) बिना भूमि के क्या वृक्ष उग सकता है ? (नहीं)

बिनु बिज्ञान कि समता आवइ। को अवकास कि नभ बिनु पावइ।।
स्रद्धा बिना धरम नहिं होई। बिनु महिगंध कि पावइ कोई।।

भगवद्गीतायाम्–अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं तु यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नेह च।।४१३।।
गन्धवती पृथिवीति न्यायशास्त्रसिद्धान्तात् गंधवत्वं भूमावेव।

अर्थ– बिना विज्ञान के क्या समता आती है ? आकाश के बिना क्या कोई स्थान पाता है ? श्रद्धा के बिना हवन किया, दान दिया, तप करना, अथवा जो कुछ किया गया हो हे पार्थ ! वह सब व्यर्थ है न वह इस लोक में प्राप्त होता है न मरने पर। पृथ्वी गन्धवती है अतः बिना पृथ्वी के गन्ध प्राप्त होना असम्भव है।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।।
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाई।।

अर्थ–बिना तप के क्या तेज का विस्तार हो सकता है ? संसार में बिना जल के क्या रस हो सकता है ? बिना विद्वानों की शुश्रुषा किये क्या शील प्राप्त हो सकता है (कदापि नहीं) हे स्वामिन् ! जैसे बिना तेज के रूप शोभायमान नहीं होता।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परसि कि होई बिहीन समीरा।।
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरिभजन न भव भय नासा।।

अर्थ– क्या अपने सुख के बिना मन स्थिर होता है ? क्या पवन के बिना स्पर्श हो सकता है ? (कदापि नहीं) क्या बिना विश्वास के कोई सिद्धि हो सकती है ? बिना भगवान् के भजन किये संसार के भय का नाश नहीं होता।

★दोहा–बिनु बिस्बास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिस्राम।।

अर्थ– बिना विश्वास के भक्ति नहीं उत्पन्न होती और बिना भक्ति के रामचन्द्रजी दया नहीं करते, बिना रामचन्द्रजी के कृपा किये जीव को स्वप्न में भी विश्राम नहीं मिलता।

सो०–अस बिचारी मतिधीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुंदर सुखद।।९०।।

अर्थ–हे मतिधीर ! ऐसा विचार कर सम्पूर्ण संदेह और कुतर्कनाओं को त्याग कर सुन्दर सुखदायक, दया की खानि रघुकुल के वीर रामचन्द्रजी को भजिये।

निज मति सरिस नाथ मैं गाया। प्रभु प्रताप महिमा खगराया।।
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेखी। यह सब मैं निज नयनहिं देखी।।

अर्थ–हे स्वामिन् ! पक्षिराज ! प्रभु रामचन्द्रजी के प्रताप और महिमा को मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कथन किया है यह मैंने कुछ विशेष युक्ति की कल्पना कर के नहीं कहा किन्तु सब अपनी आँखों देखी हुई बात कही है।

::महिमा नाम रूप गुनगाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा।।
निज निज मति मुनि हरिगुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं।।

अर्थ–हे गरुड़ जी! रघुनाथजी की महिमा, नाम तथा गुण की सम्पूर्ण कथा अनन्त है मुनि, निगम, शेष तथा शिवजी अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के गुणों का गान करते हैं परन्तु पार नहीं पाते।

★यहाँ कारणमालालंकार है। तल्लक्षणम्–

साहित्य दर्पणे– परं परं प्रति यदा पूर्व पूर्वस्य हेतुता। तदा कारणमालास्यात्–

अर्थ– अगले–अगले के प्रति जहाँ प्रथम–प्रथम वस्तु हेतु होती जाय उसे कारणमाला अलंकार कहते हैं। जैसे भक्ति इस अगली वस्तु का कारण विश्वास, भक्ति की प्राप्ति का कारण रामचन्द्रजीकी कृपा है और वही जीवों के सुख का कारण है। बाा–बार कारण से कार्य का प्रकट होना 'कारणमाला अलंकार' है प्रथम विनोक्ति की संसृष्टि भी है।

::यहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलंकार है।

तुम्हहिं आदि खग मसकप्रजंता। नभ उड़ाहिं नाहिं पावहिं अंता।।
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा।।

अर्थ—हे तात गरुड़जी ! तुमसे आदि लेकर पक्षी और मशक पर्यन्त आकाश में उड़ते हैं परन्तु उसका पार नहीं पाते। इसी प्रकार रघुनाथजी की महिमा अथाह है उसकी थाह कोई नहीं पा सकता।

राम काम सत कोटि सुभगतन। दुर्गाकोटि अमित अरिमर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सतकोटि अमित अवकासा।।
भरद्वाज रा०— कोटिकंदर्पलावण्यश्चण्डिकानन्तविक्रमः।
कोटीन्द्रवद्विलासी च कोटिब्रह्माण्डनायकः।। ४१४।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, अनन्त चंडिका के समान पराक्रमी, कोटि इन्द्र के समान बिलासी तथा कोटिब्रह्माण्ड के नायक हैं।

दो०—मरुत—कोटि—सत—बिपुल बल, रबि—सत—कोटि प्रकास।
ससि—सत—कोटि सों सीतल, समन सकल—भव—त्रास।।
काल—कोटि—सत—सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूम—केतू सत—कोटि सम, दुराधरष भगवंत।।९१।।

अद्भुतोत्तरकाण्डे—कोटिसूर्यप्रतीकाशं विष्वक्तेजो निराकुलम्।
चन्द्रावयवलक्ष्म्याढ्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।।४१५।।
ज्वालावलिसहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्।
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं जटामंडलमण्डितम्।।४१६।।

अर्थ—करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश वाले, जिनका तेज सब दिशाओं में व्याप्त हो रहा है और चन्द्रांगश्री से युक्त, कोटि चन्द्र के समान प्रभा वाले, सहस्रों ज्वालामालिकओं से युक्त, करोड़ों प्रलयाग्नि के समान जटामण्डल से मंडित और सब से दुर्धर्ष भगवान् हैं।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन सरिस सम कोटि कराला।।
तीरथ—अमित—कोटि—सम पावन। नाम अखिल—अघपुंज—नसावन।।

अर्थ—सैकड़ों पाताल के समान प्रभु अगाध हैं और सैकड़ों यमराज के समान भयंकर हैं अर्थात् यमराज से भी अधिक कठोर हैं। शतकोटि तीर्थों के समान पवित्र करने वाले हैं इनका नाम सम्पूर्ण अघ समूह को नाश करनेवाला है।

हिम गिरिकोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गम्भीरा।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल कामदायक भगवाना।।
आनन्द रा०—समुद्रइव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव।

अर्थ—करोड़ों हिमालय पर्वत के समान रघुनाथजी अचल हैं, अनेकों समुद्र के समान गहरे हैं। अपरमित कामधेनु के समान भगवान् रामचन्द्रजी सम्पूर्ण कामनाओं के देने वाले हैं।

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
विष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संहरता।।
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरबधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।

आनन्द रा०—विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवी समः।।४१७।।
धनदेव समस्त्यागे सर्वधर्म इवापरः।।४१८।।

अर्थ—कोटि सरस्वती के समान अत्यन्त चतुर हैं, अनेक ब्रह्मा के समान सृष्टिनिर्माण करनेकी निपुणता है। वीर्यमें विष्णु के समान, चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन, क्रोध में प्रलयाग्नि के समान, क्षमा में पृथिवी के समान, त्याग में कुबेर के समान सम्पूर्ण धर्म कार्य करने में अद्वितीय हैं तथा भार बहन करने में सहस्रों शेष के समान हैं। अतः

प्रभु रामचन्द्रजी अनन्त तथा उपमारहित हैं।

छंद–निरुपम न उपमा आन राम समान निगमागम कहे।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अतिलघुता लहे।।
एहि भाँति निजनिज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भावगाहक अतिकृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं।।

अर्थ–वेद कहते हैं कि रामचन्द्रजी अनुपम हैं, दूसरी उपमा नहीं है। रामचन्द्रजी के समान रामचन्द्र ही हैं। जैसे असंख्य जुगुनू के समान सूर्य को कहने से उनकी लघुता पाई जाती है। इस प्रकार अपनी–अपनी बुद्धि विकास के अनुसार मुनीश्वर लोग भगवान् को बखानते हैं। प्रभु रामचन्द्रजी भाव के ग्राहक और अत्यंत कृपा के स्थान हैं उनकी प्रेम भरी वाणी सुनकर आनन्द मग्न हो चुप रहते हैं।

दोहा–राम अमित गुनसागर, थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह जन जस कछु सुनेउँ, तुम्हहिं सुनावउँ तोइ।।

भागवते–अहं च संस्मारित आत्मस्तत्वं श्रुतं पुराणे परमर्षिवकात्।
एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः।।४१९।।
माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम्।

अर्थ–स्मरण कराये गये मैंने महर्षि के मुख से जैसा सुना है वैसा ही उरुकर्मा भगवान् के सम्पूर्ण अमंगल विनाशक माहात्म्य व चरित्र को वर्णन किया।

सो०–भावबस्य भगवान सुखनिधान करुनाभवन।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीता रमन।।९२।।

अर्थ–भगवान् सुखनिधान दया के धाम और प्रेम के वश में हैं। ममत्व, मद, मान त्याग कर सीताराम श्रीरामचन्द्रजी का भजन कीजिये।

सुनि भुसुन्डि के बचन सुहाये। हरषित खगपति पंख फुलाये।।
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुबर प्रताप उर आना।।

अर्थ–काकभुशुण्डि के सुहावने वचन सुन कर गरुड़जी प्रसन्न हो पंख फुला दिये, नेत्रों में आंसू भर आये और मन में बहुत हर्षित हो श्रीरघुनाथजी के प्रताप का स्मरण करने लगे।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना।।
::पुनि पुनि कागचरन सिर नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा।।

अर्थ–पहिले का अज्ञान समझ कर पछताते हैं कि अनादि ब्रह्म को मैंने मनुष्य मानकर बड़ा अनर्थ किया बार–बार काकभुशुण्डि जी के चरणों पर सिर नवाया और उन्हें रामचन्द्रजी के समान जानकर प्रेम बढ़ाया।

गुरु बिन भवनिधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहुत ब्राता।।

मातृका विलासे– किं च आचार्यवान् पुरुषो वेद इति श्रुतेः भगवतत्स्वरूप
ज्ञानमपि गुरुप्रसादादेव भवति।।४२०।।

अर्थ–बिना गुरु के संसाररूपी समुद्र को कोई पार नहीं कर सकता, यदि वह ब्रह्मा शिवजी के समान हो तो भी मुझे संसयरूपी सर्प ने ग्रस लिया कुतर्क समूह रूपी बहुत दुखदाई लहरें आ रही थीं।

तब सरूप गारुडि रघुनायक। मोहि जिआयेउ जन सुखदायक।।
तब प्रसाद मम मोह नसाना। रामरहस्य अनूपम जाना।।

अर्थ–आपके शरीर रूपी गरुड़ सम्बन्धी मंत्र से भक्तों के सुख देने वाले रघुनाथ जी ने मुझे जिआया। आप की कृपा से मेरा अज्ञान नष्ट हुआ और रामचन्द्रजी का रहस्य चरित्र जाना।

::पूर्णोपमालंकार है।

★दोहा–ताहि प्रसंसि बिबिधिबिधि, सीस नाइ करजोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि।।

अर्थ–काकभुशण्डिजी को सिर नवा कर और हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से उनकी प्रशंसा करके गरुड़जी फिर सप्रेम वचन बोले।

प्रभु अपने अबिबेक तें, बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु, जानि दास निजमोहि।।९३।।

अर्थ–हे प्रभो ! मैं अपने अज्ञान से आपसे पूछता हूँ। हे कृपासिन्धो! मुझे अपना सेवक समझकर आदरपूर्वक कहिये।

तुम्ह सर्वज्ञ तज्ञ तमपारा। सुमति सुसील सरस आचारा।।
ज्ञान बिरत बिज्ञान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा।।

भरद्वाजरामायणे–सर्वज्ञस्सुमतिश्शीलसत्यवानसि मानद।
रामचन्द्रस्य दासत्वं ज्ञानविज्ञानसंयुतः।।४२१।।

अर्थ–हे मानद ! आप सर्वज्ञ,सुमति,सुशील, सत्यवान्, ज्ञानविज्ञान वाले रामचन्द्रजी के दास हो।

कारन कवन देह(१) यह पाई। तात सकल मोहि कहउ बुझाई।।
रामचरित सर(२) सुन्दर स्वामी। पायउ कहा कहहु नभगामी।।

अर्थ–हे तात ! किस कारण यह काक शरीर आपने पाई, मुझे सब समझाकर कहिये। हे स्वामिन् ! यह रामचरित्ररूपी सुन्दर सरोवर आपने कहाँ से पाया सो मुझे समझाकर कहो हे आकाशगामिन्!

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहु नास(३) तव नाहीं।।
मृषा बचन नहिं ईस्वर कहई। सो मोरे मन संसय अहई।।

अर्थ–हे नाथ! मैंने शिवजी से यह बात सुनी है कि महाप्रलय में भी तुम्हारा नाश नहीं होता है। ईश्वर और बड़े पुरुष झूठ नहीं कहते हैं सो इस बात का मेरे मनमें संदेह है।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकलजग कालकलेवा।।
अंडकटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।।

अद्भुतोत्तरखण्डे–कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्याचिद्वशे।।४२२।।

अर्थ–काल भूतों को उत्पन्न करता है काल ही प्रजाओं को संहार करता है, सब कालके वश हैं और काल किसी के वश नहीं है।

सो०–तुम्हहिं न ब्यापत काल, अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ज्ञान प्रभाउ कि जोगबल।।

अर्थ–वह अतिकराल काल तुम्हें नहीं ब्याप्त होता है, इसका क्या कारण है, हे कृपासागर ! सो मुझ से कहो यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल ?

दोहा–प्रभ तब आश्रम(४) आयउँ, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग।।९४।।

अर्थ–हे प्रभो ! मैं आपके आश्रम में आया, आते ही मेरा मोह भ्रम दूर हो गया। हे नाथ इसका क्या कारण है? प्रेम पूर्वक कहिये।

गरुड़गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा सहित अनुरागा।।
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हार मोहि अति प्यारी।।

अर्थ–हे पार्वती, गरुड़जी के वचन सुनकर काकभुशुण्ड जी प्रसन्न हो गये और बड़े प्रेमसे कहने लगे हे सर्प.

★अनुप्रासालंकार है।

यहाँ गरुड़जी ने चार प्रश्न किये । यथा– (१)आपको कौए की देह किस कारण मिली ? (२) रामचरितमानसस किस जगह प्राप्त हुआ ? (३) आपको काल क्यों नहीं ब्यापता ? (४) इस आश्रम में आने से मेरा मोह भ्रम जाता रहा, इसका क्या कारण है ?

.शत्रो! तुम्हारी बुद्धि धन्य है तुम्हारे प्रश्न मुझे बहुत प्यारे हैं।

सुनि तब प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम की सुधि मोहि आई।
अब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई।।

अर्थ—प्रेम युक्त सुहावने आपके प्रश्न सुनकर मुझे बहुत जन्म की सुध आ गई। हे तात ! अपनी रूप कथा गाकर कहता हूँ आदर पूर्वक मन लगाकर सुनिये।

जप तप व्रत मख सम दम दाना। बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिन कोउ न पावइ षेमा।।

सत्योपा०—मानुषं जन्म संप्राप्य रामं न भजते हि यः।
वञ्चितः कर्मणा पाप इति जानीहि बुद्धिमन्।।४२३।।

अर्थ—जो मनुष्य जन्म पाकर रामचन्द्रजीका भजन नहीं करते वे कर्म (अर्थात् जप,तप,मख,संयम,व्रत,दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान) के द्वारा ठगे जाते हैं अर्थात् बिना ईश्वरकी भक्तिके सब व्यर्थ है और बिना भक्ति के क्षेम भी अर्थात् विश्राम भी नहीं मिलता।

एहि तन रामभगति मैं पाई। तातें मोहि ममता अधिकाई।।
जेहि तें कछु निजस्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई।।

अर्थ—इस शरीर से मैंने रामभक्ति पाई है, इसलिये इस पर अधिक ममता है। जिस से अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सबकोई प्रेम करते हैं।

सो०—पन्नगरि असि नीति, स्त्रुतिसंमत सज्जन कहहिं।
अतिनीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परमहित।।

अर्थ—हे गरुड़जी ! वेद के अनुसार सज्जनलोग ऐसी नीति कहते हैं कि अपना परमहित जानकर अत्यंत नीच से भी प्रीति करना चाहिये।

:: पाट कीट तें होइ,तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सब कोइ, परम अपावन प्रान सम।।९५।।

अर्थ—रेशम कीड़े से उत्पन्न होता है, उससे मनोहर रेशमी वस्त्र बनता है। अत्यन्त अपवित्र (उस) कृमि को सब कोई प्राण के समान पालते हैं।

स्वारथ सांच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा।।
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा।।

भागवते— तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्।
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।।४२५।।

अर्थ—वही सत्य है, वही मंगल है और वही पुण्य है, वही रमणीय है रुचिर है और निरतंर मन को परमानन्द देने वाला है, जिसमें भगवान् के गुणों का गान किया गया है।

⋆राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही।।
राम भगति यहि तन उर जामी। ता तें मोहि परम प्रिय स्वामी।।

अर्थ—राम से विमुख यदि ब्रह्माके समान शरीर मिले तो भी कवि और पण्डित उसकी बड़ाई नहीं करते हैं। इस मेरे शरीर में रामभक्ति उत्पन्न हुई है। इस कारण हे स्वामिन्! यह शरीर मुझे बहुत प्रिय है।

तजउँ न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिन बेद भजन नहिं बरना।।
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा।।

::यहाँ दृष्टांतालंकार है।

⋆इसी चौपाई के भाव का श्लोक श्रीमद्भागवत में है । यथा—

नैष्कर्म्यमप्यत्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

अर्थ—निष्कर्म, माया से रहित भी ज्ञान भगवद्भक्ति से रहित अत्यन्त सुशोभित नहीं होता।

अर्थ–मेरा मरण इच्छाधीन है इस लिये शरीर त्याग नहीं करता हूँ। बिना शरीर के भजन नहीं होता, ऐसा वेदों ने कहा है। पहले मुझे मोह ने बहुत ही अपने वश में कर लिया था, राम से विमुख होकर मैं सुख से कदापि नहीं सोया था।

नाना जनम करम पुनि नाना। किये जोग जप मख तप दाना।।
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं।।

अर्थ–मेरे अनेकों जन्म हुए और मैंने अनकों कर्म, योग, जप, तप, मख और दान किये हैं। हे पक्षिराज ! संसार में कौन ऐसी योनि है जिसमें मैंने भ्रम भ्रम कर न जन्म लिया हो।

देखेउँ सब करि करम गुसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिवप्रसाद मन मोह न घेरी।।

अर्थ–हे स्वामिन्! सब जन्मों के कर्मों को देखा, पर अबकी तरह कदापि सुखी नहीं हुआ। हे नाथ ! मुझे बहुत जन्मकी सुधि है, शिवजी की कृपा से मेरी मति को मोह ने नहीं घेरा।

दोहा–प्रथम जनम के चरित अब, कहउँ सुनहु बिहँगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ, जातें मिटहिं कलेस।।

भरद्वाजरामायणे–कथयिष्याम्यहं स्वामिन् चरितं पूर्वजन्मनः।
यस्य श्रवणमात्रेण नश्यन्ते सर्वसंशयाः।।४२५।।

अर्थ–हे स्वामिन् ! मैं अपने पूर्वजन्म के चरित्र को कहता हूँ जिसके सुनने से आप के सब संशय दूर हो जायेंगे।

पूरब कल्प एक प्रभु, जुग कलियुग मलमूल।
नर अरु नारि अधर्मरत, सकल निगम प्रतिकूल।।

महानिर्वाणतंत्रे–उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः पापकर्मरताः सदा।
कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः।।४२६।।

अर्थ–हे प्रभो ! पहले के एक कल्प में कलियुग नाम का युग था, उस में सब लोग उच्छृङ्खल, मदोन्मत्त पापी, कामुक, लोलुप, क्रूर, निष्ठुर, दुर्मुख और शठ थे।

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जनमत भयउँ सूद्र तनु पाई।।
सिवसेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी।।

शनकसंहिता–अयोध्यायामभवज्जन्म कलौ शूद्रगृहे मम।

अर्थ–(उस) कलियुग में अयोध्यापुरी में मेरा जन्म शूद्र के भवन में हुआ मन, कर्म और वचन से शिव जी का सेवक था पर अभिमान से अन्य देवताओं की निन्दा करता था।

धन मदमत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला।।
जदपि रहउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी।।

अर्थ–धर्म के मद में मतवाला, बहुत बोलने वाला, कुटिल बुद्धि और हृदय से बड़ा गर्वी था यद्यपि रघुनाथजी की राजधानी में रहता था तो भी उस समय उसकी कुछ महिमा नहीं जानता था।

अब जाना मैं अवधप्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा।।
कवनेहु जनम अवध बस जोई। रामपरायन सो पर होई।।

अर्थ–अब मैं अयोध्या का माहात्म्य जाना, वेद शास्त्र और पुराणों ने ऐसा कहा है, जो किसी जन्म में अयोध्या में निवास करता है, वह रामचन्द्रजी में अच्छे प्रकार तल्लीन हो जाता है।

अवधप्रभाव जानि तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी।।
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पापपरायन सब नरनारी।।

विष्णु पुराणे–अस्नान्नभोजिनो नाग्निर्देवतातिथिपूजनम्।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम्।।४२७।।

अर्थ–यह प्राणी अयोध्या के प्रभाव को तभी जान सकता है जब कि मनुष्य के हृदय में हाथमें धनुषधारण

किये हुये रामचन्द्रजी निवास करें। कलियुग में मनुष्य स्नान, भोजन विहीन होंगे और अग्नि, देवता, अतिथि, का पूजन और जलदान, पिंडदान न करेंगे।

दोहा—कलिमल ग्रसे धर्म सब, गुप्त भये सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किये बहुपंथ।।

न वेदाः प्रभवस्तत्र स्मृतीनां स्मरणं कुतः।
नानेतिहासयुक्तानां सत्यमार्गप्रदर्शिनाम्।।४२८।।
बहुलानां पुराणानां विनाशो भविता विभो।
तदा लोका भवष्यन्ति धर्मकर्मवहिर्मखा।।४२९।।

अर्थ—कलियुग में वेदों का प्रभाव न चलेगा, कोई भी स्मृतियों को न पढ़ेगा। अनेक प्रकार के इतिहासयुक्त सत्यमार्ग प्रदर्शक बहुत से पुराणों का नाश होगा। उस समय अर्थात् कलियुग में संसार धर्म कर्म से रहित होंगे।

भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ज्ञाननिधि, कहहु कछुक कलि धर्म।।९७।।

अर्थ—सब लोग मोहवश हो गये, लोभ ने शुभ कर्म को ग्रस लिया है। ज्ञानसागर गरुड़जी ! सुनिये कुछ कलियुग के धर्म कहता हूँ।

बरन धर्म नहिं आस्रमचारी। स्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।
द्विज स्रुतिबंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगमअनुसासन।।

महानिर्वाणतंत्रे— लोकप्रतारणार्थाय जपपूजापरायणाः।
पाखंडाः पंडितम्मन्याः श्रद्धाभक्तिविवर्जिताः।।४३०।।

अर्थ—कलियुग में वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य,शूद्र इनके) धर्म, आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ सन्यस्त) नहीं रहते, सब नर नारी वेदों से विरोध करने वाले होते हैं द्विज लोग संसार के बंचन करने के लिए जप, पूजा करते हैं और ये पाखंडी, पंडितम्मन्य और श्रद्धा भक्ति से रहित होते हैं।

मारग सोइ जा कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दंभरत जोई। ता कहँ संत कहहिं सब कोई।।

विष्णुपुराणे—अनृतमेव व्यवहार जयहेतुः।
भागवते— पाण्डित्ये चापलं वचः।।४३१।।

अर्थ—व्यवहार में भी असत्य भाषण जय का कारण माना जाता है जो अनर्थक शब्द का व्यवहार करता है वही पंडित कहाता है। जैसे मिथ्या अर्थात् झूठी बातें बनावे अनेक प्रकार से वेष बनावे सब कोई उसे संत कहते हैं।

सोई सयान जो पर धन हारी। जो कर दंभ जो बड़ आचारी।।
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।।

वागुच्चारीत्सर्वं मात्रं तक्रियां कर्त्तुमज्ञमाः।
कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालकाइव।।४३२।।
विष्णुपुराणे— कपटवेषधारणमेव महत्वहेतुः।।४३३।।

अर्थ—मनुष्य कलियुग में मुखसे धर्मशास्त्र की बातें कथन करे परन्तु वेद स्मृति पुराणोक्त कर्म करने में सर्वथा असमर्थ हो कलियुग में फाल्गुन मास में अनाब—सनाब बकने वाले बालकों के समान वेदान्ती हो। कपट वेष का धारण करना ही महात्मा का लक्षण हो।

निराचार जो स्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी बैरागी।।
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।
दोहा—असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्धि नर,पूज्य ते कलिजुग माहिं।।

कदाहाराः कदाचाराधृतकाः शूद्रसेवकाः।
शूद्रन्नभोजिनः क्रूरा वृषलीरतिकामुकाः।।४३४।।

अर्थ—अशुभ भोजन करने वाले, बुरे आचार वाले, शूद्रों के सेवक शूद्रान्नभोजी क्रूर और वृषली से रति करने वाले पाखंडी लोग कलियुग में योगी प्रसिद्ध जन कहलायेंगे।

सो०— जे अपकारीचार, तिन्ह कर गौरव मान बहु।
मन क्रम बचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ।।९८।।

परोपकारनिरताः सदैवानृतभाषिणः।
वक्तारस्ते भविष्यन्ति कलौ ये वाऽशुचिव्रताः।।४३५।।
अभयप्रगल्भोच्चारणमेव पाण्डित्यहेतुः।

अर्थ— जो दूसरे के अपकार करने में निरत रहते हैं, सदैव असत्य बोलते हैं अथवा जो अपवित्र व्रतधारी हैं वे ही कलियुग में वक्ता होंगे, कलियुग में वे भी वक्ता कहलायेंगे जो धृष्टतापूर्वक शास्त्र के प्रतिकूल व्यर्थप्रलाप करेंगे।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मरकट की नाईं।।

अर्थ—हे स्वामिन्! सब मनुष्य स्त्रियों के बस होकर नट और वानर के समान नृत्य करते हैं।

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।

सुभाषितरत्नभाण्डागारे—ज्ञानं गतं चारणे

अर्थ—कलियुग में ज्ञान दासों में होगा अर्थात् शूद्र द्विजों को उपदेश देंगे और यज्ञोपवीत धारण कर कुदान लेंगे।

सब नर काम लोभरत क्रोधी। बेद बिप्र गुरु संत बिरोधी।।

महानिर्वाणतंत्रे—कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः।
स्त्रीवलिगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः।।४३६।।

अर्थ—सब मनुष्य काम, क्रोध में रत रहेंगे और देव विप्र, गुरु तथा संतों के विरोधी होंगे। अधिकतर लोग स्त्री बालक गौ द्विजों के घाती और परस्त्री तथा परद्रव्य हरण करने वाले होंगे।

गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी।।

हितोपदेशे— गुणश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पतिं रतिज्ञं सधनं युवानम्।
विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरान्तरं शीलगुणादिहीनम्।।४३७।।

अर्थ— स्त्रियां (कलियुग में) गुणज्ञ, कीर्तिमान् मनोहर, रतिकुशल, धनवान् युवा पति को त्याग कर शीलगुणादिहीन दूसरे पुरुष को स्वीकार कर लेती हैं।

सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सृंगार नवीना।।

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियां भूषण हीन हैं, विधवा स्त्रियों के नित्य नवीन श्रृङ्गार होते हैं।

गुरुसिष बधिर अंध कर लेखा। एक न सुनहिं एक नहिं देखा।।

अर्थ—गुरु और शिष्य अंध और बधिर के समान हैं, एक सुनता नहीं और एक देखता नहीं अर्थात् अंधा गुरु देखता नहीं और बधिर शिष्य सुनता नहीं है।

हरइ सिष्यधन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई।।

विष्णुपुराणे— पणार्धार्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति तथास्पृहाम्।।४३८।।

अर्थ—जो गुरु शिष्य के पणार्ध व पणाधार्ध के लिये स्पृहा (लालच) करता है परन्तु शिष्य के शोक को नहीं हरता वह घोर नरक में जाता है।

मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरइ सोइ धर्म सिखावहिं।।

अर्थ—माता पिता बालकों को बुलाते हैं और उन्हें जिससे उदर पूर्ण हो वही काम सिखाते हैं।

दोहा—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभबस, करहिं बिप्र गुरुघात।।

कालौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव।
भागवते—मातरं पितरं भ्रातृन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा।

घ्नंतु ह्यसुतृपो लुब्धाः ....।।४३९।।
कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियप्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि।।४४०।।

अर्थ– फाल्गुन के महीने में बालकों के समान कलियुग में वेदान्ती होंगे। लोग अपने प्राण पोषण के लिये माता पिता भाई और सब सुहृदों का वध करेंगे। और भी कलियुग में मनुष्य एक कौड़ी के लिये मित्रता छोड़ कर शत्रुता करेंगे और सम्बन्धियों का वध करेंगे और स्वयं भी अपने प्रिय प्राणों को त्याग देंगे।

दोहा– बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुमतें कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि।।९९।।

विष्णुपुराणे–समानपौरुषं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ।।४४१।।
भागवते– शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपो वेषोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम्।।४४२।।

अर्थ–कलियुग में होने वाले विप्रों में सर्वसाधारण मनुष्य के समान चैतन्यता रह जायेगी। शूद्र दान लेंगे और तपस्वी के बहाने में अपनी जीविका चलायेंगे अधर्मी (पापी) मनुष्य उत्तम आसन (व्यासगद्दी) पर बैठ कर धर्म का उपदेश करेंगे।

परतिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर। देखेउँ मैं चरित्र कलिजुग कर।।

अर्थ–जो पराई स्त्री से व्यभिचार करने वाले, धोखेबाजी में चतुर, अज्ञान द्वेष और ममत्व में लिपटे हुए हैं। वे ही मनुष्य अद्वैतवादी जीवात्मा और परमात्मा में भेद न मानने वाले, ज्ञानी कहे जाते हैं। ऐसा चरित्र मैंने कलियुग में देखा ।

आप गये अरु औरनि घालहिं। जो कहुँ सतमारग प्रतिपालहिं।।
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूखहिं स्रुति करि तरका।।

अर्थ–आप तो गये ही हैं और दूसरों को भी बिगाड़ते हैं जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। जो तर्क कर वेद को दोष देते हैं वे एक एक नरक में एक एक कल्प पर्यन्त पड़ते हैं।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नारि मुई घर संपति नासी। मूँड मुडाइ होहिं संन्यासी।।

अर्थ–जो अधर्म वर्ण के तेली, कुम्हारा, श्वपच (भंगी) किरात, कोल कलवार हैं। ज्यों ही उनकी स्त्री मर गई घर में सम्पत्ति नष्ट हुई त्योंहि मूड़ मुढ़ा कर संन्यासी हो जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषलीस्वामी।।

अर्थ–वे ब्राह्मणों से पाँव पुजवाते हैं और अपना दोनों लोक (यह लोक, परलोक) अपने हाथ नष्ट कर देते हैं। ब्राह्मण निरक्षर, लालची, कामी आचारण भ्रष्ट, शठ कुलटा स्त्री के पति होते हैं।

सूद्र करहिं जप तप ब्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा।।

भागवते– शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपो वेषोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम्।।४४३।।

अर्थ–कलियुग में शूद्र दान लेने वाले होंगे और तप के बहाने से जीविका चलायेंगे, पापी पुरुष उत्तम आसन (व्यासगद्दी) पर बैठकर धर्मोपदेश करेंगे सब मनुष्य मनमाना आचरण करेंगे अनेकों प्रकार की अनीति होगी वह वर्णन नहीं की जा सकती।

दोहा– भये बरनसंकर सकल, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक बियोग।।

अर्थ–कलियुग में सब लोग मर्यादारहित और वर्णशंकर हो गये। पाप करते हैं दुःख भय, रोग, शोक, वियोग

पाते हैं।

स्रुतिसंमत हरिभक्तिपथ, संयुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोहबस,कल्पहि पंथ अनेक।।१००।।

अर्थ–वेद के मत अनुसार वैराग्य और ज्ञान से संयुक्त,हरिभक्ति का मार्ग है मनुष्य उसमें नहीं चलते, अज्ञानवश अनेकों पंथों की कल्पना करते हैं।

तोमरछंद–बहु दाम सवाँरहिं धाम जती। विषया हरि लीन गई बरती।।
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।
कुलवंत निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबला नहिं डीठ परी जब लौं।।

अर्थ–संन्यासी बहुत धन और घर सजाते हैं, उनमें वैराग्य नहीं रह गया, विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान और गृहस्थ दरिद्री होते हैं, हे तात ! कलियुग की लीला कही नहीं जाती है कुलीन सती स्त्रियों को निकाल देते हैं अच्छी चाल को त्याग कर घर में व्यभिचारिणी स्त्री लाते हैं पुत्र माता पिता को तब तक मानते हैं जब तक स्त्री का मुख नहीं देखते।

ससुरारि पियारि लगी जब तें। रिपु रूप कुटुम्ब भये तबतें।।
नृप पापपरायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।।

विष्णुपुरणे–कस्य माता पिता कस्य यथा कर्मानुगः पुमान्।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः।।४४४।।
भागवते– मातरं पितरं भ्रातृन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा।
घ्नन्तु ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि।।४४५।।

अर्थ–कलियुग में मनुष्य श्वसुर की ओर होकर किसकी माता है और किसका पिता है मनुष्य अपने कर्म के अनुसार जन्मादि सुख दुःख पाता है। ऐसा कहते हैं इस पृथ्वी पर उदर भरने वाले लोभी राजा लोग माता पिता, सुहृद और प्रजाओं को लालच वश प्राण ले लेते हैं।

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विजचिन्ह जनेउ उघार तपी।।
नहिं मान पुरानन्ह वेदहिं जो। हरि सेवक संत सही कलि सो।।

विष्णुपुराणे–ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः।

अर्थ–मलिन (नीच जाति वाला) भी धनवान मनुष्य कुलीन गिना जाता है, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणका चिह्न और वस्त्र विहीनता ही तपस्वी का लक्षण कलियुग में रह जायेगा। जो पुराण और वेद को नहीं मानता वही कलियुग में भगवद्भक्त, संत कहलाता है।

कबिबृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन दूषन ब्रात न कोपि गुनी।।
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।

दुर्भिक्षमेव सततं तथा क्लेशमनीश्वराः।
आत्मानं घातयिष्यन्ति ह्यनावृट्यादिदुःखिताः।।४४६।।

अर्थ–संसार में कवियों के वृन्द के वृन्द हैं, देने वाला कोई नहीं सुनाई देता अथवा देने वाला व कवि की कविता को सुनने वाला कोई नहीं है, गुणों में दोष लगाने वालों का समूह का समूह है परन्तु गुणी कोई नहीं है। कलियुग में दुर्भिक्ष और निरन्तर क्लेस बने रहेंगे इनको न सहन करने वाले अर्थात् दुर्भिक्ष और क्लेस को न सहन करने वाले अकाल बृष्ट्यादि से दुःखी हो आत्मघात करेंगे।

दोहा–सुनु खगेस कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद,ब्यापि रहे ब्रह्मंड।।

अर्थ–हे पक्षिराज! सुनो कलियुग में हठ, दंभ, द्वेष, पाखण्ड, काम, क्रोध, मद, लोभादि संसारभर में व्याप्त हो रहा है।

तामस धर्म करहिं सब, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बये न जामहिं धान।।१०१।।

अर्थ—मनुष्य, जप,तप,यज्ञ,व्रत,दान आदि धर्म तामसी वृत्ति से करते हैं। मेघ पृथ्वी पर वृष्टि नहीं करते और न बोने से धान ही जमता है।

तोटकछंद—अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा।।
सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता।मति थोरि कठोरि न कोमलता।।

विष्णुपुराणे—सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षयं गते।
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृताः।।४४७।।

अर्थ—सुवर्ण के आभूषण मणि रत्नादिक और वस्त्र न मिलने पर कलियुगी स्त्रियाँ केवल केशों से अपने को भूषित करेंगी। धर्म में तत्पर न रह कर वे मूर्खनी सुख चाहती हैं उनकी बुद्धि में कोमलता किञ्चित् मात्र भी नहीं है और कठोरता से (उनकी बुद्धि) परिपूर्ण है।

नर पीडित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं।।
लघु जीवन संबत पंचदसा। कलपांत न नास गुमान असा।।

श्रीमद्भागवते—क्षुतृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन न चिंतया।
त्रिंशत्विंशत्वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम्।।४४८।।

अर्थ—क्षुधा, प्यास, ब्याधि और संताप चिन्ता से ग्रसित मनुष्यों की कलियुग में तीस तथा बीस वर्ष की परमायुष्य होगी।

कलिकाल बिहाल किये मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा।।
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता।।
इरषा परुखाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता।।
सब लोग बियोग बसोक हये। बरनास्त्रम धर्म बिचार गये।।

अर्थ—कलिकाल ने मनुष्यों की बुरी दशा कर डाली, कोई बहिन बेटी नहीं मानते हैं। सन्तोष बिचार नहीं और न किसी में शान्ति है, सब जाति कुजाति मंगता हो गये। ईर्ष्या, कटुवचन और अत्यन्त लालचपन भरपूर हो रहा है, समता जाती रही सब लोग बियोग के गहरे शोक से नष्ट हुए है।, वर्ण और आश्रमों के धर्म विचार चले गये हैं।

दम दान दया नहिं जानपनी। जडता पर बंचनताति—घनी।।
तनपोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक ते जग मों बगरे।।

अर्थ—इन्द्रिय दमन, दान, दया और बुद्धिमानी नहीं है, सब में मूर्खता तथा दूसरे को ठगना बहुत ही बढ़ा है। सम्पूर्ण स्त्री पुरुष अपने शरीर के पालने वाले हैं और जो पराये कि निन्दा करते हैं वे संसार में फैल रहे हैं।

दोहा—सुनु ब्यालारि कराल कलि, मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर, बिनु प्रयास निस्तार।।
कृतयुग त्रेता द्वापर,पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम ते पावहिं लोग।।१०२।।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्।।८५०।।
भागवते—कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं ब्रजेत्।।४४९।।

अर्थ—सत्ययुग में विष्णुभगवान् के ध्यान करने वाले को, त्रेता में यज्ञों से यजन करने वालों को और द्वापर में पूजन करने वालों को जो फल प्राप्त होता है वह फल कलियुग में विष्णुभगवान् का नाम संकीर्तन करने से ही प्राप्त होता है। दोषों के निधि (खजाना) इस कलियुग का ग्रहण करने योग्य एक बड़ा गुण है, कि श्रीभगवान् के नाम संकीर्तन से ही मनुष्य संसार बन्धन से छूटकर परम पद को प्राप्त होता है।

कृतजुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।
त्रेता बिबिधिजज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि करम भव तरहीं।।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।
कलिजुग केवल हरिगुन–गाहा। गावत नर पावहिं भवथाहा।।

विष्णुपुराणे–ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्।।४५१।।

अर्थ–मनुष्य सतयुग में ध्यान करते हुये, त्रेता में यज्ञों के द्वारा यज्ञ भगवान् का यजन करते हुये, द्वापर में भगवान् की पूजा करते हुये, जिस फल को प्राप्त होते हैं उसी फल को कलियुग में केशव भगवान् के गुणानुवाद गान करने से प्राप्त करते हैं।

कलिजुग जोग न जज्ञ न ज्ञाना। एक अधार राम गुनगाना।।
सब भरोस तजि जो भज रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं।।
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।।

महानिर्वाणतंत्रे–कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे।
निस्तारबीजमेतावद् ब्रह्ममंत्रस्य साधनम्।।४५२।।
रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैक भेषजम्।।४५३।।

अर्थ–पापमय घोर, तपोहीन, अपार कलियुग में ब्रह्म मंत्र का साधन करना इतना ही निस्तार बीज है। सम्पूर्ण पापों के शान्ति करने के लिये औषधि समान रामनाम जपने वालों को कहीं से भी भय नहीं प्राप्त होता।

कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होइ नहिं पापा।।

अपरे तु युगे देवि पुण्यं पापं च मानसम्।
नृणामासीत्कलौ पुण्यं केवलं न तु दृष्कृतम्।।४५४।।

अर्थ– हे देवि! अपर (सत्ययुग, द्वापर,त्रेता) युगों में मानसिक पुण्य और पाप होता है परन्तु कलियुग में केवल मानसिक पुण्य होता है किन्तु मानसिक पाप नहीं होता।

दोहा–कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गान बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास।।

भागवते–कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।।४५५।।

अर्थ–सतयुग, त्रेता, द्वापर के मनुष्य कलियुग में अपनी उत्पत्ति चाहते हैं क्योंकि कलियुग में मनुष्य नारायण परायण होवेंगे।

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे, दान करइ कल्यान।।१०३।।

विष्णुपुराणे–ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमध्वरः।
द्वापरे यज्ञमेवाहु र्दान मेकं कलौयुगे।।४५६।।

अर्थ–सत्ययुग में ध्यान त्रेता में ज्ञान यज्ञ, द्वापर में यज्ञ, कलियुग में केवल दान ही श्रेष्ठ है।

नित जुग होहिं धर्म सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे।।
सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।

भागवते–प्रभवन्ति यदा सत्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च।
तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रुचिः।।४५७।

अर्थ–जिस समय मन बुद्धि और इन्द्रियां सत्व गुण में अधिकतर प्रवृत्ति होवें उस समय सत्ययुग जानना चाहिये, जिस सत्ययुग में मनुष्यों की रुचि ज्ञान में और तप में अधिक होती है।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।

यदा धर्मार्थकामेषु भक्ति र्भवति देहिनां।

तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन्।।४५८।।

अर्थ–हे बुद्धिमन् ! जिस समय धर्म, अर्थ, काममें मनुष्यों की भक्ति हो तब रजोवृत्तिप्रधान त्रेतायुग जानिये।

बहु रज सत्व स्वल्प कछु तापस। द्वापर धर्म हरष भव मानस।।

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानोदम्भोऽथ मत्सरः।

कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः।।४५९।।

अर्थ–जिस समय लोभ, असन्तोष, मान दम्भ, मत्सर और काम्यकर्मों में मनुष्यों की प्रवृत्ति होती है उस समय राजस्तमों गुणी द्वापर युग जानना चाहिये।

तामस बहुत रजांगुन थोरा। कलिप्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।।

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम्।

शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः।।४६०।।

अर्थ– जिसमें माया, असत्य, आलस्य, निद्रा, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय, दैन्य भाव मनुष्योंको अधिकतर प्राप्त हो, उसे तमोगुणी कलियुग जानना चाहिये। पंडित लोग युगधर्म मनमें विचार कर अधर्म त्याग कर धर्म में प्रवृत्त होते हैं।

काल धर्म नहिं ब्यापहि तेही। रघुपति चरन प्रीति रति जेही।।

नटकृत कपट बिकट खगराया। नटसेवकहिं न ब्यापइ माया।।

अर्थ– कलिधर्म उसे नहीं व्याप्त होता जिस की प्रीति रघुनाथजी के चरण में है हे खगेश! जैसे नट का किया हुआ कपटयुक्त बिकट (शिरश्छेदनादि) चरित्र नट के शिष्य को नहीं व्याप्त होता, तैसे ही कलियुग की माया भगवत् भक्तों को नहीं व्याप्त होती।

दोहा– हरि मायाकृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।

भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मन माहिं।।

अर्थ– हरि की माया के किये हुये दोष और गुण हरि के भजन बिना नहीं जाते ऐसा मनमें विचार कर सम्पूर्ण कामनाओं को अथवा सब कामों को छोड़ कर श्रीरामचन्द्रजी का भजन करना चाहिये।

तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस ।

परेउ दुकाल बिपत्तिबस, तब मैं गयउँ बिदेस।।१०४।।

अर्थ– हे पक्षिराज! उस कलिकाल में बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा जब दुकाल पड़ गया तब विपत्ति बस मैं परदेश गया।

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी।।

गये काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई।।

अर्थ– हे गरुड़ सुनो! मैं दीन, मलिन, दरिद्र और दुःखी हो उज्जैन को गया, कुछ समय बीतने पर मुझे सम्पत्ति मिली तब मैं फिर वहाँ ही महादेवजी की सेवा करने लगा।

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काज न दूजा।।

परम साधु परमारथ बिंदक। संभुउपासक नहिं हरिनिंदक।।

अर्थ– एक ब्राह्मण था, वह वैदिक विधि से सदा शिव जी की पूजा करता था, उसको दूसरा कोई काम न था। वह श्रेष्ठसाधु था, परमार्थ का जानने वाला, शिवजी का उपासक था। विष्णु भगवान् का निन्दक नहीं था।

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता।।

बाहिज नम्र देखि मोहिं साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं।।

अर्थ– उनकी सेवा में छल पूर्वक करना था वे दयालु, ब्राह्मण बड़े ही नीति के स्थान थे। हे स्वामिन्! मुझे बाहर से नम्र देखकर वे ब्राह्मण, पुत्र के समान पढ़ाते थे।

संभुमंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा।सुभ उपदेस बिबिधिबिधि कीन्हा।।

जपउँ मंत्र सिवमंदिर जाई। हृदय दंभ अहमिति अधिकाई।।

अर्थ– मुझे ब्राह्मण श्रेष्ठ ने शिवमंत्र का उपदेश दिया और नाना प्रकार शुभदाई शिक्षा का वर्णन किया मैं शिवजी के मंदिर में जाकर मंत्र जपता था, परन्तु हृदय में दम्भ और अहंमन्यता बढ़ती जाती थी कि मेरे समान शिवभक्त कोई नहीं है।

दोहा–मैं खल मलसंकुल मति,नीच जाति बस मोह।

हरिजन द्विज देखे जरउँ, करउँ बिष्णु कर द्रोह।।

अर्थ– मैं दुष्ट पाप से भरी बुद्धि वाला, नीच जाति, अज्ञानता वश हरि भक्त ब्राह्मणों को देखकर जलता था और विष्णु का द्रोह करता था।

सो०–गुरु नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम।

मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति कि भावई।।

अर्थ– गुरुजी मेरा आचरण देख कर दुःखी होते थे और मुझे नित्य समझाते थे उनके समझाने से मुझे बड़ा क्रोध उत्पन्न होता था, क्या अभिमानी मनुष्य को नीति अच्छी लगती है ? (कदापि नहीं)

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई। मोहि बहु भाँति सिखाई।।

सिव सेवा कै सुत फल सोई। अबिरल भगति रामपद होई।।

अर्थ– एक बार गुरुजी ने मुझे बुला लिया और मुझे कई प्रकार से नीति सिखाई उन्होंने कहा हे पुत्र! शिवजी की सेवा करने का यही फल है कि रामचन्द्रजी के चरणों में सतत भक्ति उत्पन्न हो।

रामहिं भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता।।

जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी।।

अर्थ– हे तात! शिव और ब्रह्मा भी रामचन्द्रजी का भजन करते हैं, नींच मनुष्य की तो बात ही कितनी है जिन के चरण के ब्रह्मा और शिवजी भी प्रेमी हैं तू अभागी उनसे द्रोह कर सुख चाहता है।

हर कहँ हरिसेवक गुरु कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ।।

अधम जाति मैं बिद्या पाये। भयउँ जथा अहि दूध पिआये।।

चाणक्यनीतौ–उपदेशोहि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये।

पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्।।४६१।।

अर्थ– हे पक्षिराज ! गुरुजी ने शंकरजी को विष्णु भगवान् का सेवक कहा यह सुन कर मेरा हृदय जल गया। मूर्खों को उपदेश देना, उनके क्रोध को बढ़ाने के लिये है शांति के लिये नहीं, जैसे कि सर्पों को दूध पिलाना केवल उनके विष को बढ़ाने के लिये ही है।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरु कर द्रोह करउँ दिन राती।।

अतिदयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा।।

अर्थ– मैं मानी, कुटिल, अभागी, कुजाति दिन रात्रि गुरु का द्रोह करता था। गुरुजी दयालु थे उनके किञ्चिन्मात्र भी क्रोध नहीं था बार–बार मुझे सुन्दर ज्ञान सिखाते थे।

जेहि तें नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा।।

धूम अनलसंभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घनपदवी पाई।।

मेघदूते– धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।

अर्थ– नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है वह पहले हठात् उसीका नाश करता है, हे भ्रातर! धुआँ, अग्नि, जल, वायु के समूह को मेघ कहते हैं। वही मेघ अपने कारण रूप अग्नि को बुझा देता है।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पगप्रहार नित सहई।।

मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई। नृपकिरीट पुनि नयनन्ह परई।।

माघे–पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।

स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः।।४६२।।

अर्थ– पांव से आहत (खोदी गई) जो धूलि उठ कर सिर पर चढ़ती है।

सुनु खग खगपति समुझि प्रसंगा। बुधनहिं करहिं अधम कर संगा।।

कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीति।।

अर्थ– हे पक्षिराज ! यह प्रसंग सुन और समझ कर इन्द्रिय लोलुप तथा उदर भरने वाले असज्जनों का संग नहीं करना चाहिये। कवि, पंडित ऐसी नीति गाकर कहते हैं कि न खल के साथ लड़ाई किये भलाई है न प्रीति ही किये भलाई है। उनका संग करने वाला निखंड अंधकार में गिरता है जैसे कि अंधे के पीछे चलता हुआ अंधा गिरता है।

उदासीन नित रहिय गोसाईं। खल परिहरिय स्वान की नाईं।।

मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरु हित कहहिं न मोहि सुहाई।।

अर्थ– हे गोसांई! नित्यप्रति उदासीन बल्कि रहिये परन्तु खल को श्वान (कुत्ते) के समान त्याग दीजिये। मैं खल था मेरे हृदय में कपट और कुटिलाई भरी थी, गुरु हित की कहते थे पर वह बात मुझे नहीं सुहाती थी।

दोहा–एक बार हरमंदिर, जपत रहेउँ सिव नाम।

गुरु आयउ अभिमान तें, उठि नहिं कीन प्रनाम।।

अर्थ– एक बार शिवालय में शंकरजी के नाम को जपता था इसी समय गुरुजी आये, गुरुजी को उठकर मैंने प्रणाम नहीं किया।

गुरु दयाल नहिं कछु कहेउ, उर न रोष लवलेस।

अतिअघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सके महेस।।१०६।।

अर्थ– परन्तु गुरुजी बड़े दयालु थे कुछ भी नहीं कहा, हृदय में किञ्चित्मात्र भी क्रोध नहीं था, परन्तु गुरु के अपमान करने से जो पाप हुआ था उसे शंकरजी नहीं सह सके।

मंदिर माँझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अज्ञ अभिमानी।।

जद्यपि तब गुरु के नहिं क्रोधा। अतिकृपाल उर सम्यक बोधा।।

अर्थ– मन्दिर से वाणी हुई, अरे हतभाग्य नीच अभिमानी। यद्यपि तेरे गुरु को थोड़ा भी क्रोध नहीं है चित्त से बड़ी कृपा करते हैं पूर्ण ज्ञानी हैं ज्ञानी को मानापमान बराबर होता है।

तदपि साप सठ देइहउँ तोही। नीति बिरोध सुहाइ न मोही।।

जौं नहिं दंड करउँ खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा।।

अर्थ– हे मूर्ख ! तो भी मैं तुझे शाप दूंगा, नीति के विरोध काम करने वाला मुझे नहीं सुहाता, रे शठ! जो मैं तुझे दंड नहीं दूंगा तो मेरा श्रुतिमार्ग भ्रष्ट हो जायेगा।

जे सठ गुरु सन इरषा करहीं। रव रव नरक कोटि जुग परहीं।।

त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जनम भरि पावहिं पीरा।।

रामाश्वमेधे–गुरोरवज्ञां यः कश्चित् कुरुते ज्ञानदुर्बलः।

न तस्य नरकान्मुक्तिः कल्पान्तेऽपि भविष्यति।।४६३।।

पाद्मे–प्रयाजानां मखानां च कन्यानां सुहृदाँस्तथा।

साधूनां गुरुणाञ्च दूषका निरयगामिनः।।४६४।।

अर्थ–जो मूर्ख गुरुका अपमान करता है। उसका कल्पांत में भी नरक से उद्धार नहीं होता। यज्ञ करने वाले का यज्ञ का, कन्या तथा सुहृदों का साधु और गुरु की निन्दा करने वाला नरकगामी होता है।

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी।।

महा बिटप कोटर महँ जाईं। रहु अधमाधम अधगति पाई।।

अर्थ– हे पापी! जैसा तू अजगर की तरह से गुरु को देख कर बैठा रहा। इस कारण अरे नीच ! हीनमतियुक्त होकर सर्प हो जा। महावृक्ष के खोखल में जाकर महा अधम गति को प्राप्त हो।

दोहा– हाहाकार कीन्ह गुरु, दारुन सुनि सिवस्राप।
कंपित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप।।

अर्थ– शिवजी का कठोर शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया और मुझे कांपता हुआ देखकर उनके मनमें बड़ा दु:ख उत्पन्न हुआ।

करि दंडवत सप्रेम द्विज, सिव सनमुख करजोरि।
बिनय करत गदगद गिरा, समुझि घोर गति मोरि।।१०७।।

अर्थ– प्रेम पूर्वक गुरुजी ने दंडवत करके शिवजी के सामने हाथ जोड़कर मेरी घोर मति समझ कर गद्‌गद वाणी से विनय करने लगे।

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपम्। बिभुं ब्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्। चिदाकाशमाकाशवासंभजेऽहम्।।
निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयम्। गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम्।।
करालं महाकालकालं कृपालम्। गुणागारसंसारपारं नतोऽहम्।।
तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरम्। मनोभूतकोटिप्रभाश्रीशरीरम्।।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगंगा। लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा।।
चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालम्। प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालम्।।
मृगाधीशचर्म्माम्बरं मुण्डमालम्। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।

महानिर्वाणतंत्रे– ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय।
नमो द्वैततत्वाय मुक्तिप्रदाय नमोब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय।।४६५।।
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।।४६६।।
स्कन्धे–तमीश्वरं पञ्चवक्रं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम्।
आलम्बितापिंगजटाकलापं मध्यं गतं भास्करकोटितेजसम्।।४६७।।
मृणालगौरं गजचर्मवाससं गंगातरंगोक्षितमौलिदेशम्।
नागेन्द्रहारावलिकंकलोर्मिकाकिरीटकोट्यंगदपिंगलोज्वलम्।।४६८।।

अर्थ– सत्य स्वरूप, सब लोगों के अधिष्ठान स्वरूप आपके लिये नमस्कार है, चैतन्य रूप विराट स्वरूप आपके लिये नमस्कार है द्वैततत्व (प्रकृति पुरुष स्वरूप) मुक्ति देने वाले, ब्रह्म, सर्वव्यापी, निर्गुण, आप के लिये नमस्कार है।

आप अद्वितीय शरण्य, आप अद्वितीय वरेण्य, आप अद्वितीय जगत् के कारण और विश्वरूप हो। आप अद्वितीय जगत् के कर्ता, पालनकर्ता, संहरता और आप ही अद्वितीय परं निश्चल निर्विकल्प हो।

पञ्चमुख, त्रिनेत्र, पिनाकी चन्द्रकला भूषण भूषित, लम्बायमान है पिंग वर्ण की जटा कलाप जिसके ऐसे करोड़ सूर्य भगवान् के तेज के समान तेज वाले मृणाल गौर गज चर्म ही है वस्त्र जिनके गंगा जी की तरंग से अभिषिचित है शिर प्रदेश जिनका गजमुक्ता को धारण करने वाले कल कल शब्द करने वाली जो लहरें यही हैं किरीट उनके प्रान्त भाग से और अंगद (विजायठ) से पिंगल और उज्ज्वल वर्णवाले श्री शंकरको प्रणाम है।

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशम्। अखण्डंअजं भानुकोटिप्रकाशम्।।
त्रयः शूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम्।।
कलातीत कल्याण कल्पांतकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।।
चिदानन्दसन्दोह मोहापकारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।।
न यावद्‌उमानाथपादारबिन्दम्। भजन्तीह लोक परेवानराणाम्।।
न तावत्सुखंशान्ति संतापनाशम्। प्रसीद प्रभो सर्वभूतादिवासम्।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजाम्। नतोऽहंसदासर्वदाशम्भुतुभ्यम्।।
जराजन्मदु:खौघतातप्यमानम्। प्रभोपाहिआपन्नमामीशशम्भो।।

महानिर्वाणतंत्रे– भयानां भयं भीषणं भीषणनां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकं परेषां परं रक्षकं रक्षकानाम्।।४६९।।
परेशं प्रभो सर्वरूपप्रकाशिन्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्यसत्य।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्व जगद्भासकाधीश पायादपायात्।।४७०।।
तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामस्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः।
तदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवांभोधि पोतं शरण्यं ब्रजामः।।४७१।।
पाद्मे– दण्डप्रणामैः सततं नमामः जयेतिवाचाथ तदुक्तवानहं।
दासोऽस्मि भृत्योस्मि पुरस्सतेसदा भक्ति न जाने न च भावमुत्तमम्।।४७२।।
निरंतरं मामिहचागतो हरप्रपाहि वै त्वं शरण्यं प्रपन्नम्।।४७३।।

अर्थ– भयों के भय, भीषणों के भीषण, जीवों के गति, पवित्रों के पवित्र महोच्चपद के अधिपति, परों के पर, रक्षकों के भी रक्षक, अद्वितीय आप ही हो।

हे परेश! हे प्रभो! हे व्यापक! हे अप्रकाशित तत्त्व! हे जगद्‌भासकाधीश्वर! विघ्न से मेरी रक्षा करो।

उस अद्वितीय आप का स्मरण करता हूँ जप करता हूँ और संसार के साक्षिरूप आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। आप संसार के अद्वितीय निधान (उपादान) कारण निराश्रय, संसार समुद्र के नौकास्वरूप ईश आपकी शरण में हूँ।

मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ आपकी जय हो, उस समय मैंने ऐसा कहा कि मैं आपका दास हूँ भृत्य हूँ आपकी भक्ति को नहीं जानता हूँ न उत्तम भाव ही को जानता हूँ हे हर ! अब यहाँ आपकी शरण में आया हूँ इस शरणार्थी प्रपन्न की आप निरन्तर रक्षा करें।

श्लोक–रुद्राष्टमिदं प्राक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति।।

दोहा– सुनि बिनती सर्वज्ञ सिव, देखि बिप्र अनुराग।
मंदिर नभ बानी भई, द्विजबर अब बर माँगु।।

अर्थ– विनय सुनकर और सर्वज्ञ शिव में ब्राह्मण का अनुराग देख कर मंदिर में से आकाशवाणी हुई, हे द्विजवर, वर मांग।

जौं प्रसन्न प्रभु मोपर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद पद्म भगति दृढ़, पुनि दूसर बर देहु।।

पाद्मे–यदि देव वरो देयो मम दीनस्य वै त्वया।
प्रयच्छ त्वं निजे पादपद्मे भक्तिमनुत्तमाम्।।४७४।।

अन्यच्च–

यदि प्रसन्नो देवेश भक्तोयं ब्राह्मणो मम।
अस्यानुग्रह मिच्छामि कृतं किञ्चित्सुखोदयम्।।४७५।।

अर्थ–हे देव ! यदि इस दीन को आप वरदान देना चाहते हैं तो अपने चरणकमल में श्रेष्ठ भक्ति दीजिये। हे देवेश! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो यह ब्राह्मण मेरा भक्त है अतः इसके ऊपर सुखपूर्वक कृपा कीजिये।

तब मायाबस जीव जड़, संतत फिरहिं भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिंधु भगवान्।।

अर्थ–यह जड़ जीव आपकी माया के वश होकर सदा भूला फिरता है हे प्रभो! उनपर क्रोध न करिये, आप कृपा के सिन्धु हैं, भगवान् हैं अर्थात् षट्ऐश्वर्य युक्त हैं।

संकर दीनदयाल अब, एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरही काल।।१०८।।

अर्थ– हे दीन दयाल शंकरजी! आप इस पर दयालु होवो। हे नाथ! थोड़े काल में जिसमें इसका शाप अनुग्रह (शान निवारण) हो जाय।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।।

बिप्रगिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभ बानी।।

अर्थ– हे कृपा निधान! अब वही कीजिये जिसमें इसका परम कल्याण हो। पराये के हित संयुक्त ब्राह्मण की वाणी सुनकर यह आकाशवाणी हुई कि ऐसा ही हो।

जदपि कीन्ह यह दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह कोप करि सापा।।
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेखी।।

अर्थ– यद्यपि इसने दारुण पाप किया, इसी से मैंने फिर क्रोध करके शाप दिया। तो भी तुम्हारी साधुता देख कर इस पर विशेष कृपा करूँगा।

छमासील जे परउपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी।।
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जनम सहस्त्र अवसि यह पाइहि।।

भागवते–न ब्राह्मणै स्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परन्तु।
यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाहमश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे।।४७६।।
भारते– तुष्टः कस्यचिदेवेहि मिथ्या वाङ्न भवेन्मम।

अर्थ– मैं ब्राह्मणों के समान दूसरे प्राणी की गणना नहीं करता और न ब्राह्मणों के समान दूसरे को देखता हूँ। जिन ब्राह्मणों में मनुष्यों से श्रद्धा के साथ हवन किये गये (ब्राह्मणों को खिलाया गया) पदार्थ का मैं जैसा खाता हूँ वैसा अग्निहोत्र में हवन किये गये पदार्थ को मैं नहीं खाता। परन्तु हे विप्रजी! मेरा शाप अन्यथा न होगा, यह एक हजार जन्म अवश्य धारण करेगा।

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई।।
कवनेहु जनम मिटइ नहिं ज्ञाना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रमाना।।

अर्थ– जन्म लेते और मरते समय असह्य दुःख होता है वह इसे किञ्चिन्मात्र भी न व्यापेगा और न किसी जन्म में इसका ज्ञान ही नष्ट होगा, अरे शूद्र! सुन मेरा वचन प्रामाणिक(सत्य) है।

रघुपतिपुरी जनम तव भयउ। पुनि तैं मम सेवा मम दयऊ।।
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे। रामभगति उपजइ उर तोरे।।

पाद्मे– लब्धा जन्म हरेर्पुर्य्यां त्वयाहमर्चितोऽभवम्।
मदीयानुग्रहेणैव लब्धभक्ति र्भविष्यति।।४७७।।

अर्थ– भगवान् की पुरी में जन्म लेकर तूने मेरी अर्चा की है अतः मेरी अनुग्रह से तुझे रामचन्द्रजीकी भक्ति प्राप्त होगी।

सुनु मम बचन सत्य अति भाई। हरितोषक व्रत द्विज सेवकाई।।
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना।।

अर्थ– हे भ्राता! अब मेरे सत्य वचन सुनिये, ब्राह्मण की सेवा करना भगवान् के प्रसन्न करने का व्रत है। अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना। इनको सदा ईश्वर के समान जानना।

इंद्रकुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई।।

भागवते– नाहं विशंके सुरराजवज्रान्नत्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात्।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छंके भृशं ब्रह्मकुलापमानात्।।४७८।।

अर्थ–मैं न वैसा इन्द्र के वज्र से शंका करता हूँ न शंकरजी के त्रिशूल से न यमराज के दंड से न अग्नि से न सूर्य से न चन्द्र वायु तथा कुबेर के अस्त्र ही से डरता हूँ जैसा कि ब्राह्मण कुल के अपमान से डरता हूँ।

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
अउरउ एक आसिषा मोरी। अप्रति–हत गति होइहि तोरी।।

अर्थ–ऐसा विचार मन में रखना तो तुमको संसार में कुछ भी दुर्लभ न रहेगा। एक और भी मेरा आशीष है कि तुम्हारी गति कहीं रुकने वाली न होगी अर्थात् इच्छानुसार सब लोकों में तुम जा सकोगे।

दोहा–सुनि सिवबचन हरषि गुरु, एवमस्तु इति भाखि।

मोहिप्रबोधि गयउ गृह,संभुचरन उर राखि।।

अर्थ–शिवजी के वचन सुनकर गुरुजी प्रसन्न होकर बोले कि यह ऐसा ही होगा। मुझे समझाकर और शंकरजी के चरणों को हृदय में रखकर वे घर को चले गये।

प्रेरित काल बिंधिगिरि, जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गये कछु काल।।

अर्थ–काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल पर जाकर सर्प हुआ, फिर कुछ काल बीतने पर बिना परिश्रम ही उस शरीर को त्याग दिया।

जोइ तन धरउँ तजउँ पुनि, अनायास हरि जान।
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान।।

भगवद्गीतायाम्– वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।४७९।।

अर्थ–मनुष्य जीव प्रकार जीर्णवस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र को ग्रहण करते हैं, वैसे ही जीव भी जीर्ण शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करता है।

सिव राखी स्रुतिनीति अरु, मैं नहिं पाव कलेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिधितनु, ज्ञान न गयउ खगेस।।१०९।।

अर्थ–शिवजी ने वेदनीति की रक्षा की और मैंने क्लेश नहीं पाया। हे पक्षिराज! इस प्रकार बहुत से शरीर धारण किया, किन्तु मेरा अज्ञान नहीं गया अर्थात् प्रत्येक जन्मों की सुधि अब तक बनी है।

त्रिजग देव तो नर तनु धरऊँ। तहँ तहँ रामभजन अनुसरऊँ।।
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ।।

अर्थ– तिर्यक् (सर्पादिक) योनियों में जो–जो शरीर मैंने धारण किया वहाँ–वहाँ रामचन्द्रजी की भक्ति का अनुसरण किया।

धरमदेह मैं द्विज कै पाई। सुर दुर्लभ पुरान स्रुति गाई।।
खेलेउँ तहाँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला।।

अर्थ– अन्तिम देह मैंने ब्राह्मण की पाई जो देवताओं को दुर्लभ है ऐसा पुराण और वेद कहते हैं। वहाँ बालाकों के संग मिलकर रघुनाथजी की सब लीलाओं को करता था।

प्रौढ़ भये मोहि पिता पढ़ावा। समुझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा।।
मन तें सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी।।

अर्थ– बड़े होने पर पिताजी ने मुझे पढ़ाया उनका पढ़ाया (पाठ) समझता सुनता और विचारता था परंतु वह मुझे अच्छा नहीं लगता था, मेरे मन की सारी वासनायें दूर हो गईं। केवल रामचन्द्रजी के चरणों में लग्न लग गई।

कहु खगेस अस कौन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहिं त्यागी।।
प्रेम मगन मोहिं कछु न सुहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई।।

भरद्वाज रामायणे–को वा एवं विधोमन्दस्त्यक्त्वा धेनुं पयस्विनीम्।
रासभीं क्षीरसंपन्नाम् सेवतेस्म फलाशया।।४८०।।

अर्थ– कौन सा ऐसा अभागी पुरुष है जो कि पयस्विनी कामधेनु गौ को छोड़कर अधिक दूध देनेवाली गधी का फल(दूध) की आशा से सेवन करेगा। प्रेम में निमग्न रहने के कारण मुझे कोई अन्य विद्या नहीं सुहाती थी।

भये कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जन त्राता।।
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आस्रम जाइ जाइ सिर नावउँ।।

पितर्युपरिते पश्चात्तपस्तुप्तुं वनंगतः।
तत्राश्रमाण्यनेकानि पश्यतिस्म तपस्विनाम्।।४८१।।

अर्थ–माता पिता के मरजाने के पश्चात् तप करने के लिए वन को गया वहाँ मुनियों के आश्रमों (निवास स्थानों) को देखा।

बूझउँ तिनहि रामगुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा।।

सुनत फिरउँ हरिगुन अनुबादा। अब्याहत गति संभुप्रसादा।।

अर्थ–उन लोगों से श्रीरामचन्द्र के गुणानुवाद को पूछता था। हे पक्षिराज! वे जो (रामचरित्र) कहते थे उसे सुनकर हर्षित होता था।

छूटि त्रिबिध इर्षना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी।।

रामचरन बारिज जब देखेउँ। तब निज जनम सुफल करि लेखेउँ।।

अर्थ– मेरी तीनों प्रकार (पुत्र,धन,स्त्री) की गहरी इच्छायें छूट गईं। और हृदय में एक बड़ी लालसा बढ़ी, कि जब श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों का दर्शन करूँगा तब अपने जन्म को सफल कर मानूंगा।

जेहि पूछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूत मय अहई।।

निर्गुन मत नहिं मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई।।

अध्यात्मे–आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।

सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्।।४८२।।

अर्थ–आनन्द स्वरूप, निर्मल, शान्त, निर्विकार, मायारूपी मल से रहित, सर्वव्यापी, वह ब्रह्म स्वयंप्रकाश और निष्पाप है परन्तु यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। मेरे हृदय में तो सगुण ब्रह्म के ऊपर अधिक प्रीति थी।

दोहा–गुरु के बचन सुरति करि, रामचरन मन लाग।

रघुपति जस गावत फिरउँ, छन छन नव अनुराग।।

अर्थ– गुरुजी के वचन का स्मरण कर के मेरा मन रघुनाथजी के चरणों में लग गया, रामचन्द्रजी का यश गाता फिरता था, क्षण–क्षण में नूतन प्रेम होता था।

मेरुसिखर बटछाया, मुनि लोमस आसीन।

देखि चरन सिर नायउँ, बचन कहेउँ अतिदीन।।

रामाश्वमेघे–तत्र वीक्ष्य मुनिश्रेष्ठमूचे हुतहुताशनम्।

प्रणम्य दण्डवत् तस्य चरणौ पापहारिणौ।।४८३।।

अर्थ–वहाँ पर अग्नि में हवन कर चुकने के बाद बैठे हुये उन मुनि श्रेष्ठ को देखा और पाप को दूर करने पहले उनके चरण युगल को दंडवत प्रणाम करके मैंने कहा।

सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपाल खगराज।

मोहि सादर पूछत भये, द्विज आयउ केहिकाज।।

अर्थ–हे पक्षिराज! मेरे कोमल विनम्र वचन सुनकर कृपालु मुनि ने मुझ से सादर पूछा, हे द्विज! किस लिये आये हो।

तब मैं कहा कृपानिधि, तुम्ह सर्वज्ञ सुजान।

सगुन ब्रह्म आराधना, मोहि कहहु भगवान्।।११०।।

अर्थ– तब मैंने कहा, हे कृपानिधे! आप सब के दाता और प्रवीण हैं, हे भगवन्! सगुणब्रह्म की उपासना मुझ से कहिये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा।।

ब्रह्म ज्ञान रति मुनि बिज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी।।

अर्थ– हे पक्षिराज! तब मुनीन्द्र ने रघुनाथजी के गुणों की कुछ गाथा सादर कही, वे विज्ञानी मुनि ब्रह्म ज्ञानरत मुझे परम अधिकारी जानकर।

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।।

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।।

मनगोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुखरासी।।

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीच इव गावहिं बेदा।।

महानिर्वाणतंत्रे–निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः।
गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदृग्प्रभुः।।४८४।।
स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः।
स्वप्रकाशः सदापूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः।।४८५।।
लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनस गोचरम्।
सवेत्ति विश्वं सर्वज्ञः तं न जानाति कश्चन्।।४८६।।

अर्थ– वे गुरुजी ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि ब्रह्म निर्विकार, निराधार, अशेष, आकुलता रहित, गुणातीत, सर्वसाक्षी, सर्वद्रष्टा और सामर्थ्यवान् है, वह अद्वितीय, सत्तारूप है, वह अद्वितीय सत्यस्वरूप, परात्पर, स्वप्रकाश, सदापूर्ण, सत् चैतन्य आनन्द (सच्चिदानन्द) स्वरूप लक्षण वाला है, लोक से परे संसार का कारण वाणी मन और इन्द्रिय से बाह्य संसार रूप, कोई भी ज्ञाता उसको नहीं जान सकता, सो तू वही है उससे और तुझ से भेद नहीं है जल और लहर के समान ईश्वर और जीव की विभिन्नता है ऐसा वेद गान करते हैं।

बिबिधि भाँति मुनि मोहि समुझावा। निर्गुनमत मम हृदय न आवा।।
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासक कहहु मुनीसा।।

भागवते–अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे।
तन्मूलमव्यक्तमगाध बोधं पृच्छामहे त्वात्मभवात्मभूतम्।।४८७।।
स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुरणः।।४८८।।

अर्थ– आप से बतलाये गये विषय मेरे लिये अलं (पर्याप्त) हैं तो भी मेरी आत्मा सन्तुष्ट नहीं है, इस कारण प्रच्छन्न मूल कारण को, ब्रह्मपुत्र अगाधबोध आपसे पूछता हूँ आप समस्त गुह्य (प्रच्छिप्त) विषय को जानते हो क्योंकि आपने पुराण पुरुष की उपासना की है।

रामभगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना।।
सो उपदेस करहु करि दाया। निज नयनन्ह देखउँ रघुराया।।

अर्थ– हे प्रवीण मुनीश! रामचन्द्रजी की भक्ति जलरूप है मेरा मन मछली रूप है तो किस प्रकार अलग हो सकता है दया करके वह उपदेश कीजिये जिससे कि निज नेत्रों से श्रीरघुनाथजी को देखूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुनमत निर्गुन रूपा।।

अर्थ– पहले आँख भरकर अवधेशजी का दर्शन करूंगा, तब निर्गुण ब्रह्मका उपदेश सुनूंगा। मुनिराज ने यह सुनकर अनुपम हरि कथा कही उस कथन में सगुण मत का खंडन करके निर्गुण मत का निरूपण किया गया है।

तब मैं निर्गुनमति करि दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी।।
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनितन भये क्रोध के चीन्हा।।

अर्थ–तब मैं निर्गुण मत को दूर कर बड़े हठ से सगुण का निरूपण करने लगा यहाँ तक कि मैंने उत्तर प्रत्युत्तर तक दिये तब मुनि (लोमशजी के) हृदय में क्रोध का चिह्न होने लगा।

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये। उपज क्रोध ज्ञानिहु के हिये।।
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन तें होई।।

अर्थ– हे प्रभो सुनिये! बहुत आज्ञोल्लंघन (अनादर) करने से ज्ञानियों के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है यदि कोई अत्यन्त संघर्षण (दो चन्दन की लकड़ियों को परस्पर रगड़) करे तो चन्दन से अग्नि प्रकट होती है।

दोहा–बारंबार सकोप मुनि, करइ निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठि तब, करउँ बिबिध अनुमान।।

स्कान्दे– पुनर्पुनः सरोषेण निर्गुणब्रह्मनिर्णयः।
कृतस्तेन मुनीन्द्रेण नाबोधि विष्णुवाहन।।४८९।।

अर्थ– हे विष्णु वाहन! कोप युक्त उन मुनि ने निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन मुझ से बार–बार किया, परन्तु उसे मैं नहीं समझ सका।

द्वैत बुद्धि बिनु क्रोध किमि, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायाबस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान।।१११।।

अर्थ–बिना द्वैत बुद्धि के क्रोध नहीं होता, बिना अज्ञान के द्वैतबुद्धि नहीं होती, जड़ जीव माया के वश होने से परिच्छिन्न (अति दुर्बल) है अतः जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है? (कदापि नहीं)

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके।।
परद्रोही कि होई निःसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका।।

संसारसंरक्षणतत्पराणां दुःखं कथं स्यात्खलु सज्जनानाम्।
चिन्तामणिस्पर्शनतो दरिद्रता कुतोनुकीर्ति भुवि कामुकानाम्।।४९०।।

अर्थ–संसार की रक्षा करनेवाले सज्जनों को दुःख कैसे हो सकता है, चिन्तामणि के स्पर्श से दरिद्रता और कामुकों की कीर्ति पृथ्वी में कैसे हो सकती है? दूसरे का द्रोह करनेवाला क्या निशंक हो सकता है?

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे।।
काहू सुमति कि खल संग जामी। सुभगति पाव कि परत्रिय गामी।।

भागवते– पराभवस्तावदवोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्वम्।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः।।४९१।।
कथासरित्सागरे–अनार्य जुष्टेन पथा प्रवृतानां शिवः कुतः।

अर्थ–ब्राह्मण का अनहित करने से क्या वंश रह सकता है जब तक आत्मतत्व को मनुष्य नहीं जानता तब तक सारी क्रियायें और अज्ञानजन्य पराभव बना रहता है, जब तक यह मन क्रियात्मक है, तब तक मन से शरीर का बन्धन है अर्थात् आत्मतत्व अवभाषित होने पर सारी क्रियायें नष्ट हो जाती हैं, खल की संगति करने से क्या किसी को सुमति प्राप्त हुई है, परस्त्रीगमनरूप कुमार्ग में चलने से मनुष्य को कल्याण कहाँ हो सकता है। (१)

भव कि परहिं परमातमबिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ परनिंदक।।
राज कि रहइ नीति बिनु जाने। अघ कि रहइ हरिचरित बखाने।।

अर्थ– बिना राजनीति के जाने क्या राज्य रह सकता है भगवान् का चरित्र वर्णन करने से क्या पाप रह सकता है (नहीं) परमार्थ के जानने वाले क्या संसार के प्रवाह में पड़ते हैं और क्या पराई निन्दा करनेवाले कभी सुखी होते हैं। (कदापि नहीं)

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।।
लाभ कि कछु हरिभगति समाना। जेहि गावहिं स्त्रुति संत पुराना।।

सुभाषितरत्नभां०–पञ्चभिः कामिता कुन्ती तद्बधूस्थ पञ्चभिः।
सतीं वदति लोकोयं यशः पुण्यैरवाप्यते।।४९२।।

अर्थ–पांच पुरुषों से चाहना की गई कुन्ती, पाँच पतियों के होने से पाञ्चाली कही जाती है अर्थात् पंचभर्तृ का है तथापि संसार उसे सती पतिब्रता कहता है। अतः यश पुण्य से प्राप्त होता है बिना पुण्य के कदापि नहीं। बिना पाप के कोई अयश नहीं पाता, क्या हरिभक्त के समान संसार में कुछ लाभ है, जिस भक्ति की महिमा श्रुति (वेद) संत पुराण गान कहते हैं।

हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहिं नर तनु पाई।।
अघ कि पिसुन तामस कछु आना। धर्म कि दयासरिस हरि जाना।।

अर्थ– इसके समान क्या कुछ और भी हानि है जो कि मनुष्य शरीर पाकर राम को न भजे। क्या हिंसाके समान कोई दूसरा पाप हो सकता है, हे गरुड़जी क्या दया के समान कोई धर्म है।

एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनऊँ। मुनिउपदेस न सादर सुनऊँ।।
पुनि पुनि सगुनपच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोले बचन सकोपा।।

अर्थ– इस प्रकार अनेक युक्ति मनमें विचार करता रहा मुनि का उपदेश आदर पूर्वक मैंने नहीं सुना, बारम्बार मैंने[1] सगुण पक्ष का आरोपण किया (सगुण पक्ष मुनि के समक्ष रखा) तब मुनि क्रोध करके कहने लगे

[1]. अभिज्ञानशाकुन्तले–अनार्यः परदारव्यवहारः।

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि।।

सत्यबचन बिस्वास न करही। वायस इव सबही तें डरही।।

अर्थ– हे मूर्ख ! तुझे अत्यन्त श्रेष्ठ शिक्षा देता हूँ परन्तु तू नहीं मानता, और उत्तर प्रत्युत्तर अनेकों प्रकार से देता है सत्य वचन का विश्वास नहीं करता, कौवे की नाई सब से ही डरता है।

सठ स्वपच्छ तब हृदय बिसाला। सपदि होहु पच्छी चंडाला।।

लीन्ह साप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई।।

अर्थ– हे मूर्ख ! तेरे हृदय में विशाल पक्षपात है इस कारण शीघ्र ही चाण्डाल पक्षी हो जा, यह मुनि का शाप मैंने सिर पर चढ़ा लिया और मेरे मन में न भय और न कुछ दीनता ही आई।

दोहा–तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनिपद सिर नाइ।

सुमिरि राम रघुबंस मनि, हरषित चलेउँ उड़ाइ।।

पाद्मे–काकयोनिं समागत्य मुने र्पादाभिवन्द्य च।

रामचन्द्रं समाधाय हृदये संजगाम ह।।४९३।।

अर्थ– काकयोनि को प्राप्त होकर मुनि के चरणों की वन्दना कर रामचन्द्र को हृदय में रख कर चल दिया।

उमा जे रामचरन रत, बिगत काम मद क्रोध।

निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध।।११२।।

अर्थ– शिव जी कहते हैं कि हे उमा ! जो काम, मद और क्रोध से रहित होकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में संलग्न हैं वे जगत को अपने स्वामीमय देखते हैं फिर विरोध किस से करें।

सुनु खगेस नहिं कछु रिषिदूषन। उरप्रेरक रघुबंस बिभूषन।।

कृपासिंधु मुनिमति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परीक्षा मोरी।।

महाभारते–जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।।४९४।।

अर्थ– धर्म को जानता हूँ किन्तु उसमें प्रवृत्ति नहीं है अधर्म को भी जानता हूँ पर उससे निवृत्त नहीं होता हूँ हृदय में स्थित किसी देवकी प्रेरणा से जैसा नियुक्त किया जाता हूँ वैसे ही करता हूँ। कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्रजी मुनि की बुद्धि को भोली बना कर मेरे प्रेम की परीक्षा ली है।

मन क्रम बच मोहि निजजन जाना। मुनिमति पुनि फेरी भगवाना।।

रिषि मम सहनसीलता देखी। रामचरन बिस्वास बिसेखी।।

अर्थ– मन,वचन, कर्म से मुझे अपना जन समझकर फिर रामचन्द्रजी ने मुनि की बुद्धि को फेरी ऋषि ने मेरी सहनशीलता देखकर और रामजी के चरण में अधिक विश्वास देखकर

अतिबिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई।।

मम परितोष बिबिधिबिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा।।

पाद्मे–विस्मयाविष्टहृदयः सादरं मुनिसत्तमः।

समाहूय च मां प्रीत्या राममंत्रं प्रदत्तवान्।।४९५।।

अर्थ– मुनिश्रेष्ठ विस्मय युक्त हृदय से आदर सहित प्रीतिपूर्वक मुझे बुलाकर राम मंत्र दिया।

बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना।।

सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहिं सुनावा।।

अर्थ– कृपानिधान मुनि ने मुझे बालक रूपी श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान बताया, वह सुन्दर सुख देने वाला रूप मुझे अत्यन्त अच्छा लगा वह पहले ही मैंने आपको सुना दिया है।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा।।

सादर मोहि यह कथा सुनाई।पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई।।

अर्थ– मुनि ने कुछ समय तक वहाँ ठहराया तब उन्होंने रामचरित मानस वर्णन किया। आदर के साथ यह कथा मुझे सुनाई फिर मुनि सुन्दर वचन बोले।

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभुप्रसाद तात मैं पावा।।
तोहि निजभगत रामकर जानी। तातें मैं सब कहेउँ बखानी।।

अर्थ– हे तात ! यह सुहावना रामचरित मानस गुप्त है उसको मैंने शिवजी की कृपा से पाया। तुझको श्रीरामचन्द्रजी का सच्चा भक्त जानकर इससे सब बखान कर मैंने कहा।

रामगति जिनके उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीं।।
मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझाबा। मैं सप्रेम मुनिपद सिर नावा।।
भागवते–नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम्।।४९६।।

अर्थ– तुम इस भगवच्चरित्रको दम्भी, नास्तिक, शठ प्रेमसे न सुननेवाले अभक्त दुर्विनीति से न कहना। मुनिने मुझे बहुत प्रकार से समझाया और मैंने प्रेम पूर्वक मुनि के चरणों में सिर नवाया।

निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्हि मुनीसा।।
रामभगति अबिरल उर तोरे। बसहु सदा प्रसाद अब मोरै।।
दोहा–सदा रामप्रिय होहु तुम्ह,सुभगुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन, ज्ञान बिराम निधान।।
जेहि आस्त्रम तुम बसब पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त।
ब्यापिहि तहँ न अविद्या, जो जन एक प्रजंत।।

गर्गसंहितायाम्–काकरूपेपि सुज्ञानं ते भविष्यति निश्चितम्।
परं त्रैकालिकं ज्ञानं संयुतं योगसिद्धिभिः।।४९७।।
सत्योपा०–यथा वदसि भोकाक तत्तथैव भविष्यति।
मायया तव बन्धो न भविष्यति कदाचन।।४९८।।
आश्रमे तव माया न प्रभावं स्वं करिष्यति।
हृदये रामरूपं च निवसिष्यति ते सदा।।४९९।।

अर्थ– निज कर कमल मेरे सिर पर रख कर मुझे आशीर्वाद दिया, काकरूप में भी निश्चय करके तुम्हारे ज्ञान रहेगा, योग सिद्धि के सहित त्रैकालिक श्रेष्ठ ज्ञान भी रहेगा।

हे काक! जैसा तुम कहते हो वह वैसा ही होगा माया से तुम्हारा बन्धन कदापि न होगा, तुम्हारे आश्रम में माया अपना प्रभाव न करेगी हृदय में निरन्तर रामरूप निवास करेगा।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुमहिं न ब्यापिहि काऊ।।
रामरहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना।।

अर्थ–काल कर्म और स्वभाव के गुण दोष कर दुःख तुम्हें कुछ भी कदापि न व्याप्त होगा अनेक प्रकार से रामचन्द्रजी के ललित रहस्य को जो कि इतिहास और पुराणों से प्रक्षिप्त छिपा हुआ) और प्रत्यक्ष है उन सबको तुम बिन परिश्रम के जानोगे।

बिनु स्त्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नवनेह रामपद होऊ।।
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।

अर्थ–तुम बिना परिश्रम के इन सबको जानोगे, नित्य श्रीरघुनाथजी के चरणों में तुम्हारा नवप्रेम होगा जो मनमें इच्छा करोगे ईश्वरकी कृपा से कुछ दुर्लभ न होगा।

सुनि मुनिआसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा।।
एवमस्तु तब बच मुनि ज्ञानी। यह मम भगत करम मन बानी।।

अर्थ– हे मतिधीर गरुड़ जी! सुनो मुनि के आशीर्वाद को श्रवण कर आकाश से गंभीर आकाशवाणी हुई हे ज्ञानी मुनि तुम्हारा वचन ऐसा ही हो यह कर्म, मन वाणी से मेरा भक्त है।

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेममगन सब संसय गयऊ।।
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पदसरोज पुनि पुनि सिर नाई।।

अर्थ–आकाशवाणी सुनकर मेरे मनमें हर्ष उत्पन्न हुआ प्रेम में मग्न हो गया और सब संदेह जाते रहे विनती कर मुनि की आज्ञा पाकर उनके चरण कमलों में बारम्बार सिर नवा कर।

हरषसहित यहि आस्त्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ।।

इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कलप सात अरु बीसा।।

अर्थ–हर्ष के साथ मैं इस आश्रम में आया, स्वामी की प्रसन्नता से दुर्लभ वरदान मिला। हे पक्षिराज! सुनिए मुझे यहाँ रहते हुये सत्ताइस कल्प बीत गए।

करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना।।

जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगतहित मनुजसरीरा।।

अर्थ– सदा रघुनाथजी के गुणों का गान करता हूँ बुद्धिमान पक्षी प्रेम से श्रवण करते हैं। जब जब अयोध्यापुरी में भक्तों के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण करते हैं।

तब तब जाइ रामपुर रहऊँ।सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ।।

पुनि उर राखि राम सिसुरूपा।निज आस्त्रम आवउँ खग भूपा।।

अर्थ– तब तब जाकर अयोध्यापुरी में रहता हूँ शिशुलीला देखकर सुखको प्राप्त होता हूँ फिर रामचन्द्रजी के बालकरूप को हृदय में धारण कर हे पक्षिराज! इस आश्रम में चला आता हूँ।

कथा सकल मैं तुम्हहिं सुनाई। कागदेह जेहि कारन पाई।

कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। रामभगति महिमा अति भारी।।

अर्थ– मैंने तुझ को यह सम्पूर्ण कथा सुना दी जिस कारण से काक की देह पाई है। हे तात! तुम्हारे सब प्रश्नों को कहा रामचन्द्र की भक्ति की महिमा अत्यन्त भारी है।

दोहा– तातें यह तन मोहि प्रिय, भयउ रामपद नेह।

निज प्रभु दरसन पायउँ, गयउ सकल संदेह।।

अर्थ– इससे यह शरीर मुझे प्रिय है क्योंकि इसी शरीर से श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में अनुराग हुआ है, अपने स्वामी का दर्शन पाया और सब संदेह दूर हो गया।

भगतिपच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्हि महारिषि साप।

मुनिदुर्लभ बर पायउँ, देखहु भजनप्रताप।।११४।।

अर्थ– मैं भक्ति पक्ष का हठ करता ही रहा, जिससे महर्षि ने शाप दिया भजन का प्रताप देखिये कि जो वर मुनियों को भी दुर्लभ है वह वर पाया।

जे असि भगति जानि परिहरहिं। केवल ज्ञानहेतु स्त्रम करहीं।।

ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी।।

महानिर्वाणतंत्रे– मद्वक्त्रादुदितं धर्मं हित्वान्यद्धर्ममिच्छति।

अमृतं स्वगृहे त्यक्त्वा क्षीरमार्कं सवाञ्छति।।५००।।

अर्थ–मुझ से कहे हुये धर्म को त्याग कर जो दूसरे धर्म की इच्छा करता है, वह अपने घर में अमृत को छोड़ कर मदार के दूध को चाहता है।

सुनु खगेस हरिभगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई।।

ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पार पैरि चाहहिं जड करनी।।

भागवते– हित्वा कृतज्ञस्तवपादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम्।

महानिर्वाणतंत्रे– कलावन्योदितमर्गैः सिद्धमिच्छति यो नरः।।५०१।।

अर्थ– कौन कृतज्ञ पुरुष आपके पाद मूल को छोड़कर अन्यकी शरण को प्राप्त होगा कलियुग में दूसरे से कहे हुये मार्ग से जो मनुष्य सिद्ध होने की इच्छा करते हैं वे मूर्ख बिना नाव के महासागर को अपनी जड़ करनी से तैर कर पार होना चाहते हैं।

सुनि भुसुंडि के बचन भवानी। बोलउ गरुड़ हरषि मृदुबानी।।

तब प्रसाद प्रभु मम उर माहीं।संसय सोक मोह भ्रम नाहीं।।

काकस्यवचनं श्रुत्वा प्रोवाच गरुडस्तदा।

भागवते–विद्राविता मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तब सन्निधानात्।।५०२।।

अर्थ– काक भुशुण्डि के वचन सुनकर गरुड़जी बोले आपके समागम से मेरे मोहान्धकार दूर हो गये। जिस मोहादिकों से मैं दुःखी था।

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ बिस्रामा।।

एक बात प्रभु पूछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही।।

महानिर्वाणतंत्रे–तत्वेन श्रोतुमिच्छामि कृपयाकथय प्रभो।।५०३।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के पवित्र गुणों को सुना और आप की कृपा से विश्राम पाया।

प्रभो इस विषय को यथार्थ पूछता हूँ कृपा करके कहिये।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।।

सोइ मुनि तुम्हसन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेउ भगति की नाईं।।

महाभारते–ज्ञानमत्यन्त दुर्लभम्।

अर्थ– वेद, पुराण, सन्त और मुनि कहते हैं कि ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। हे स्वामिन् ! वही ज्ञान लोमशजी ने आपसे कहा, परन्तु भक्ति के समान आपने उसका आदर नहीं किया।

ज्ञानहिं भगतिहिं अंतर केता। सकल कहहु अब कृपानिकेता।।

सुनिं उरगारिबिचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना।।

अर्थ– हे कृपानिकेत! ज्ञान भक्ति में कितना अंतर है यह सब समझा कर कहिये। गरुड़जी के वचन को सुनकर चतुर काक ने सादर कहा।

भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर।।

अर्थ– भक्ति और ज्ञान में कुछ भेद नहीं है, ये दोनों संसार से उत्पन्न हुए दुःख को हरते हैं। हे नाथ! मुनीश्वर लोग कुछ अन्तर कहते हैं हे पक्षिश्रेष्ठ उसे सावधान होकर सुनिये।

ज्ञान बिराग जोग बिज्ञाना। ए सब पुरुष सुनहुँ हरिजाना।।

पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँति। अबला अबल सहज जड़जाती।।

अर्थ– हे हरिवाहन! सुनिये ज्ञान, वैराग्य, योग और विज्ञान ये सब पुरुषार्थ हैं। पुरुष सब प्रकार प्रतापी और बली होता है स्त्री सहज ही जड़ जाति की है और निर्बल होती है।

दोहा–पुरुष त्यागि सक नारिहिं, जो बिरक्त मतिधीर।

नतुकामी जो बिषयबस, बिमुख जे पद रघुबीर।।

अर्थ– वही पुरुष स्त्री को त्याग सकता है तो विरक्त और गम्भीर बुद्धिवाला है और विषयासक्त जो रघुनाथजी के चरणारविन्द से विमुख और कामी हैं वे नहीं त्याग सकते।

सो०–सो मुनि ज्ञान निधान, मृगनयनी बिधुमुख निरखि।

बिकल होहि हरिजान, नारि बिस्व माया प्रगट।।११५।।

नीतौ– तेपि स्त्री मुखपंकजम् सुललितं दृष्टैव मोहं गता।

अर्थ– वे ज्ञान निधान मुनि मृगनयनी स्त्री के मुखपंकज को देखते ही विकल हो जाते हैं। हे हरियान! संसार में स्त्री प्रत्यक्ष माया है।

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाखउँ।।
⋆मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।

अर्थ– यहाँ कुछ पक्षपात न रखकर वेद, पुराण और संतों का सिद्धान्त कहता हूँ। हे पन्नगारि ! यह अनुपम रीति है कि स्त्री के रूप पर स्त्री (कामभाव से) मोहित नहीं होती।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारिवर्ग जानहिं सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।

अर्थ– हे पक्षिराज ! सुनिये, माया और भक्ति दोनों स्त्रीवर्ग हैं इसको सब कोई जानते हैं। फिर भक्ति रघुनाथजी को प्यारी है और माया बेचारी तो निश्चय ही नाचनेवाली वेश्या है।

भगतिहिं सानुकूल रघुराया। तातें तेहि डरपति अति माया।।
रामभगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी।।

अर्थ– भक्ति पर रघुनाथजी कृपा करते हैं। इससे माया उससे बहुत डरती है। अनुपम उपाधिरहित, अखंड रामभक्ति जिसके हृदयमें सदा वास करती है।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी।।

अर्थ–उसको देखकर माया सकुचाती है, कुछ अपनी प्रभुता नहीं कर सकती। ऐसा समझकर जो विज्ञानी मुनि हैं सम्पूर्ण सुखों की खानि भक्ति की याचना करते हैं।

दोहा–यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होइ।।

अर्थ– रघुनाथजी का यह चरित्र रहस्य है इसे कोई शीघ्र नहीं जान सकता । जो रघुनाथजी की कृपा से जान लेता है उसको स्वप्न में भी मोह नहीं होता।

अउरउ ज्ञान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ रामपद, प्रीति सदा अबिछीन।।११६।।

अर्थ– हे सप्रवीण गरुड़जी ! ज्ञान और भक्तिका और भी भेद सुनिये जो सुनकर रामचन्द्रजी के चरणों में निरन्तर एकरस प्रीति होवे।

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी।।
ईस्वरअंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

अर्थ– हे नाथ! यह अकथनीय कहानी सुनिये, समझते बनती है पर वर्णन नहीं की जा सकती। जीव ईश्वर का अंश, नाशरहित, चैतन्य, निर्मल, सहज और सुख की राशि है।

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाईं।।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनाई।।

अर्थ– हे स्वामिन् ! वह मायावश होकर शुक (तोता) और बन्दरकी भाँति बँधा है। जड़ (माया) और चेतन (जीव) की गाँठ पड़ गई, यद्यपि वह असत्य है तो भी छूटने में कठिनता है।

⋆यहाँ पर कोई–कोई महानुभाव यह शंका कर बैठते हैं कि बालकांड में, रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।' इस चौपाई में गोस्वामीजी ने विपरीत कथन किया है। परन्तु यह शंका निर्मूल है क्योंकि बालकांड में धनुर्भंग के समय श्रीजानकीजी ने जयमाला लेकर रंगभूमि में पधारी थीं उस समय उनके रूपको देखकर दर्शक लोग क्या स्त्री क्या पुरुष सभी मोहित हो गये थे यहाँ मोह का अर्थ चकित हो जाना और मोह न नारि नारि के रूपा– यहाँ का विषय दूसरा है। यहाँ पर गोस्वामीजी लिखते हैं कि माया और भक्ति ये दोनों स्त्रीवर्ग हैं और दोनों भगवान् की दासियाँ हैं परन्तु भक्ति भगवान् को जैसी प्यारी है वैसी माया नहीं है यहाँ दोनों को सापत्निभाव दिखाया गया है इस लिये नारी अर्थात् माया नारी के ऊपर अर्थात् भक्ति के ऊपर मोहित नहीं होती, बल्कि सापत्निभाव से भक्ति के ऊपर जलकर उसके आश्रयी(भक्त) के पास जाती तक नहीं।

दूसरे 'मोह न नारि' कामभाव से स्त्री के रूप स्त्री मोहित नहीं होती यह दिखाया गया है।

तब तें जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।

स्त्रुति पुरान बहुत कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।

अर्थ– तब से जीव संसारी हुआ, न गाँठ छूटती है न यह जीव सुखी होता है। वेद पुराणों ने बहुत से उपाय कहे हैं पर वह छूटती नहीं किन्तु अधिकाधिक अरझती जाती है।

जीवहृदय तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परइ न देखी।।

अस संयोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुबरई।।

अर्थ– जीव के हृदय में विशेष मोहरूपी अंधकार है जिससे दिखाई नहीं पड़ता तो गांठ कैसे छूट सकती है। जब ईश्वर ऐसा संयोग करे तब भी वह कदाचित् सुलझ जाय।

★सात्विक स्त्रद्धा धेनु लवाई। जो हरि कृपा हृदय बसि आई।।

जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे स्त्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।

अर्थ– सतोगुणी श्रद्धारूपी सुन्दर धेनु जो भगवान् की कृपा से आकर हृदय में बसे और जप, तप, व्रत, संयम नियम आदि जिनको वेद शुभधर्म और आचरण कहते हैं।

तेइ तृन हरित चरइ जब गाई। भाव बच्छ सिसु धेनु पेन्हाई।।

नोइ निबृति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।

अर्थ– उन हरे तृणों को जब गऊ चरे तब भाव (प्रेम) रूपी बालक (बछड़े) को पाकर पन्हाती है। निवृत्ति (सांसारिक कार्यों से अलग रहने की चेष्टा) नोवना (दूध दुहते समय गाय के छाँदने की रस्सी) है, विश्वास पात्र (दोहनी) है और निर्मल मनरूपी अहीर गाय का स्वयं सेवक है।

परम–धरम–मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई।।

तोष मरुत तब छमा जुडावइ। धृति सम जावन देइ जमावइ।।

अर्थ– हे भाई! परमधर्मरूपी दूध को दुहकर निष्कामरूपी अग्नि बनाकर औटावे। तब संतोष और क्षमा रूपी वायु से ठंडा करके धृति और समतारूपी जावन देकर जमावे।

मुदिता मथइ बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुपरम पुनीता।।

अर्थ– प्रसन्नतारूपी (स्त्री) विचाररूपी मथानी से मथे, इन्द्रिय मनरूपी आधार (रस्सी बाँधने का स्तम्भ) है सत्य और सुन्दरावाणीरूपी रस्सी लगावे तब मथ कर निर्मल पवित्र स्वच्छ वैराग्यरूपी मक्कखन निकाल ले।

दोहा– जोग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।

बुद्धि सिराबइ ज्ञान घृत, ममता मल जरि जाइ।।

अर्थ– तब योगरूपी अग्नि प्रकट करके शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन (लकड़ी) लगावे, जब ममतारूपी मल (माठा) जल जावे तब उसे बुद्धिरूपी स्त्री छानकर ज्ञानरूपी घृत को निकाल लेवे।

तब बिज्ञान निरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।

चित्त दिया भरि धरइ दृढ़, समता दियटि बनाइ।।

अर्थ– तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि स्वच्छ घी पाकर चित्तरूपी दिया में भरकर समतारूपी डीवट बनाकर उस पर धरे।

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास तें काढ़ि।

तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करइ सुगाढ़ि।।

अर्थ– तब तीनों (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति) अवस्थारूपी कपास के फल (ढोंढ़) से तीनों (सत्व,रज और तमोगुणरूपी बेनौर) को निकाल डाले और तुरीय अवस्थारूपी रुई को सँवारकर (धुन) के गाड़ी बत्ती बनावे।

★यहाँ सांगपूर्णोपमालंकार है। लक्षणम्–

साहित्यदर्पणे– सापूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्य वाचि च। उपमेयं चोपमानं भवेत्वाच्यम्।।

अर्थ– किसी शब्द से यदि सामान्य धर्म, वाचक, उपमेय और उपमान ये चारों वाच्य अर्थात् प्रतिपादित हों उसे पूर्णोपमालंकार कहते हैं। यहाँ धर्म, वाचक, उपमान, उपमेय, पूर्णरूप से वर्णन किया गया है अतः सांगपूर्णोपमालंकार है।

सो०–एहि बिधि लेसइ दीप, तेजरासि बिज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब।।११७।।

अर्थ– इस प्रकार इस तेजपुञ्ज, विज्ञानमय दीपक को जलावे जिसके पास जाने ही से मदादिक रूप शलभ (पंखियां) जल जाते हैं।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परमप्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेदभ्रम नासा।।
योसा आदित्ये पुरुषः सोऽसावहमिति श्रुते।।५०४।।

अर्थ– वह ईश्वर मैं हूँ यह अखण्ड वृत्ति ही दीपक को अत्यन्त प्रचन्डत्वात्म है श्रुति में भी लिखा? जो आदित्यमें पुरुष हैं यह हम ही हैं।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि मत मिटइ अपारा।।
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारा।।
छोरन ग्रंथि पाव जौं कोई। तौ यह जीव कृतारथ होई।।

भागवते– कर्माशयं हृदयग्रंथिबन्धमविद्यमाऽसादितमप्रमत्तः।
अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात्।।५०५।।

अर्थ– इस कारण सावधान पुरुष अज्ञान (माया) से प्राप्त हुए और कर्मों के निवास स्थान अपने हृदय के ग्रन्थि बन्धनको इस प्रकार के उपायों से नष्टकर योग (क्रियाओं से अथवा पूर्वोक्त साधन से) निवृत्त हो जाय।

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघन अनेक करइ तब माया।।

अर्थ– हे खगराज ! ग्रन्थि छोड़ते जानकर माया अनेक प्रकार का विघ्न करती है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ देखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाइ समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।।

अर्थ– हे भाई ! बहुत सी ऋद्धि और सिद्धियों को भेजती हैं वे आकर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं। वे चतुरता साथ छल करके पास में जाती हैं और अंचल (आँचर) के पवन से दीपक को बुझा देती हैं।

होइ बुद्धि जो परम सयाने। तिन्ह तनु चितव न अनहित जाने।।
जौं तेहि बिघन बुद्धि नहिं बाधी। तौं बहोरि सुर करहिं उपाधी।।

अर्थ– यदि बुद्धि अत्यन्त चतुर हुई तो उन (ऋद्धि सिद्धियों) की ओर अपना अनहित करनेवाली जान कर नहीं निहारती। जो मायाकृत विघ्न बुद्धि को नहीं बाधित कर सकते तो फिर देवता उपद्रव करते हैं।

⋆इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।

अर्थ– इन्द्रियाँ अनेक दरवाजे और झरोखे हैं, वहाँ वहाँ देवता लोग स्थान बनाकर बैठे हैं। वे विषय रूपी पवन को आते देखकर हठ से कपाट (किवाड़) खोल देते हैं।

⋆इस चौपाई तक सांगोपांग रूपक गोस्वामीजी ने वर्णन किया है।

इन्द्रियां दस हैं पांच कर्म इन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय जिनसे विषयों का अनुभव किया जाता है इसके अतिरिक्त चार अन्तःकरणेन्द्रिय हैं ये ज्ञानेन्द्रिय हैं यथा नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचा जिनसे रूपादिक का ज्ञान हो उसे ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। जिनके अनेकों प्रकार के कर्म लिये जाते हैं वे कर्मेन्द्रियाँ कहाती हैं।

यथा वाणी, हाथ, पांव, गुदा और लिंग। ज्ञानेन्द्रियाँ के विषय यथा नेत्र का रूप, कर्ण का शब्द, नासिका का गन्ध, जिह्वा का स्वाद और त्वचाका स्पर्श। कर्मेन्द्रियों के विषय यथा वाणी का बोलना, हाथ का काम करना, पांव का चलना, गुदा का मल त्याग और लिंग का मूत्र त्याग मैंथुन हैं। दस इन्द्रियों और अन्तःकरण चतुष्टय के पृथक्–पृथक् कर देवता हैं।

नेत्र के देवता सूर्य, कर्ण के दिशा, नासिका के अश्विनी कुमार, जिह्वा के वरुण, त्वचा के पवन, वाणी के अग्नि, हाथ के इन्द्र, पांव के विष्णु, गुदा के यम, लिंग के प्रजापति, मन के चन्द्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्तके विष्णु और अहंकार के देवता रुद्र भगवान् हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई।।

ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा।।

अर्थ–जब वह वायु हृदय रूपी मन्दिर में जाती है तभी विज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है। ग्रन्थि नहीं छूटी प्रकाश (उजेला) नष्ट हो गया। विषय रूपी वायु से बुद्धि विकल हो गई।

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई।।

बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी।।

अर्थ– इन्द्रियों के देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता विषय भोग पर सदा प्रीति रखते हैं। जब विषय रूपी वायु से बुद्धि भोरी (बावली) हो जाती है तो फिर दुबारा उस दीपक को पूर्बोक्त बिधि के अनुसार कौन जला सकता है।

दोहा– तब फिरि जीव बिबिधि बिधि, पावइ संसृतिक्लेस।

हरिमाया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहंगेस।।

शिवगीतायाम्– यद्येवं देवता विघ्नमाचरन्ति तनूभृताम्।

पौरुषं तत्र कस्यास्ति येन मुक्ति र्भविष्यति।।५०६।।

अर्थ–यदि देवता ही मनुष्यों के साधन में ऐसा बिघ्न करते हैं तो किस का ऐसा पौरुष है जिसके द्वारा मुक्ति होगी, हे पक्षिराज! भगवान् की माया अति दुस्तर है वह पार नहीं की जा सकती।

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक।

होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक।।११८।।

अर्थ–ज्ञान कहने में कठिन है, समझने में कठिन है और साधन करने में कठिन है घुनाक्षर न्याय के समान कुछ ज्ञान हुआ भी तो फिर अनेकों विघ्न आ जाते हैं।

ज्ञानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।

जौं निरबिघन पंथ निरबहई। सो कैवल्य परमपद लहई।।

तथा च श्रुतिः–क्षुरस्यधारा निशितां दुरत्यया दुर्गपथस्तत्कवयो वदन्ति हि।।

शिवगीतायाम्–न कर्मणा नानुष्ठानै र्न दानै र्तपसापिवा।

कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम्।।५०७।।

अर्थ–ज्ञान का मार्ग तलवार के सदृश है। हे पक्षिराज! ऐसे मार्ग में पड़ने से निर्वाह नहीं है। जैसा कि श्रुति में लिखा है। छूरी के धार के समान तेज, अपार दुर्गमज्ञान मार्ग है कवि लोग ऐसा कहते हैं। जो कोई उस मार्ग से निर्विघ्न पार जो जाय तो वह कैवल्य (मुक्ति) परम पद को प्राप्त होता है।

मनुष्य न कर्म से न अनुष्ठानों से न दान से और न तपश्चर्य्या से कैवल्य मुक्ति को पाता है किन्तु केवल ज्ञान ही से कैवल्य मुक्ति को प्राप्त होता है।

अतिदुर्लभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगमबद।।

रामभजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई।।

अर्थ– कैवल्य परमपद अर्थात् मुक्ति का मार्ग अति दुर्लभ है ऐसा संत पुराण और वेद शास्त्र कहते हैं । हे स्वामिन्! रामचन्द्रजी का भजन करते ही वह भक्ति बिना इच्छा किये ही स्वयं हठात् चली आती है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।।

तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई।।

अर्थ– जैसे पृथ्वी के आधार बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों भांति से उपाय करे। इसी प्रकार हे पक्षिराज! भगवान् की मुक्ति के बिना मोक्ष सुख नहीं रह सकता।

अस बिचारी हरिभगति सयाने। मुक्ति निरादर भगति लोभाने।।

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृतिमूल अबिद्या नासा।।

सामे सालोक्य सामीप्य सार्ष्टि सायुज्य मेव वा।

ददात्यपि न गृहणन्ति भक्ता मत्सेवनं बिना।।५०८।।

न किंचित्साधवो धीरा भक्ताह्येकान्तिनो मम।

वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्।।५०९।।

अर्थ–वह भक्ति सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य चार प्रकार की मुक्ति को देती है परन्तु भक्त लोग उसे नहीं चाहते, जिसमें मेरी सेवारूपी भक्ति न हो। साधु हैं धीर हैं मेरे एकान्त भक्त हैं वे लोग मुझ से दिये गये भी कैवल्य मोक्षपद की इच्छा नहीं करते अर्थात् केवल भक्ति ही को चाहते हैं। भक्ति करनेवालों की बिना यत्न और श्रम के संसृति (जन्म मरण) की मूल जो अविद्या है उसका नाश हो जाता है।

भोजन करिय तृप्ति हित लागी। जिमि सो असन पठवइ जठरागी।।

असि हरिभगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सुहाई।।

अर्थ– जैसे भोजन तृप्ति के और शरीर के पोषण के लिये किया जाता है, उसे जठराग्नि पचा देती है ऐसे ही सुगम और सुखदाई भगवान् की भक्ति है ऐसा कौन मूर्ख है जिसे वह भक्ति न सुहाती हो।

दोहा– सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।

भजहु रामपद पंकज, अस सिद्धांत बिचारि।।

अर्थ– हे गरुड़जी! सेवक सेव्य (दास स्वामी) भाव के बिना संसार सागर से कोई पार नहीं पा सकता ऐसा सिद्धान्त विचार कर रामचन्द्रजी के चरणकमलों को भजिये।

जो चेतन कहँ जड करइ, जडहिं करइ चैतन्य।

अस समरथ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य।।११९।।

अर्थ–जो चेतन को जड़ करते हैं और जड़ को चेतन ऐसे समर्थ रघुनाथजी को जो जीव भजन करते हैं वे धन्य हैं।

कहेउँ ज्ञान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई।।

रामभगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड जाके उरअंतर।।

भरद्वाजरामायणे–ज्ञानप्रदीपसिद्धान्तो मया प्रोक्तो खगाधिप।

रामभक्तिप्रभावश्च सावधानमनाः शृणु।।५१०।।

अर्थ–हे पक्षिराज! ज्ञानप्रदीप सिद्धान्त मैंने आपसे वर्णन किया। और अब रामचन्द्रजीकी भक्तिका प्रभाव वर्णन करता हूँ सावधान चित्त से सुनिये। हे गरुड़जी! श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि (इच्छित पदार्थ देने वाले एक विशेष पत्थर का नाम है) वह जिसके हृदय के अन्तर निवास करती है।

परमप्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती।।

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा।।

अर्थ–यह मणि रातो दिन परम प्रकाश रूप है, उसके लिये दीप और बत्ती की कुछ आवश्यकता नहीं है इस प्रकाश के होने से मोहरूपी दरिद्र समीप नहीं आता और लोभ रूपी पवन उसे बुझा नहीं सकता।

अचल अविद्या तिमि मिटि जाई। हरहिं सकल सलभ समुदाई।।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जा के उर माहीं।।

अर्थ– इस भक्तिमणि के प्रकाश से अविद्यारूपी निबड़ि अन्धकार मिट जाता है और उसके समीप शलभ समूह आने में हार मान लेते हैं। जिसके हृदय में भक्तिमणि निवास करती है, उसके निकट खल कामादि नहीं जाते।

गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।

ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी।।

भृर्तहरिशतके–वाह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्।

मेरुः स्वल्प शिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते।।५११।।

व्यालोमाल्यगुणायते विषरसः पीयूष वर्षायते।।५१२।।

अर्थ– उसको अग्नि जल के समान हो जाती है, समुद्र नदी के समान हो जाता है, सुमेरु गिरि पर्वत छोटे पर्वत सा हो जाता है, सिंह, हरिण के समान हो जाता है सर्प माला के समान हो जाता है और विष अमृत वृष्टि के समान हो जाता है। उस मणि के बिना किसी को सुख नहीं मिलता जिसके हृदय में यह भक्तिरूपी मणि होती है उसके

बड़े–बड़े जो मन के रोग हैं वे नहीं व्याप्त होते, जिन रोगों के वशीभूत होकर सब संसार के जीव दुखी हो रहे हैं।

राम–भगति–मनि उर बस जाके। दुख लव–लेस न सपनेहु ताके।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।

रामभक्ति र्भवेद्यस्य हृदये मुनिसत्तम।
कामक्रोधादयो दोषा न भवन्ति कदाचन।।५१३।।

अर्थ– हे मुनि श्रेष्ठ! रामचन्द्रजी की भक्ति जिनके हृदय में होती है उनके हृदय में काम क्रोधादिक दोष नहीं होते। संसार में चतुर शिरोमणि वे ही हैं जो भक्तिमणि के लिये सुन्दर यत्न करते हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।
सुगम उपाइ पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भट भेरे।।

अर्थ– यद्यपि वह मणि जगत में प्रसिद्ध है परन्तु रामचन्द्र की कृपा बिना किसी को प्राप्त नहीं होती। इस मणि के प्राप्त होने का उपाय बहुत है परन्तु हतभाग्य मनुष्यों को भट (काम क्रोधादिक) भेरे (धक्का देकर इस भक्ति से दूर करने वाले) हैं।

पावन पर्वत बेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी।।

अर्थ– वेद पुरान सब पवित्र पर्वत हैं, इन पर्वतों में श्रीरामचन्द्रजी की कथा ही अनेक प्रकार सुन्दर खानि है। इसके मर्म (भेद) को जानने वाले सज्जन की सुन्दर बुद्धि कुदारि है हे गरुड़! ज्ञान वैराग्य नेत्र हैं।

⋆भावसहित खोजइ जौ प्रानी। पाव भगतिमनि सब सुखमानी।।
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा।।

अर्थ– जो मनुष्य प्रेम से उसे खोजते हैं तो वे सम्पूर्ण सुख की खानि भक्ति रूपी मणि को पाते हैं। हे प्रभो! मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि राम से अधिक रामचन्द्रजी का दास है।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।
सब कर फल हरिभगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई।।

अर्थ– रामचन्द्रजी समुद्र हैं, धीर सज्जन पुरुष मेघ हैं, भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं, सन्त लोग पवन हैं, (जो संत रूपी पवन भक्तिरूपी सुगन्ध ले जाकर और अन्य भक्तरूपी वृक्षों को भी चन्दन कर देते हैं)। सबका फल यही है कि सुन्दर भगवान् की भक्ति करना। वह भक्ति संतों के बिना किसी को नहीं प्राप्त होती।

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा।।

भागवते–भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत्सत्समागमः।
सत्संगमोयर्हि तदेव सद्गतो परावरेशे त्वयि जायते मतिः।।५१४।।

अर्थ–हे अच्युत! जब कहीं भ्रमण करते हुये मनुष्य को संसार से छुड़ाने वाला सज्जनों का समागम हो जाता है, तब सत्संगम हेता है तभी परावरेश(पर= हम लोग। अवर=ब्रह्मादिक उनके ईश) सज्जनों के गति रूप आपकी भक्ति में बुद्धि लगती है अर्थात् आप की भक्ति करने में रुचि होती।

दोहा–ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढइ, भगति मधुरता जाहि।।

अर्थ–ब्रह्म (वेद) पयोनिधि (क्षीर समुद्र) ज्ञान है, मन्दराचल पर्वत है, संत लोग देवता हैं, ये देवता लोग शब्द शास्त्ररूपी क्षीर समुद्र को ज्ञान रूप मंदराचल से मथकर कथा रूपी सुधा अमृत को निकाल लेते हैं जिस सुधा की मधुरता भक्ति है।

बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरिभगति, देखु खगेस बिचारि।।१२०।।

⋆यहाँ गोस्वामीजी ने पावन पर्वत से लेकर भाव सहित जो खोजै प्रानी यहाँ तक सांगरूपक वर्णन किया है यथा– वे पुराणरूपी पर्वतों में जो राम कथारूपी मनोहर अनेकों प्रकार की खदानें हैं उससे रामचन्द्रजी के चरित्र के मर्म को जानने वाला सज्जन प्राणी ज्ञान विरागरूपी नेत्रों से देखकर सुमति रूपी कुदारि से प्रेम के साथ जो उस खदान को खनते हैं वे सुखखानि भक्तिरूपी मणि को पाते हैं।

अमूलमेतद्बहरूपरूपितं मनोवचः प्राणशरीरकर्म।
ज्ञानासिनोपासनया शितेनच्छित्वा पुनर्गां विचरत्यतृष्णाः।।५१५।।

अर्थ– मन, वच, प्राण, शरीर कर्म ये वस्तुतः अमूल हैं अर्थात् असत्य है, तो भी बहुत से रूपों में इनकी सत्ता विद्यमान है। उपासना के द्वारा ज्ञानरूपी तीक्ष्ण तलवार से उन्हें अर्थात् मन, वचन, प्राण, शरीर अहंकारादि को छेदन कर तृष्णा रहित हो विचरण करते हैं।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जो कृपाल मोहि ऊपर भाऊ।।
:: नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।।
प्रथमहि कहहु नाथ मतिधीरा। सबतें दुर्लभ कबन सरीरा।।
बड दुख कवन कवन सुखभारी। सोउ संक्षेपहि कहहु बिचारी।।
संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु।।
कवन पुन्य स्रुतिबिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कृपाला।।
मानसरोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वज्ञ कृपा अधिकाई।।

प्र०– कः सन्तः कोप्यसन्तश्च किं पुण्यं पापमेव च।
जन्मातिदुर्लभं किं स्यात्किं दुःखं सुखश्चवद।।५१६।।
एतान्प्रश्नान् मम ब्रूहि रोगं कि मानसं प्रभो।

अर्थ– हे काक भुशुण्डजी! कौन संत और कौन असंत है? पुण्य क्या है? और पाप क्या है? कौन सा जन्म अति दुर्लभ है? कौन सा दुःख है? कौन सा सुख है? और मानसिक रोग कौन कौन से हैं। इन मेरे प्रश्नों का उत्तर कृपा करके दीजिये।

तात सुनहु सादर अतिप्रिति। मैं संक्षेप कहउँ यह नीती।।

अर्थ– काकभुशुण्ड जी गरुड़जी से बोले हे तात! आदर पूर्वक अति प्रसन्नता से इन सातों प्रश्नों के उत्तर को सुनों । यह नीति संक्षेप से मैं कहता हूँ।

नर तन सम नहिं कवनिहु देही। जीव चराचर जाचत जेही।।
नरक सर्ग अपबर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुख देनी।।
सोतनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषयरत मंद मंदतर।।
काँच किरचि बदले जिमि लेहीं। कर तें डारि परसमनि देहीं।।

साहित्यदर्पणे–नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।५१७।।
कस्य– धर्मार्थ काममोक्षाणां शरीरं साधनं स्मृतम्।।५१८।।
वाराहपुराणे– सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयति नात्मानं तस्तात्पापतरोऽत्र कः।।५१९।।

अर्थ–संसार में मनुष्य योनि में जन्म लेना दुर्लभ है, मनुष्य होने पर भी विद्या अति दुर्लभ है, विद्या पढ़ लेने पर कविता करना दुर्लभ है, कविता कर लेने पर भी शक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों का साधन शरीर ही है।

मनुष्य योनि मोक्ष की सीढ़ी है उस मनुष्य योनि को प्राप्त होकर जो मनुष्य अपने आत्मा का उद्धार नहीं करता उससे बढ़कर संसार में कौन अत्यन्त पापी होगा।

जो ऐसे मनुष्य हैं, वे सठ पारस पत्थर को हाथ से डाल देते हैं उसके बदले कांच का टुकड़ा ग्रहण करते हैं।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख कछु नाहीं।।

::गरुड़जी के सात प्रश्न (1) सबसे दुर्लभ कौन सा शरीर है, (2) अत्यन्त दुःखी कौन है, (3) अत्यन्त सुखी कौन है, (४) संत और असंतों का सहज स्वभाव क्या है, (5) परम पुण्य कौन है (6) भीषण पाप कौन सा है (7) मानसिक रोग कौन सा है।

कथासरित्सागरे–कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते।

कालेन फलितं तीर्थं सद्यः साधुसमागमः।।

अर्थ– दरिद्र का जीवन कष्टमय है, आश्चर्य की बात तो यह है कि (निर्धन पुरुष को) उसे स्त्री भी छोड़ देती है। तीर्थ करने का फल कुछ समय में होता है परन्तु साधु पुरुषों का समागम तत्काल फलदायक होता है।

परउपकार बचन मम काया। संत सहज सुभाव खगराया।।

संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।।

★भूरज तरु सम संत कृपाला। परहित नित सह बिपति बिसाला।।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।

परगुणपरमाणून्पर्वतीयकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति संतः क्रियन्तिः।।५२०।।

अभिज्ञानशकुन्तले–अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रपुण्यं समयति परितापं

छायया संश्रितानाम्।।

अर्थ– मन, वचन और शरीरमें जिनके पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है अर्थात् मन, वचन और शरीर से निरन्तर पुण्य ही किया करते हैं जो उपकार समूहों से त्रिभुवन को प्रसन्न करते हैं ऐसे और पराये के थोड़े भी गुण को पर्वत बना देने वाले और जो प्रति दिन आत्मानन्द में मग्न रहते हैं ऐसे संत कहीं कहीं हैं।

वृक्ष अपने ऊपर सूर्य भगवान् की ऊष्ण किरणों को सहन करता है परन्तु अपनी छाया से नीचे बैठे हुये पथिकों के परताप को दूर करता है और अभागे असंत पराये को दुःख देने के लिये होते हैं।

सन इव खल परबंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई।।

::खल बिनु स्वारथ परअपकारी। अहिमूषक इव सुनु उरगारी।।

भर्तृहरिशतके– तेऽमी मानुसराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्तिये

ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।५२१।।

परिशुद्धामपि वृत्तिसमाश्रितो दुर्जनः परान्व्यथते।

पवनासिनोपि भुजगाः परोपतापं न मुञ्चन्ति।।५२२।।

अर्थ–खल पुरुष सन की तरह दूसरे का बन्धन करते हैं और अपनी खाल कढ़ाकर विपत्ति सह कर मर जाते हैं (परन्तु दूसरे का बन्धन करते हैं।)

जो पुरुष स्वार्थ के लिये दूसरेका हित नहीं चाहते, वे मनुष्य होते हुये भी राक्षस हैं। जो बिना प्रयोजन दूसरे के हित को नष्ट कर देते हैं वे कौन हैं ? उन्हें मैं नहीं जानता।

दुर्जन मनुष्य अति शुद्ध वृत्ति के आश्रित होते हुए भी दूसरों को पीड़ा देते हैं। वायुभक्षण करनेवाला सर्प परोपताप (दूसरे के संताप को नहीं छोड़ता)

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हित हिम उपल बिलाहीं।।

अर्थ– खल मनुष्य पराई सम्पत्ति का बिनाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे हिम उपल (ओले) खेती का नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

दुष्ट हृदय जग आरत हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।

अर्थ– दुष्टों का उदय संसार को दुःख देने के लिये होता है। जैसे ग्रहों (सूर्यादिकों) में अधम केतु का उदय (अकालादि) के लिये प्रसिद्ध है।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।

परम धन स्रुतिबिदित अहिंसा। परनिंदा सम अघन गिरिंसा।।

★कृपालु संतजन भोजपत्र के वृक्ष के समान होते हैं जैसे भोजपत्र दूसरे को सुख देने के लिये अपनी खाल खिलाता है अर्थात् अपने ऊपर के परिवेष्टित वल्कल को दूसरे के धारण करने लिये देता है।

::भृर्त हरिजी ने जो बिना प्रयोजन के दूसरे का अनहित चाहते हैं उनका उदाहरण देने के लिये किसी भी व्यक्ति को न पाकर असमर्थता प्रकट करते हैं परन्तु गोस्वामी जी खल के उदाहरण देने के लिये अहि और भूषण को योग्य पाया और इन्हें उदाहरणरूप में देकर खल का यथार्थ स्वभाव वर्णन किया है।

अर्थ– संतों का उदय निरंतर सुख देनेवाला होता है। जिस भाँति चन्द्रमा और सूर्य का उदय संसार को सुख देने के लिये होता है। 'अहिंसारूपी परमधर्म' धर्मशास्त्रों में विदित है, पराई निन्दा के समान कोई बड़ा पाप नहीं है।

हरि गुरुनिंदक दादुर होई। जनम सहस्त्र पाव तन सोई।।
द्विजनिंदक बहु नरक भोग करि। जब जनमइ बायस सरीर धरि।।

अर्थ– भगवान् और गुरु का निन्दा करनेवाले दादुर (मेढक) होते हैं। वे सहस्त्र जन्म पर्यन्त वही मेढक के शरीर को पाते हैं। ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाले अनेकों नरक की यातना भोग कर कौवे का शरीर धारण कर संसार में प्रकट होते हैं।

सुर स्त्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।।
होहिं उलूक संत निंदारत। मोह निसा प्रिय ज्ञान भानुगत।।

अर्थ– जो अभिमानी पुरुष देवता और वेदों के निन्दक होते हैं वे प्राणी रौरव नरक में पड़ते हैं। जो संतों की निन्दा करने में तत्पर हैं वे उलूक होते हैं जिन उलूकों को मोहरूपी रात्री प्यारी है और उन्हें ज्ञानभानु गत (ज्ञान सूर्य के प्रखर किरणों के समान दुखद लगता है अर्थात् ज्ञानरूपी सूर्य उन्हें नहीं प्रिय लगता।)

सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं।।
सुनहु तात यह मानसरोगा। जेहि तें दुख पावहिं सब लोगा।।

अर्थ– जो जड़ सबकी निन्दा करते हैं वे चमगादर होकर जन्म लेते हैं। हे तात! अब मानसिक रोगों को सुनिये जिनसे सब लोग दुःख पाते हैं।

मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तेहि तें पुनि उपजइ बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त निज छाती जारा।।

सुभाषितरत्नभां०–नहि कामसमोब्याधिः नास्ति मोहसमोरिपुः।
नातिक्रोधसमोवह्नि र्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।।५२३।।
महाभारते–कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञानशस्त्रप्रहारेण तस्मात् जाग्रत् जाग्रत्।।५२४।।

अर्थ– काम के समान ब्याधि नहीं है, मोह के समान शत्रु नहीं है (क्रोध के समान अग्नि नहीं है और ज्ञान से परे सुख नहीं है) काम, क्रोध, लोभरूपी चार चोर मनुष्यों के शरीर में रहते हैं, मनुष्यों को चाहिये कि ज्ञानरूपी अस्त्र के प्रहार से जागृत रहें ? जागृत रहें? कामरूपी वात है, अपार लोभ कफ है, क्रोध पित्त है जो सदा मनुष्यों की छाती को जलाता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई।।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।

अर्थ– जो यह तीनों (काम,क्रोध,लोभ) (वात,पित्त,कफ) भाई परस्पर प्रीति करहिं अर्थात् मिल जायँ तो दुःख देनेवाला सन्निपात उत्पन्न होता है। विषय के मनोरथ दुर्लभ हैं, अनेकों प्रकार के हैं, और ये शूलनामक हैं।

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।।
परसुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
अहंकार अतिदुखद डवँरुआ। दंभ कपट मदमान नहरुआ।।

अर्थ– ममता दादु रोग है, ईर्ष्या खुजली का रोग है, दुष्टता और मनकी कुटिलता कुष्ट रोग है, अहङ्कार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरुआ (जलंधर) रोग है। दंभ, कपट, मद, मान नहरुआ रोग है (इस रोग के होने से शरीरमें जो नसें हैं उनमें से कोई भी एक नस निकल आती है उसे नहरुआ रोग कहते हैं।)

तृस्ना उदरबृद्धि अतिभारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी।।
जुगबिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका।।

अर्थ– तृष्णा करना अत्यन्त भारी उदरवृद्धि रोग है, तीन प्रकार की इच्छा करना तीक्ष्य तिजारी रोग है। मत्सर(पराई भलाई न देखना) और अविवेक (अज्ञान) यह द्वन्द्वज (दो दोषों से उत्पन्न हुआ) ज्वर है, कहाँ तक कहूँ

कहा नहीं जाता मानसिक कुरोग अनेक हैं।

दोहा—एक ब्याधिबस नर मरहिं, ए असाध्य बहु ब्याधि।
पीडहिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि।।

अर्थ— मनुष्य एक व्याधि से मर जाते हैं परन्तु ये असाध्य बहुत सी व्याधियाँ हैं ये व्याधियाँ निरंतर जीव को पीड़ा देती हैं सो फिर वह जीव कैसे ईश्वरका स्मरण करे।

नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिक नहीं, रोग जाहिं हरियान।।१२१।।

पद्मपुराणे—नौषधं न तपां न दानं न माता न च बांधवाः।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं रोगेन पीडितम्।।५२५।।

अर्थ—मानसिक रोग से पीड़ित मनुष्य की रक्षा औषधि नहीं कर सकती, न तप, न दान, न माता और न बन्धुजन ही रक्षा कर सकते हैं।

ऐहि बिधि सकल जीव जड़ रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी।।
मानस रोग कछुक मैं गाये। होहिं सब के लखि बिरलइ पाये।।

अर्थ— इस प्रकार संसार के सब जीव रोगी हैं, शोक, हर्ष, भय, प्रीति, बियोग के सब को ब्याप्त होते हैं। मैंने कुछ मानसिक रोग वर्णन किये, ये रोग सबके होते हैं परन्तु इनकी पहचान बिरले ही मनुष्य कर पाते हैं।

जानें तें छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी।।
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे।।

अर्थ— ये पापी (रोग) जान लेने से कुछ कम हो जाते हैं पर मनुष्यों को कष्ट देने वाले को नाश नहीं प्राप्त होते। विषय रूपी कुपथ्य पाकर मुनियों के हृदय में भी (ये रोग) उत्पन्न हो जाते हैं तब बेचारे मनुष्य किस गणना में हैं। (अर्थात् किसी नहीं)

रामकृपा नासहिं सब रोगा। जो ऐहि भाँति बनइ संयोगा।।
सदगुरु बेदबचन बिस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा।।

अर्थ— जो इस प्रकार संयोग बन जाता है तो श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु वैद्य हो वेद वाक्य में विश्वास हो विषय की आशा न करना यही संयम अर्थात् पथ्य हो।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान स्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।

अर्थ— रघुनाथजीकी भक्ति सजीवनमूरि औषधि है भगवान् की भक्ति में श्रद्धा करना अतिश्रेष्ठ अनुपान है। जो इस प्रकार सेवन करते हैं उनके समस्त कुरोग नष्ट हो जाते हैं इसके प्रतिकूल करने से करोड़ों यत्न करने पर भी मानसिक रोग नष्ट नहीं होते ।

जानिय तब मन बिरुज गोसाईं। जब उर बल बिराग अधिकाई।।
सुमति क्षुधा बाढ़इ नित नई। विषय आस दुर्बलता गई।।

अर्थ— तब मन को रोग रहित जानना चाहिये जब हृदय में वैराग्य प्रबल हो। सुन्दर सुमतिरूप क्षुधा हृदय में नित्य नवीन बढ़ती जाय और विषय की आशा रूपी दुर्बलता जाती रहे।

बिमल ज्ञानजल जब सो नहाई। तब रह रामभगति उर छाई।।
सिब अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म—विचार—बिसारद।।

अर्थ— निर्मल ज्ञानरूपी जल से जब वह (रोग से मुक्त हुआ मनुष्य) स्नान करता है तो हृदय में रामभक्तिरूपी (संजीवनी औषधि का प्रभाव) छाया रहता है। शिवजी, ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादिक और नारद आदि मुनि जो ब्रह्म के विचार में प्रवीण हैं।

सब कर मत खगनायक एहा। करिय रामपद पंकज नेहा।।
स्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।

अर्थ– हे गरुड़जी ! सब का यही मत है कि श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल में स्नेह करना। वेद, पुराण सद्ग्रन्थ यह कहते हैं कि बिना रघुनाथजी को भक्ति के सुख नहीं मिलता।

कमठ पीठ बरु जामहिं बारा। बंध्यासुत बरु काहुहि मारा।।
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला।।

अर्थ– चाहे कछुये की पीठ पर बाल जमि आवें, चाहे बन्ध्या स्त्री का पुत्र किसी को मारि आवे। चाहे आकाश में अनेक प्रकार के फूल फूलें परन्तु जीव ईश्वर से प्रतिकूल रह कर सुख नहीं पा सकता।

तृषा जाइ बरु मृग–जल–पाना। बरु जामहिं सससीस बिखाना।।
अधंकार बरु रबिहिं नसावइ। रामबिमुख न जीव सुख पावइ।।
हिम तें अनल प्रकट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई।।

भर्तृहरिशतके– लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिवेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दिताः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्

अर्थ– चाहे यत्न करने से पेरने पर बालू से तेल प्राप्त हो जाये और पियासा मनुष्य मृगतृष्णा में जल को पी जाये और चाहे पर्यटन करता हुआ कभी खरगोश के सिर पर सींग आ जाये, चाहे अन्धकार सूर्य का नाश कर दे परन्तु रामचन्द्रजी से विमुख होकर जीव कदापि सुख नहीं पा सकता। चाहे हिम पाले से अग्नि हो जाये परन्तु रामचन्द्रजी से विमुख होकर कोई सुख नहीं पा सकता।

दोहा– बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरहिं, यह सिद्धांत अपेल।।

सत्योपा०– लोके भवतु चाश्चर्यं जलाज्जन्म घृतस्य च।
सिकतायाश्च तैलं तु यत्नात्यातु कथञ्चन्।।५२६।।
बिनाभक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।।५२७।।

अर्थ– संसार में निम्नलिखित आश्चर्य चाहे हो जाये, जैसे जल से घृत हो जाये, यत्न करने पर किसी तरह सिकता (बालू) से तेल निकल आवे परन्तु बिना रामचन्द्रजीकी भक्ति के मुक्ति कदापि नहीं हो सकती मैं भुजा उठाकर कहता हूँ।

दोहा–मसकहि करइ बिरंचि प्रभु, अजहि मसक तें हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रबीन।।१२२।।

अर्थ– प्रभु रामचन्द्रजी मशक को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मशक (मच्छर) से भी हीन कर सकते हैं। ऐसा विचार सब संदेह त्याग कर चतुर पुरुष रामचन्द्रजी का भजन करते हैं।

नगस्वरूपिणी–विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।

अर्थ– हे खगेश! मैं निश्चित सिद्धान्त कहता हूँ, मेरा कथन असत्य नहीं है, जो मनुष्य हरि भगवान् का भजन करते हैं वे अति दुस्तर संसार रूपी सागर के पार हो जाते हैं।

कहेउँ नाथ हरिचरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा।।
स्त्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी।।

भागवते–एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम्।।५२८।।

अर्थ– हे स्वामिन् ! मैंने इस उपमा रहित रामचन्द्रजी के चरित्र को व्यास (विस्तार) और समास (संक्षेप) से अपनी बुद्धि के अनुसार कहे हैं।

हे उरगारि ! वेदों का सिद्धान्त यही है। इस संसार में मनुष्य का गोविन्द भगवान् में एकान्तिक भक्ति का होना यही परम स्वार्थ है जिस भक्ति के होने से मनुष्य सर्वत्र भगवान् को देखने लगता है।

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मो से सठ पर ममता जाही।।
तुम्ह बिज्ञानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्ह मो पर अति छोहा।।

अर्थ– हे स्वामिन् ! रघुनाथजी को छोड़कर किसका सेवन करना चाहिये? कि जिन्होंने मुझ जैसे शठ पर भी कृपा की है। हे नाथ ! तुम साक्षात् विज्ञान (आत्मज्ञानके) रूप हो तुम्हें मोह नहीं है, आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है।

पूछेहू रामकथा अतिपावनि। सुक–सनकादि–संभु–मन–भावनि।।

अर्थ– तुमने अति पवित्र रामचन्द्रजी की कथा मुझ से पूछी है, जो शुकदेव सनकादि और शंकरजी के मन की भावनी है।

सतसंगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा।।
तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।५२९।।

अर्थ– मैं भगवद्भक्तों के संग में बीतने वाले एक लव (बहुत ही थोड़े समय) की तुलना में स्वर्ग और मोक्ष दोनों को कुछ नहीं समझता। मनुष्यों की अन्य वांच्छित वस्तुओं (धनुपुत्र आदि के सुख) की तो कोई बात ही नहीं है, वे अत्यन्त तुच्छ हैं।

देखु गरुड़ निजहृदय बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी।।
सकुनाधम सब भांति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जगपावन।।

अर्थ– हे गरुड़जी ! अपने मन में यह विचार करके तो देखो कि क्या मैं रघुनाथजी के भजन का अधिकारी हूँ (कदापि नहीं) क्योंकि पक्षियों में अधम और सब प्रकार अपवित्र हूँ, परन्तु प्रभु रामचन्द्रजी ने मुझे संसार में प्रसिद्ध और पवित्र कर दिया।

दो०– आजु धन्य में धन्य अति, जद्यपि सबबिधि हीन।
निजजन जानि राम मोहि, संतसमागम दीन्ह।।

अर्थ– यद्यपि सब प्रकार से हीन हूँ परन्तु आज मैं तुम्हारे समागम से धन्यातिधन्य हूँ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे अपना दास जानकर संत का समागम दिया है।

नाथ जथामति भाषेउँ, राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरितसिंधु रघुबीर के, थाह कि पावइ कोइ।।१२३।।

अर्थ– हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरघुनाथजी के चरित्र को वर्णन किया है आपसे कुछ नहीं छिपा रखा है। रघुनाथजी के चरित्र समुद्र हैं उनकी थाह कौन पा सकता है।

सुमिरि राम के गुनगन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना।।
महिमा निगम नेति कर गाई। अतुलित बल प्रताप अधिकाई।।
यजुर्वेदे–न तस्य प्रतिमा आसी त्यस्य नाम महद्यशः।।

अर्थ– काकभुशुण्डजी श्रीरामचन्द्रजी के अनेक प्रकार के गुणगणों का स्मरण कर बार–बार प्रसन्न हुये। जिन रामचन्द्रकी महिमा को वेदों ने नेति, नेति (इति नहीं है, इति नहीं है) करके गाई है उनका बल प्रताप अपरमित है और प्रभुताई भी बढ़ी है।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई।।
अस सुभाव कहुँ सुनहुँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ।।

अर्थ–रघुनाथजी के चरण शिवजी और ब्रह्माजी से पूज्य हैं उनकी मुझ पर कृपा होना अत्यन्त कोमलता है। हे पक्षिराज! ऐसा स्वभाव न कहीं सुनता हूँ न देखता हूँ फिर किसको रघुनाथजी के समान समझूँ।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतज्ञ संन्यासी।।
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्मनिरत पंडित बिज्ञानी।।

अर्थ– साधक, सिद्ध, बिमुक्त, उदासी, कवि, पण्डित, बैरागी, संन्यासी, योगी, शूर तपस्वी, ज्ञानी धर्मात्मा

पण्डित विज्ञानी।

तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।।

सरन गये मोसे अघरासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी।।

अर्थ–ये पूर्वोक्त बिना मेरे स्वामी रघुनाथजी की सेवा किये कोई नहीं तर सकते। ऐसे अपने स्वामी रामचन्द्रजी को नमस्कार करता हूँ नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण में जाने से मुझसे पापराशि शुद्ध हो जाते हैं ऐसे अविनाशी रामचन्द्रजी को नमस्कार करता हूँ।

दोहा– जासु नाम भवभेषज, हरन ताप त्रय सूल।

सो कृपाल मोहि तोहि पर, सदा रहउँ अनुकूल।।

अर्थ– जिसका नाम संसार रूपी रोग के लिये औषधि रूप है, और घोरभय और शूल के हरण करने वाला है, वह कृपालु मेरे और तुम्हारे ऊपर सदा अनुकूल रहें।

सुनि भुसुंडि के बचन सुभ, देखि रामपद नेह।

बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुड बिगत संदेह।। १२५।।

अर्थ– काक भुसुण्डि के यह श्रेष्ठ वचन सुन और रघुनाथजी के चरणों में स्नेह देखकर गरुड़जी संदेह रहित होकर प्रेम सहित वाणी बोले।

मैं कृतकृत्य भयउँ तब बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी।।

रामचरन नूतन रति भई। मायाजनित बिपति सब गई।।

अर्थ– रामचन्द्रजी की भक्ति रस से परिपूर्ण तुम्हारी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में नवीन प्रीति उत्पन्न हुई, और माया से उत्पन्न हुई सारी बिपत्ति भी दूर हो गई।

मोह जलधि बोहित तुम्ह भयऊ। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दयऊ।।

मो पर होइ न अतिउपकारा। बंदउँ तब पद बारहिं बारा।।

अर्थ– मोह रूपी समुद्र पार होने के लिये तुम जहाज रूप हो गये, हे नाथ ! तुमने मुझे अनेक प्रकार के सुख दिये। मुझ से तुम्हारा प्रत्युपकार नहीं हो सकता मैं तुम्हारे चरणों को बार–बार प्रणाम करता हूँ।

पूरनकाम राम अनुरागी। तुम्ह सन तात न कोउ बड़ भागी।

संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हि कै करनी।।

सुभाषितरत्नभां०– पिबन्ति नद्यः स्वमेवनाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।

नादन्ति सस्य किलवारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः।।५३०।।

अर्थ– आप पूर्ण काम हो, श्रीरामचन्द्रजी से प्रेम करने वाले हो, हे तात! तुम्हारे समान कोई बड़ा भाग्यशाली मनुष्य नहीं है।

नदियाँ स्वयं जल नहीं पान करतीं, वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते हैं, मेघ स्वयं शस्य नहीं खाते हैं किन्तु सज्जनों की विभूति (ऐश्वर्य) दूसरे के उपकार करने के लिये होती है।

::संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना।।

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं सुसंत पुनीता।।

मा०–क्षीरसारस्य सतानां हृदश्च महदन्तरम्।

द्रवते निजसन्तापदिकोऽन्यः परदुःखतः।।५३१।।

अर्थ– संतों का हृदय नवनीत (मक्खन) के समान होता है, यह कवियों ने कहा है परन्तु उनसे कहते नहीं बना क्योंकि मक्खन अपने ही परिताप से पिघल जाता है परन्तु शुद्धाचरणवाले सज्जन पुरुष दूसरे के दुःख से द्रवित होते (पसीजते) हैं।

जीवन जनम सुफल मम भयऊ। तब प्रसाद सब संसय गयऊ।।

जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर।।

:: संतों का हृदय उपमेय और नवनीत उपमान है। उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिक गुण कह कर उसकी हीनता दिखाना व्यतिरेक अलंकार है।

अर्थ– मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया, तुम्हारे प्रसाद से मेरे सन्देह दूर हो गये। मुझे अपना दास जानिये हे पार्वतीजी ! पक्षिश्रेष्ठ गरुड़जी ने बार–बार काकभुशुण्डिजी से ऐसा कहा।

दोहा– तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड बैकुण्ड तब, हृदय राखि रघुबीर।।

अर्थ– मतिधीर गरुडजी ने प्रेम सहित काकभुशुण्डिजी के चरणों में सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में रखकर तब बैकुण्ठ को चले गये।

गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं बेद पुरान।।१२५।।

पद्मपुराणे–भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्संगमेन लभते पुरुषो यदा वै।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदांधकारनाशं विधाय हितदोदयते विवेकः।।५३२।।

अर्थ– हे पार्वतीजी ! अनेक जन्म संचित भाग्य के उदय होने से जब पुरुष को सत्संग मिलता है, तभी अज्ञान संजात मोह मदरूपी अँधेरे को हटा कर हित को देनेवाला विज्ञानसूर्य उदय होता है।

★कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्त्रवन छूटहिं भवपासा।।
प्रनत कलप तरु करुनापुंजा। उपजइ प्रीति रामपद कंजा।।

अर्थ– मैंने यह अत्यन्त पवित्र इतिहास (काकभुशुण्डि और गरुड़ संवाद) कहा जिसके सुनने से संसार का बन्धन छूट जाता है और शरणागतों के कल्पवृक्षरूप, करुणा के राशि रामचन्द्रजी के चरणकमलों में प्रीति उत्पन्न होती है।

मन बच कर्म जनित अघ जाई। सुनहि जे कथा स्त्रवन मनलाई।।

भागवते– य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः।
मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते।।५३३।।

अर्थ– जो पुरुष सावधानचित्त हो मेरे विषय में पराभक्ति को करता हुआ नित्य श्रद्धा से इसे सुनता है वह पुरुष कर्मों से बद्ध नहीं होता।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख दाना।।
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी।।
सो रघुनाथ भगति स्त्रुति गाई। रामकृपा काहू एक पाई।।

अर्थ– तीर्थयात्रा, पवित्र साधन के समुदाय योग वैराग्य ज्ञानकी निपुणता, नाना प्रकार के शुभकर्म, धर्म, व्रत, दान, संयम, इन्द्रियदमन, जप, तप, अनेकों प्रकार के यज्ञ, जीवों पर दया, ब्राह्मण तथा गुरु की सेवकाई, विद्या, विनय, विवेक की बढ़ाई, जहाँ तक वेदों ने साधन कहा है, हे पार्वती जी! उन सबका फल रामचन्द्रजी की भक्ति है, उस रघुनाथजी की भक्ति की प्रशंसा श्रुतियों ने की है श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से उसे (भक्ति को) कोई एक मनुष्य पाते हैं।

दो०– मुनिदुर्लभ हरिभगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि बिस्वास।।

भागवते–इत्थं हरे र्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगति लभेत्।।५३४।।

अर्थ– जो पुरुष कल्याणमय भगवान् के रुचिर अवतारों के पराक्रम को सुनता है और उस सुने हुये भगवान् के चरित्रों का मनन करता है वह इस लोक और परलोक में भी पराभक्ति को और परमहंसगति को प्राप्त होता है।

★इतिहास सुनने में अलभ्य लाभ होना और संसार बन्धन से छूट जाना विशेष अलंकार है। रघुनाथजी में कल्पवृक्ष का आरोपण करना रूपक अलंकार है। पदपंकज में वाचकधर्मलुप्तोपमालंकार है, इन तीनों की संसृष्टि है।

सोइ सर्वज्ञ सोई गुनज्ञाता। सोइ महिमंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोई कुलत्राता। रामचरन जाकर मन राता।।

अर्थ– वही सब जानने वाला गुणी, वही ज्ञाता, वही पृथ्वी को शोभित करने वाला पण्डित और ज्ञानी है वही धर्म में तत्पर और कुल का रक्षक है जिस का मन रामचन्द्रजी के चरणों में संलग्न है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। स्त्रुतिसिद्धांत नीक तेहि जाना।।
सो कबिकोबिद सो रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।

अर्थ–वही नीति निपुण है वही परम सयान है और वही वेदों के सिद्धांत को भली भांति जानता है वही कवि विद्वान् और रणधीर हैं जो छल त्याग कर रघुनाथजी को भजता है।

धन्य सुदेस जहाँ सुरसरी। धन्य नारि परिब्रत अनुसरी।।
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निजधर्म न टरई।।

अर्थ–वह देश धन्य है जहाँ पर गंगाजी हैं, वह स्त्री धन्य है तो पतिव्रत धर्म के अनुसार चलती है। वह राजा धन्य है जो नीति से बरताव करता है, वह द्विज धन्य है जो अपने धर्म से नहीं टलता।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी।।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जनम द्विज भगति अभंगा।।

अर्थ– वह धन धन्य है जिसकी प्रथम गति होती है, वह बुद्धि धन्य है जो पवित्र पुण्य कर्मों में लगी रहती है वह घड़ी धन्य है जिस (घड़ी) में सत्संग हो, उसका जन्म धन्य है जिसकी ब्राह्मणों में अभंग भक्ति हो।

दो०– सो कुल धन्य उमा सुनु, जगतपूज्य सुपनीति।
श्रीरघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीति।।१२७।।

अर्थ– हे पार्वतीजी! सुनो वह कुल धन्य है, जगत में पूज्य है, सुपवित्र है, जिस कुल में श्रीरघुनाथजी के भक्त विनम्र मनुष्य उत्पन्न होते हैं

मति अनुरूप कथा मैं भाखी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी।।
तब मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई।।

अर्थ– मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कथा कही यद्यपि पहले छिपाकर रखी थी। तुम्हारे मन की अधिक प्रीति देखकर तब मैंने रघुनाथजी की कथा सुनाई है।

यह न कहीय सठ हठसीलहिं। जो मनलाइ न सुन हरिलीलहिं।।
कहिय न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचरस्वामिहि।।
द्विजद्रोहिहि न सुनाइय कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप तबहूँ।।
रामकथा के ते अधिकारी। जिन्ह के सतसंगति अति प्यारी।।
गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई। द्विजसेवक अधिकारी तेई।।
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई।।

भागवते–नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कहिर्चित्।
न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च।।५३५।।
न लोलुपायोपदिशेन्नगृहारूढचेतसे।
नाभक्ताय च मे यातु न मद्भक्तद्विषामपि।।५३६।।
श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे।
भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च।।५३७।।
वहिर्जात विरागाय शान्तचित्ताय दीयताम्।
निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः।।५३८।।

अर्थ– इस कथा को खलों को, अशिक्षितों को कदापि न सुनना चाहिये, न स्तब्ध को, न भिन्नमति वाले को, न धर्मध्वजी को, न लालची को, न गृहासक्त ही को सुनाना चाहिये, न अभक्त को, न मेरे भक्तों से द्वेष करने वाले ही को सुनाना चाहिये । इसे किसे सुनाना चाहिये जो कि मेरी कथा के ऊपर श्रद्धा रखते हैं भक्त हैं, विनम्र

हैं, अनिन्दकी हैं, सब प्राणियों से मित्रता करनेवाले हैं और सेवा में तत्पर हैं, जिन्हें बाह्य वस्तुओं से बिराग हो गया हो, जिनका शांति चित्त हो गया हो जो निर्मत्सर हों मैं जिनके प्यारों से भी प्यारा होऊँ उन्हें यह कथा सुनानी चाहिये।

दो०–रामचरन जो रति चहइ, अथवा पद निर्बान।
भावसहित सो यह कथा, करहु स्त्रवनपुट पान।।१२८।।

अर्थ– जो रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम अथवा मोक्षपद चाहते हैं वे भाव सहित इस कथा को कर्णरूपी पुट (जलपात्र) से पान करें।

रामकथा गिरिजा मैं बरनी। कलिमल हरन मनोमल हरनी।।
संसृति रोग सजीवन मूरी। रामकथा गावहिं स्त्रुति भूरी।।

अर्थ– शिवजी कहते हैं हे पार्वतीजी! मैंने रामचन्द्रकी कथा वर्णन की है, वह कलि के पापों और मन के मल को हरनेवाली है। श्रीरामचन्द्रजीकी कथा संसाररूपी रोग के शान्त करने के लिये संजीवनी जड़ी है।

⋆एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।।
अति हरिकृपा जासु पर होई। पाउँ देहि एहि मारग सोई।।

अर्थ–इसमें सात सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, ये रघुनाथजीकी भक्ति के मार्ग हैं, जिस पर भगवान् की बड़ी कृपा होती है वही इस मार्ग पर पाँव धरता है।

मन कामना सिद्ध नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते भवनिधि गोपद इव तरहीं।।

भागवते– य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः।
श्रद्धावान्योनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः।।५३९।।
वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषां स्त्रीन्पुनाति हि।
वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृन् तत्पादसलिलं यथा।।५४०।।
शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः।।५४१।।

अर्थ– जो मनुष्य समाहित चित्त होकर इस प्रकार से इस कथा को एक प्रहर अथवा क्षणमात्र सुनाता है या श्रद्धालु होकर सुनता है, वह अपनेको पवित्र करता है। भगवान् की कथा का प्रश्न तीन पुरुषों को पवित्र करता है, वक्ता को, प्रश्न करनेवाले को और सुनने वाले को जैसे कि विष्णुपदी गंगाजी तीन मनुष्यों को पवित्र करती हैं। इस कथा को जो जो सुनते हैं और कीर्तन करते हैं वे वे पुरुष अनायास ही मोह अधंकार से पार हो जाते हैं।

सुनि सुभ कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।।
नाथ कृपा मम गत संदेहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा।।

अर्थ– यह शुभ कथा सुनकर पार्वतीजी के हृदय में बहुत प्यारी लगी, और सुहावनी वाणी बोलीं। हे नाथ! आपकी कृपा से मेरा संदेह दूर हो गया और रामचन्द्रजी के चरणों में नवीन स्नेह उत्पन्न हुआ।

+दो०– मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
रामभगति दृढ़ उपजी, बीते सकल कलेस।।१२९।।

अर्थ– हे विश्वनाथ! आपके प्रसाद से अब मैं कृत्कृत्य हो गई, रामचन्द्रजी की दृढ़ भक्ति मेरे हृदय में उत्पन्न हुई और सम्पूर्ण क्लेश नष्ट हो गया।

÷यह सुभ संभु उमा संवादा। सुख संपादन समन बिषादा।।
भवभंजन गंजन संदेहा। जनरंजन सज्जन प्रिय एहा।।

अर्थ– यह शंकरजी और पार्वतीजी का शुभ संवाद सुखका सम्पादन करनेवाला और विषाद का शमन करने वाला है। यह सांसारिक रोगों को नष्ट करने वाला, संदेहों का नाशक, मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाला और सज्जनों

⋆इसी श्लोक के आधार पर गोस्वामीजी ने भी अपने रामचरितमानस में सप्तसोपान रखा है। यथा

अध्यात्मरामायणे– पारवत्यै परमेश्वरेण गदितेह्याध्यात्मरामायणे । काण्डैः सप्तभिरन्यितेऽति शुभदे.....।।

अर्थ–शंकर भगवान् ने सातकाण्डों से युक्त रामायण की कथा को श्रीपार्वतीजी से वर्णन किया है।

+यहाँ पर शिव पार्वती सम्वाद समाप्त हो गया।

÷याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से बोले।

को प्यारा है।

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाहीं।।

★रघुपति कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।

अर्थ– जो संसार में रामचन्द्रजी की उपासना करने वाले हैं उनको इस कथा के समान कुछ भी प्रिय वस्तु नहीं है। मैंने यह पवित्र सुहावना चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है।

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जज्ञ जप तप ब्रत पूजा।।

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय रामगुन ग्रामहिं।।

तस्मात्सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्।।५४२।।

अर्थ– इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत पूजा और दूसरे कोई अन्य साधन नहीं है। इसलिये सर्वतोभावेन हरि भगवान् ही मनुष्यों से श्रोतव्य हैं, कीर्तन करने योग्य और स्मरण करने योग्य हैं।

जासु पतितपावन बड़ बाना। गावहिं कबि स्रुति संत पुराना।।

तहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति के नहिं पाई।।

अर्थ–पतितों को पवित्र करनेवाला जिन भगवान् का बड़ा बाना (स्वभाव) है ऐसा वेद पुराण, संत और कवि कहते हैं। हे मन ! कुटिलता त्यागकर उन भगवान् को भज। रामचन्द्रजीके भजन करने से गति (मोक्ष) किसने नहीं पाया ? अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी के भजन करने से पापी से पापी मनुष्य को सुन्दरगति प्राप्त होती है।

छंद–पाई ने केहि गति पतितपावन रामभजि सुनु सठ मना।

गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।

आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।

कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते।।

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजोगृध्रो वणिक् पथः।

व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यास्तथाऽपरे।।५४३।।

किरातहूणांध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्कायवनाः खसादयः।

येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।।५४४।।

अर्थ– रे शठ मन! पतित पावन रामचन्द्रजी का भजन कर उनके भजन करनेसे किसने गति नहीं पाई (अर्थात् सबने सुगति पाई है) सग्रीव, हनुमान्, ऋक्ष(जाम्बवान) गज, गृध्र, वणिक, व्याध, कुब्जा, ब्रजकी गोपियाँ और याज्ञिक ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, किरात, हूँण, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, पवन खसआदि और जो महापापात्मा हैं वे भी जिन भगवान् के आश्रय से शुद्ध हो जाते हैं उन भगवान् के लिये नमस्कार है।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।

कलिमल मनोमल धोइ बिन स्रम रामधाम सिधावहीं।।

∷सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरहिं।

★यहाँ याज्ञवल्क्य भरद्वाज सम्वाद समाप्त हुआ।

∷सत पंच चौपाई मनोहर– 'सत पंच' इस पद का अर्थ भिन्नरुचि वाले टीकाकारों ने स्वरुचिपूर्वक किया है। किसी ने 'सत पंच' का अर्थ सच्चापंच किया है किसी ने 'अंकाना बामतो गतिः' के अनुसार 5100 चौपाई किया है, किसी ने 500 और किसीने 105 चौपाई ही किया है। इन सम्पूर्ण अर्थों को देखते हुये मनमें भ्रम पड़ जाता है, यदि पहला अर्थ मानते हैं अर्थात् 'सतपंच' का अर्थ सच्चापंच अर्थ मानते हैं तो क्लिष्टकल्पना करनी पड़ती है। और यदि अंकानां वामतो गतिः के अनुसार 5100 चौपाइयाँ मान लेते हैं तो वर्णानामर्थसंघाना' से लेकर 'दह्यन्ति नो मानवा' तक 5100 से अधिक चौपाईयाँ हुई जाती हैं, यदि 500 या 105 चौपाईयाँ लेते हैं तो कहाँ से कहाँतक गणना की जाय यह बात समझ में नहीं आती और इन सब अर्थों में बहुत अन्तर है और होना भी चाहिये।

पूर्ण प्रणाली के अनुसार (यथा–गीतायान्–गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पञ्च चतुष्टयम्। द्वित्रियक तदर्धं वा श्लोकानां यः पठेन्नरः।।

मैंने 'सतपंच' इसका अर्थ सात या पाँच चौपाई ही किया है और जहाँ तक सम्भव है गोस्वामीजी ने दारुणअविद्या (माया) के पंचदोषजनित विकारोंके शांति के लिये मनोहर पाँच या सात चौपाइयों को उत्तम् समझकर हृदयमें धारण करनेका संकेत किया होगा।

जो मनुष्य मनोहर सात या पाँच चौपाइयों को भली–भाँति स्मरण कर अपने हृदयमें धारण करेंगे, उन मनुष्यों के दारुण अविद्या (माया) के पाँच (काम,क्रोध,लोभ,मोह,मात्सर्य) दोषों से उत्पन्न विकार को श्रीरघुनाथजी हर लेंगे।

दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री–रघुबर हरहिं।।

अद्भुतोत्तररा०– यः पठेच्छृणुयाद्वापि मायावित्वं हरेर्विभोः।
मायां विसृज्य पुण्यात्मा विष्णुलोकं स गच्छति।।५४५।।
दशरथसुतजन्मकारणं यः पठति श्रृणोत्यनुमोदते द्विजेन्द्रः।
ब्रजति स भगवत् गृहातिथित्वं न हि शमनस्य भयं कुतश्चिदासीत्।।५४६।।

अर्थ– जो मनुष्य हरि भगवान् के इस मायामयी लीला को पढ़ता है अथवा सुनता है वह पवित्र अन्तःकरण होकर माया को त्याग विष्णुलोक को जाता है। अथवा जो द्विजेन्द्र श्रीदशरथजी के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी के जन्म के कारण और उनके चरित्रों को पढ़ता है अथवा सुनता है या अनुमोदन करता है वह भगवान् के लोक वैकुण्ठका अतिथि होता है अर्थात् वैकुण्ठ को चला जाता है उस पुरुष को यमराज से किसी तरह भी भय नहीं रहता।

सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।
जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदास हूँ।।
पायउ परम बिस्राम रामसमान प्रभु नाहीं कहूँ।।

अर्थ– सुन्दर, सुजान कृपानिधान जो रामचन्द्रजी अनाथों पर प्रीति करते हैं ऐसा अद्वितीय प्रयोजन दूसरे का हित करनेवाला मोक्षप्रद श्रीरामचन्द्रजी के समान कौन है (अर्थात् कोई नहीं) जिनकी दयालुता के लवलेश मात्र से मतिमंद तुलसीदास भी परम विश्राम पाया, श्रीरामचन्द्रजी के समान स्वामी कहीं नहीं हैं।

दो०– मोसम दीन न दीन हित, तुम्ह समान रघुबीर।
असि बिचारि रघुबंसमनि, हरहु विषम भवभीर।।

अथर्वणरहस्ये– पापिनामहमेवाग्रयो दयालूनां त्वमग्रणीः।
दयनीयो मदन्योस्ति तव कोऽत्र जगत्रये।।५४७।।

अर्थ– पापियों में मैं अगुआ हूँ और दया करनेवालों में आप अगुआ हैं अतः हे भगवान् त्रिलोक में मेरे समान कौन आप से दया करने योग्य हैं अर्थात् न आप से कोई दयालु है और न मुझ से कोई दीन।

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुबंस निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम।।१३०।।

पद्मपुराणे– यूनां चित्तं यथा स्त्रीषु लुब्धानां च यथा धने।
क्षुधितानां यथा चान्ने तथा त्वयि ममास्तु वै।।५४८।।

अर्थ– जैसे युवा पुरुषों का चित्त स्त्रियों में, लोभियों का (चित्त) धनमें, भूखे मनुष्यों का (चित्त) अन्नमें वैसा ही मेरा चित्त आप में लगे।

श्लोक–यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमानशं प्राप्नोतु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबन्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।१

अर्थ– समर्थ श्रेष्ठ कवि श्रीशंकरने जिस दुर्गम रामायण को निरंतर श्रीरामचन्द्रजी के चरणारबिंद में भक्ति प्राप्त होने के लिये पहले बनाया था तुलसीदासने उस रामायण को रामचन्द्रजी के नाम में निरत मानकर अपने अन्तःकरण के अज्ञान की शांति के लिये अथवा पवित्र अन्तःकरण जिनका ऐसे मनुष्यों के अज्ञान दूर करने के लिये इस मानस रामायण को उसी प्रकार भाषा में निर्माण किया।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं बिज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।२।।

अर्थ–पापों को हरनेवाले, सदा कल्याणकारी विज्ञान और भक्ति को देने वाले माया मोह और मल का नाश

करनेवाले अत्यन्त पवित्र, निर्मल, प्रेमरूपी जल से पूर्ण सुखद इस रामचरितमानस में भक्ति के साथ जो पुरुष अवगाहन करते हैं वे मनुष्य संसार रूपी सूर्य भगवान् की प्रखर किरणों से नहीं जलते।

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासप्रणीतस्य श्रीरामचरितमानसस्य बिबिधवेदशास्त्रपुराण प्रमाणै र्विभ्राजमानम् उत्तरकाण्डाभिधानं सप्तमसोपानं समाप्तम्।

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु।

।।श्रीरस्तु।।